दाराशिकोह

• •

डा० कालिकारञ्जन क़ानूनगो
एम० ए० पी-एच० डी० (कल०)
आचार्य तथा अध्यक्ष
इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्राक्कथन लेखक

डा० र० चं० मजूमदार
एम० ए०, पी० आर० एस०, पी-एच० डी०
भूतपूर्व उपकुलपति, ढाका विश्वविद्यालय

• •

प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा

प्रकाशक
गयाप्रसाद एण्ड संस
बाँकेविलास
आगरा

अंग्रेजी द्वितीय संस्करण का
हिन्दी अनुवाद

•

प्रथम आवृत्ति १९५८

मूल्य—आठ रुपये

मुद्रक—
जगदीशप्रसाद, एम. ए.,
एजूकेशनल प्रेस, आगरा

अँगरेज़ी के प्रथम संस्करण की भूमिका

मुझको अपने पाठको से क्षमा-याचना करनी है तथा उनके प्रति कुछ स्पष्टीकरण भी करना है। वे मेरे 'जाटो का इतिहास' के द्वितीय खण्ड की प्रतीक्षा करते रहे है, न कि राजकुमार दाराशिकोह की जीवनी की। 'जाटो का इतिहास' के प्रथम खण्ड के प्रकाशन के बाद सर जदुनाथ सरकार ने मेरे सम्मुख यह विचार उपस्थित किया कि मै दारा पर एक पुस्तिका लिखूँ। इसके लिये उन्होने जयपुर दरबार के ग्रन्थ-रक्षागार मे कुछ नवीन सामग्री ढूँढ निकाली थी। प्रथम विचार यह था कि दारा की यह जीवनी एक वर्ष मे तथा २०० पृष्ठो की पुस्तक मे लिखी जाय। तदनुसार १८ वी शताब्दी के भारत की कलह तथा दु.ख की कहानी से हटकर मनबहलाव के रूप मे मैने दार्शनिक राजकुमार के दुःखान्त चरित का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जब मै इस विषय से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करने लगा, तो यह विषय जो आरम्भ मे केवल मनबहलाव ही था, परिवर्तित होकर अनुराग बन गया और इसका परिणाम हुआ है—दो खण्डो मे ८०० पृष्ठो की पुस्तक जिसका प्रथम खण्ड अब जनता के समक्ष उपस्थित किया जाता है।

दाराशिकोह के अपने अध्ययन मे मुझको महान् इतिहासकार विलियम इर्वाइन से सकेत प्राप्त हुआ जिसने अगस्त १९०५ मे सर जदुनाथ को लिखा—"मेरा विश्वास है कि मनुष्य मे अब भी पर्याप्तरूप से पशुता है जिससे अब तक वह युद्ध-शील प्राणी बना रहा है, तथा इतिहास की युद्ध-प्रशसक विचारधारा इस समय भी उतनी ही सर्वप्रिय है जितनी कि पहले कभी थी। पराजित पक्ष को (उदाहरणार्थ दारा के पक्ष को) इतिहास ग्रन्थो मे सदैव कम न्याय प्राप्त होता है।" 'जर्नल एशियाटिक' मे हुआर्ट तथा मस्सीग्नाँ कृत 'लाहौर के सवाद' नामक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण लेख के प्रकाशन (अक्तूबर–दिसम्बर, १९२६) से मुझको प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तथा इसने मेरे अध्ययन को एक नवीन दिशा मे डाल दिया। इसमे मुझको अपने इस भाव की प्रतिध्वनि मिली कि 'दारा की राजनैतिक पराजय से उसके कार्य की सामाजिक निष्फलता का जो अनुमान कुछ लेखको ने लगाया है, वह गलत है।'

इससे मुझको यह भी सुझाव प्राप्त हुआ कि भारतीय धार्मिक विचार के विकास के इतिहास की एक नवीन दिशा भी हो सकती है जिसमे दाराशिकोह

का जीवन तथा उसके लेख एक महत्वशाली अध्याय होंगे। इन फ्रेञ्च मनीषियो के साथ मेरा भी यह विचार है कि इस समय जब भारत का ऐक्य ऐसे एक नवीन प्रयास पर निर्भर है कि दो आध्यात्मिक तत्व (हिन्दू धर्म तथा इस्लाम) मे एक दूसरे को समझे, यह बात केवल न्यायसगत है कि दाराशिकोह के व्यक्तित्व की ओर ध्यान दिया जाये जिसने १७ वी शताब्दी मे वही प्रयास किया जो कबीर तथा अकबर ने क्रमशः १५ वी और १६ वी शताब्दियो मे किया था या जो राजाराममोहन राय ने १९ वी शताब्दी मे किया।

शाहजहाँ के चरित्र के दो पक्षो के तथा उसके वैभव-सम्पन्न शासन के दो अङ्गो के प्रतिनिधि दारा तथा औरगजेब है। एक महान् धार्मिक तथा साहित्यिक आन्दोलन का केन्द्रभूत व्यक्ति दारा है जिसका उद्देश्य था कि भारत की आध्यात्मिक परम्पराओ के अनुकूल इस्लाम को बना दिया जाये। अपने आध्यात्मिक अनुसन्धान के कारण वह ब्रह्म विद्या के अनुसन्धान-क्षेत्र मे प्रवेश कर गया। उसने प्रयास किया कि हिन्दू धर्म तथा इस्लाम के बीच की खाई को पाट दे—और यह जनसाधारण के लिये नही परन्तु दोनो जातियो के शिष्टवर्ग के हित मे। वह इस प्रतिज्ञा को लेकर चला कि समस्त दैवी धर्म-ग्रन्थो का एक सामान्य उद्गम स्थान अवश्य होगा क्योकि कुरान मे एक 'उम्मुल किताब' (गुप्त पुस्तक) का उल्लेख है। जिस उत्साह तथा विश्वास से सर गलाहड 'पवित्र पात्र' की खोज मे दत्तचित्त हो गया था, उसी उत्साह तथा विश्वास से दारा इस गुप्त पुस्तक की खोज मे सलग्न हो गया। इस्लाम की सीमाओ को पार करके उसने उसी पुस्तक को उपनिषदो के रूप मे पाया जो अपवित्र दृष्टि से दिखाई नही दे रही थी।

दाराशिकोह के राजनैतिक चरित्र के अध्ययन के सम्बन्ध मे मैंने उसी सामग्री पर परिश्रम किया तथा उसी क्षेत्र का पर्यटन किया जिस पर सर जदुनाथ ने अपने 'औरगजेब का इतिहास' खण्ड १ तथा २ के लिखने मे किया था। मेरा विचार था कि स्वतन्त्र रूप से युक्ति-युक्त निष्कर्षों को प्राप्त करूँ। परिणाम सर्वथा निराशाजनक रहा है तथा इसके निमित्त जो समय लगाया उसको देखते हुए अत्यन्त खेद-जनक 'उत्तराधिकार-युद्ध' के वृहत्काय लेख-पत्रो पर कई महीनो के थकाने वाले परिश्रम से कभी-कभी एक भी नवीन विवरण नही प्राप्त हो सका है। औरगजेब के विद्वान् इतिहासकार ने अपने उत्तराधिकारियो के लिये एक भी महत्वशाली तथ्य वा नाटकीय प्रभाव रखने वाली घटना नही छोडी है। सब को उसने समेट लिया है। महत्वहीन शुष्क नामावलियाँ या कुछ क्लिष्ट विवरण अवश्य बच गये हैं जिनकी विना उल्लेख किये मैने भी उपेक्षा कर दी है। सर जदुनाथ की अपेक्षा मुझे एक अधिक लाभप्रद अवसर था—

अर्थात् 'जयपुर पत्रो' की प्राप्ति विशेषकर शुजा के विरुद्ध सुलेमान के आक्रमण-सम्बन्धी। यद्यपि इन पत्रो मे से कुछ का उल्लेख अपने "औरगजेब का इतिहास" के प्रथम दो खण्डो की द्वितीय आवृत्ति मे उन्होने किया है, उन्होने उनको मेरे लिये छोड दिया था कि उत्तराधिकार-युद्ध के उस विशेष अध्याय को नवीन प्रकाश मे लिखने के लिये मै उनका पूरा उपयोग करूँ। दाराशिकोह द्वारा कन्धार के तृतीय घेरे का वर्णन मैने सविस्तार किया है। इसके निमित्त मैने एक अज्ञातनाम प्रत्यक्षदर्शी द्वारा रचित उस घेरे के समकालीन वृत्तान्त (लतायेफ-उल्-अख्बार) का उपयोग किया है। कन्धार का आक्रमण दारा-शिकोह के चरित्र तथा सामर्थ्य के लिये अग्नि-परीक्षा था तथा यह उसके जीवन की सकट-वेला थी। अतः यह बात न्याय-सगत ही है कि एक अलग अध्याय मे मैने उसका वर्णन किया है और वह अध्याय इस पुस्तक का शायद सब से लम्बा अध्याय हो गया है। जहाँ पर प्राचीन लिखित प्रमाण उत्तरा-धिकार युद्ध पर कोई नवीन प्रकाश न डालते थे वही मुझको इस पर सन्तोष करना पडा कि सरकार कृत 'औरगजेब का इतिहास' के स्वल्प साराश दे दूँ। चूँकि सत्य तथा तर्क को भावुकता के ऊपर स्थान मिलना चाहिये, वह चाहे जितनी प्रबल और प्रिय क्यो न हो, मुझको साधारणतया सैनिक तथा राज-नीतिज्ञ के रूप मे दारा के चरित्र तथा जीवन के विषय मे सर जदुनाथ के विचार स्वीकृत करने पडे। ऐसा करने मे मुझे यह आशका अवश्य है कि शायद मेरे पाठको की ऐसी धारणा हो जाय कि औरगजेब के इतिहासकार के एक शिष्य ने बेचारे दारा की पुनः हत्या कर दी है।

दाराशिकोह के इस खण्ड के वाचक को एक द्वितीय खण्ड के उल्लेख मिलेंगे जो अभी तक उसके समक्ष नही है। उस खण्ड मे दाराशिकोह का साहित्यिक तथा राजनैतिक पत्र-व्यवहार होगा और उसमे उसके सिर्रूल-असरार के कुछ उद्धरण भी होगे। यह अभी तक मुद्रणालय मे है। कुछ अध्याय, जो मूल योजनानुसार द्वितीय खण्ड के भाग होने वाले थे, इस खण्ड मे सम्मिलित कर लिये गये है और इस प्रकार सर्व साधारण तथा विद्यार्थियो के उपयोग के लिये यह प्रस्तुत खण्ड अपने आप मे पूर्ण बना दिया गया है।

सर जदुनाथ के प्रति मै कितना ऋणी हूँ—यह स्पष्ट ही है। ढाका विश्व-विद्यालय जहाँ पर मै सेवा कर रहा हूँ, उसके इतिहास-विभागाध्यक्ष डा० र० चं० मजूमदार के समर्थन तथा प्रोत्साहन के विना मेरे लिये यह अशक्य ही रहता कि मै इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण कर सकता। ढाका विश्व-विद्यालय के कलामण्डल के प्रमुख तथा फारसी विभाग के अध्यक्ष श्री फिदा अलीखाँ एम० ए० को तथा ढाका के हकीम हबीबुर्रहमान साहेब को मेरी ओर से

हार्दिक धन्यबाद देय है कि उन्होने हस्तलिखित ग्रन्थो के अपने व्यक्तिगत सग्रहो को मेरी इच्छा पर उपयोग के लिये छोड दिया और मुझको आज्ञा दे दी कि उनके पास उपस्थित दारा के कुछ महत्वशाली पत्रो को प्रकाशित कर दूं। मेरे मित्र डा० जोगेन्द्रनाथ चौधरी एम० ए०, पी-एच० डी० ने इस खण्ड के प्रथम मुद्रणो को पढने मे कृपापूर्वक मुझको सहायता दी है जिसके लिये मै उनको अपने हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

जनवरी १९३५ — का० र० कानूनगो

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस अवसर पर मुझको जनता से क्षमा-याचना करनी है जब मै इस अपनी पुस्तक दाराशिकोह के पुनर्मुद्रण को इसके प्रथम प्रकाशन के १८ वर्ष बाद मूल पाठ मे बिना किसी वृद्धि वा परिवर्तन के उपस्थित कर रहा हूँ। इन वर्षों मे नवीन सामग्री जो मुझे प्राप्त हो सकी है, वह दारा के थोडे से पत्र है जो उसने विद्वानो तथा फकीरो को लिखे थे और जिनका इतिहास के लिये कोई वास्तविक मूल्य नही है। अतः वे इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड मे समाविष्ट कर दिये जायेगे। इस खण्ड मे दारा के पत्रो तथा भूमिकाओ के फारसी मूल पाठ होगे तथा उनका अँग्रेजी अनुवाद होगा।

भारत का स्वातन्त्र्य हमारी अपनी सुख-समृद्धि के जितना अनुकूल है उतना ही वह अकबर तथा उसके योग्य प्रपौत्र दारा की स्मृति के लिये है, क्योकि आज के भारत जैसे स्वतन्त्र तथा धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र मे ही इन दो उदार विचारको के महत्व का सत्य मूल्याङ्कन हो सकता है। उनके अपने समय मे कट्टर उल्मा (धर्म-विशेषज्ञ) उनको काफिर (धर्मभ्रष्ट) समझते थे वा अधिक-से-अधिक उनको ऐसे मुसलमान समझते थे जिन पर हिन्दू सस्कार पड चुके थे। इन दो राजनीतिज्ञो के जीवनो से सिद्ध होता है कि हमारा भविष्य निराशापूर्ण अन्धकारमय है यदि भारत की आत्मा धार्मिक कट्टरता तथा रूढिगत देववाद की शृङ्खलाओ से मुक्त नही की जाती है—चाहे वह हिन्दुओ की हो वा मुसलमानो की। हमारे देश-भक्तो को यह ध्यान रखना चाहिए कि अकबर या दारा का मार्ग कायरो का मार्ग नही है, परन्तु यह मार्ग उन पुरुषो के लिये है जो इसके लिये तत्पर है कि अपने व्यक्तिगत लाभ तथा सर्वप्रियता को अपने सच्चे विचारो के अनुसरण पर न्यौछावर कर दे।

लखनऊ विश्वविद्यालय,
प्रथम जनवरी, १९५३ ई० — का० रं० क़ानूनगो

प्राक्कथन

सम्राट् शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र तथा उसके युवराज राजकुमार दाराशिकोह का मुगल राजवश मे अद्भुत व्यक्तित्व है। उसका स्मरण मुख्यतया उसके दुखद अन्त के कारण किया जाता है, परन्तु थोडे से ही लोग समझते है कि यह दुःख-कथा उतनी उसकी मृत्यु की नही है जितनी उसके जीवन की है। अकबर के बाद होने वाले मुगल राजकुमार एक विशेष प्रकार के थे। वे वीर, कामुक तथा भोगी-विलासी थे। युद्ध मे, मदिरापान मे, प्राय दोनो मे वे सर्वोपरि थे। राजसिहासन उनका एकमात्र उद्देश्य था तथा वैभव और सत्ता उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। उनका समय शिविर तथा अन्तःपुर मे व्यतीत होता था। युद्ध-प्रयासो के बाद उनके मनोरजन के मुख्य विषय मदिरा तथा महिलाये थे। ज्ञान की चिन्ता उनको बहुत कम थी तथा इससे भी कम किसी उच्च मानसिक व्यवसाय की। एक सकीर्ण क्षेत्र मे वे अपना जीवन व्यतीत करते थे तथा समस्त उदार विचारो तथा उत्तम राजनीति-कौशल का उनमे अभाव था। उनकी पाशविक वृत्ति को केवल काम-वासना के आनन्द ही आकर्षक तथा रुचिकर थे तथा वे कभी भी किसी उच्च आध्यात्मिक जीवन के लिये चिन्ता न करते थे जिसके लिये मनुष्य समर्थ है।

ऐसे जगत् मे एक गूढ द्रष्टा दार्शनिक का जन्म हुआ जो ज्ञान का उपासक तथा आध्यात्मिक सत्यो का अन्वेषक था। दैवयोग से उसका जन्म ही उच्च मयूर सिंहासन के निमित्त कारण बन सकता था अन्यथा उसमे उसके लिये कोई योग्यता न थी। परन्तु निष्ठुर और वचक विधाता सदैव इसके लिये उसे ललचाता और तरसाता रहा। यदि दाराशिकोह का जन्म एक साधारण परिवार मे हुआ होता तो वह एक ईश्वरभक्त सन्त का जीवन व्यतीत करता और उसी अवस्था मे मृत्यु को प्राप्त होता—यही नही वह मध्यकालीन भारत के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शको मे एक होता जो उस समय प्रेम तथा मानव भ्रातृत्व-के सार्वभौम धर्म का प्रचार कर रहे थे और अपना प्रभाव छोड जाता। वह एक महात्मा, सहृदय व्यक्ति तथा उदारचेता था। एक नवीन दृष्टि, उच्च आदर्श-वाद तथा ज्ञान की अतृप्त पिपासा, इन असाधारण गुणो द्वारा प्रकृति ने उसको परिष्कृत किया था। वे उसको उच्चता की किसी सीमा तक पहुँचा सकते थे। इसका अपवाद केवल एक था तथा इसको उसकी स्वाभाविक नियति बताकर

उसी के द्वारा क्रूर प्रलोभक विधाता उसको धोखा दे रहा था। दारा के जीवन का सर्वोपरि दुःख यही है। वह अधिक उच्च आध्यात्मिक जीवन के योग्य था, परन्तु उसको अपना जीवन मुगल राजमहल की निन्द्य भौतिकता मे व्यतीत करना पडा। मस्तिष्क तथा हृदय के उसके विशेष गुणो का अभिप्राय यह था कि मनुष्य मात्र को उत्कृष्ट करने मे वह उनका उपयोग करे, परन्तु राज-सिंहासन प्राप्त करने के निमित्त उनका उपयोग करना उसका कर्तव्य बन गया। गोल छेद मे चौकोर खूँटी की यह पुरानी सुपरिचित कहानी है। उसके पास स्वर्ग की सीढी थी, परन्तु उसने इसका उपयोग मयूर सिंहासन प्राप्त करने के निमित्त किया।

कुछ ही ऐतिहासिक व्यक्तियो की कथा ऐसी घोर दुःखान्त है। दारा के उत्कृष्ट गुण ही उसके विनाश के कारण सिद्ध होते हैं। यदि उसके उद्योग कम मानसिक तथा उसके उद्देश्य कम आध्यात्मिक होते, वह अपने साहसिक कार्य मे अधिक सफल हो सकता था। यदि वह दर्शन शास्त्र का अध्ययन कम करता तथा सैनिक शास्त्र का अधिक, यदि उसने प्रशासन तथा युद्ध-व्यापार के निमित्त वह समय अर्पित किया होता जो उसने उपनिषदो का अनुवाद करने तथा मजुमुलबहरैन के लिखने मे व्यतीत कर दिया, यदि प्रकृति उसको सासारिक बुद्धि अधिक देती तथा गूढ अध्यात्मवाद कम, तो शायद उत्तराधिकार-युद्ध मे वह सफल सिद्ध हो जाता। परन्तु जब तक मनुष्य अपने नैतिक मूल्यो के माप-दण्ड को सर्वथा नही बदल देता है, किसी को इस पर दुःख न होगा कि दारा को सुसम्पन्न करने मे प्रकृति ने उन विशेष गुणो का वरण किया।

दार्शनिक तथा इतिहासकार दोनो द्वारा ऐसे मनुष्य का जीवन अध्ययन का अत्यन्त उपयुक्त विषय है। दारा के दुखद अन्त से अनेक व्यक्तियो पर गहरा प्रभाव पडा है, कुछ ही ने उसकी महत्ता तथा उसकी विशुद्ध योग्यता का वास्तविक मूल्याङ्कन किया है। डा० कानूनगो को यह श्रेय है कि उन्होने इस निमित्त सत्प्रयत्न किया है कि हमारे सम्मुख वास्तविक दारा को प्रकट कर दें—यही नही किन्तु उसके जीवन तथा ध्येय के महत्व की व्याख्या करदे। आगामी पृष्ठ यह सिद्ध कर देगे कि जीवन मे उसका महान ध्येय यह था कि हिन्दू धर्म तथा इस्लाम के अनुयायियो मे शान्ति तथा प्रीति की वृद्धि करे। डा० कानूनगो की टिप्पणी है—"यह कहना अतिशयोक्ति नही है कि भारत मे जो कोई भी धार्मिक शान्ति की समस्या का हल करना चाहता है, उसको यह कार्य वहाँ से प्रारम्भ करना होगा जहाँ पर दाराशिकोह ने उस कार्य को छोडा था तथा उसको उस मार्ग का अनुसरण करना होगा जिसको उस राजकुमार ने निर्धारित किया था।" सत्य तो यह है कि दारा एक भावना का प्रतिरूप था जो उसके

साथ लुप्त हो गई है। जैसा कि इस पुस्तक के लेखक ने सत्य ही कहा है—दारा की पराजय ने "भारत के मध्यकालीन इतिहास के सर्वोपरि उज्ज्वल युग का निश्चित अन्त कर दिया जिसको उचित ही अकबर का युग कहते है, जो राजनीति तथा सस्कृति मे राष्ट्रीयता का युग है, जो साहित्य तथा ललित कलाओ के पुनरुज्जीवन का युग है।"

दारा ने भारत के लिये एक नवीन सुप्रकाश-मय युग का स्वप्न देखा जिसकी आधारशिला अकबर ने रखी थी तथा उसकी असफलता राष्ट्रीय हानि थी। यह सत्य है कि उसका स्वप्न निष्फल रहा। परन्तु ऐसे स्वप्नो का भी मूल्य है और यदि हम नैतिक मूल्यो को उनके उचित स्थान मे रखे तो स्वप्नद्रष्टा अपने अधिक यथार्थवादी तथा सफल प्रतिद्वन्द्वी की अपेक्षा हानि मे न रहे, जिस सफल प्रतिद्वन्द्वी के दीर्घकालीन तथा बाह्य रूप से सफल जीवन ने मुगल साम्राज्य के महान भवन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। साधारण मापदण्डो के अनुसार औरगजेब को महान् सफलता प्राप्त हुई तथा दारा को निराशामय असफलता का मुख देखना पडा। परन्तु उन व्यक्तियो की सम्मति में स्थिति सर्वथा विपरीत है जिनकी दृष्टि सासारिक रूढियो द्वारा निर्धारित साधारण सीमाओ को भेद कर उनसे ऊपर उठी हुई है तथा जिनको अन्तिम सार का साक्षात्कार है। इन सज्जनो को इस पुस्तक मे तल्लीन करने वाला आकर्षण होगा और सुसम्पन्न लेखक द्वारा दारा के चरित्र का सुविशद तथा सहानुभूति-मय चित्रण सर्वसाधारण के लिये स्थायी रूप से रुचिकारक अध्ययन का विषय होगा।

रमना, ढाका,
२७ दिसम्बर, १९३४

र० च० मजूमदार

विषय-सूची

दाराशिकोह

अध्याय १

किशोरावस्था तथा शिक्षा

विभाग १—जन्म और किशोरावस्था

सन् १६१५ ई० की वसन्त ऋतु मे अजमेर नगर ने असाधारण उज्ज्वल और प्रसन्न आकृति धारण की। दरबार के जयघोषो के नाद और कोलाहल से उस स्थान की आध्यात्मिक शान्ति का वातावरण अशान्त हो उठा। यह मेवाड-आक्रमण की सफल समाप्ति पर, राणा प्रताप के पौत्र को अपने अनुयायी दल मे लेकर, महाराज कुमार खुर्रम के विजयी प्रत्यागमन का अवसर था। इससे लगभग एक मास पीछे मुमताजमहल ने अपनी तृतीय सन्तान तथा प्रथम पुत्र को अजमेर मे सोमवार की रात्रि मे २० मार्च, १६१५ (२९ सफर, १०२४ हि०) को जन्म दिया। सम्राट् जहाँगीर ने अपने प्रिय पुत्र के इस उत्तराधिकारी का नाम मुहम्मद दाराशिकोह रखा और अनेक पुरुषो ने उस बालक मे राजसिंहासन के सम्भावित उत्तराधिकारी के दर्शन किये[1]। 'साम्राज्य के प्रथम पुष्प' (गुले-अव्वलीने गुलिस्ताने शाही—साम्राज्य की पुष्पशाला का प्रथम पुष्प) के रूप मे इस धन्य भाग्य का स्वागत हुआ। इस स्वागत-वाक्य से उसका जन्म-वर्ष प्रकट होता है। वास्तव मे शाहजहाँ और मुमताज के वैवाहिक सम्बन्ध को लगातार होने वाली पर्याप्त सन्तति ने कृतार्थ कर दिया। उनकी चौदह सन्तानो मे दो पुत्रियो और चार पुत्रो के भाग्य मे यह बदा था कि इतिहास के अत्यन्त दु:खमय नाटको मे से एक मे वे अपना अभिनय करे।

जब दारा लगभग दो वर्ष का था, उसका पिता दक्षिण का महाराज्यपाल (वाइसराय) नियुक्त हुआ। वहाँ पर भी खुर्रम के अस्त्र-शस्त्रो और कूटनीति को

१—पादशाहनामा, I ३९१; अमले सलीह में यह भी है—'जब रात्रि के १२ घडी और ४२ पल बीत चुके थे।' आमोद-प्रमोद आदि के लिये देखो—अमले सलीह (एक अप्रधान ग्रथ), पृ० ९२-९४। शाहजहाँ की सन्तान की सूची। देखो—परिशिष्ट।

विशेष सफलता प्राप्त हुई, परन्तु सुन्दरी साम्राज्ञी नूरजहाँ की ईर्ष्या और उसके षड्यन्त्रो के कारण १६२३ मे वह विद्रोह करने पर विवश हो गया। दो वर्षों तक निर्जन दक्षिण मे, तेलगाना के जगलो मे, बगाल और बिहार मे, शाहजहाँ को कठोर सकट सहन करने पडे, जिनमे मुमताज और उसकी सन्तान ने सहर्ष उसका साथ दिया। नूरजहाँ का क्रोध निर्दयता से उसके पीछे पडा हुआ था, जिससे थककर उसने अपने पिता से शान्ति का प्रस्ताव किया तथा दारा और औरगजेब को बन्धको के रूप मे दरबार को भेजने पर सहमत हो गया। १६२५ के जाडे की समाप्ति के समीप दोनो राजकुमारो ने दक्षिण से लाहौर को प्रस्थान किया।

अटक और रोहतास (रावलपिंडी के समीप) के बीच मे किसी स्थान पर दारा और औरगजेब ने सम्राट् के दर्शन किये जबकि वह अफगान प्रदेश से अपनी वापसी यात्रा कर रहा था। शाहजहाँ के तीन पुत्रो को अपने बन्धन मे करके—क्योकि उसका सर्वाधिक प्रिय पुत्र शुजा पहले से ही जहाँगीर के पास था—नूरजहाँ ने अधिक विश्वास से यह षड्यन्त्र प्रारम्भ कर दिया कि उस राजकुमार को उत्तराधिकार से वचित कर दे। परन्तु उसके षड्यन्त्रो के परिपक्व होने के पूर्व ही राजौर प्रदेश मे रविवार २६ अक्तूबर, १६२७ (२८ सफर, १०३७ हि०) को जहाँगीर की मृत्यु हो गई।

४ फरवरी, १६२८ (८ जमादी उस्सानी १०३७ हि०)[1] को आगरा मे शाहजहाँ ने विधिपूर्वक राजमुकुट धारण किया और लगभग तीन सप्ताह बाद उनका नाना आसफखाँ राजकुमारो को दरबार मे ले आया। २६ फरवरी को सिकन्दरा मे अकबर के समाधि-भवन पर वे पहुँचे और वहाँ पर रात्रि मे विश्राम करने की आज्ञा उनको प्राप्त हुई। तीसरे पहर मुमताजमहल अपने पुत्रो से कुछ काल के लिये एक तम्बू मे मिली जो आगरा और सिकन्दरा के बीच मे उसके स्वागतार्थ लगाया गया था। दूसरे दिन सार्वजनिक दरबार मे दारा ने राज-सिंहासन के सम्मुख प्रणाम किया और रीत्यनुसार नजर और निसार भेंट किया (यह वह धन होता था जो सम्राट पर दुष्प्रभावो से उसको सुरक्षित रखने के लिये न्यौछावर किया जाता था)। एक हजार रुपये का दैनिक भत्ता उसको अनुदान मे दिया गया। इसके अतिरिक्त दो लाख नकद रुपये उसको प्राप्त हुए जो अभिषेक के समय के राजकीय दान मे उसके हिस्से के थे।

१—शाहजहाँ का अभिषेक पाद० I अ० ८७-९८। राजकुमारों का आगमन वही, १७७; अमले सलीह, २२५-२३१। राजकुमारों के आगमन पर एक रोचक टिप्पणी—वि० फास्टर कृत—अँग्रेजी कारखाने (१६२३-१६२९), पृ० २४७.

विभाग २—शिक्षा

शाहजहाँ के राजकीय इतिहास लेखक के लिये 'विद्यारम्भ' (बमकतब रफतन) का अर्थ शिक्षक के नाम के केवल उल्लेख से अधिक कुछ न था। पादशाहनामा कहता है कि मुल्ला अब्दुल लतीफ सुल्तानपुरी शिक्षक था।[1] दारा के अध्ययन की प्रारम्भिक और माध्यमिक पाठ्य पुस्तके—ऐसा प्रतीत होता है—उसी पुराने ढग की थीं जो किसी साधारण मुगल राजकुमार की होती थी। जिसके अध्ययन के विषय साधारणतया कुरान, फारसी काव्य के प्रामाणिक ग्रथ और तैमूर का इतिहास होते थे। सुलेख तथा सुन्दर पत्र-लेखन शैली की ओर, बहुत ध्यान दिया जाता था, जिसके लिये अबुलफजल को निर्दिष्ट किया गया था और जो उस समय का आदर्श तथा दुस्साध्य आदर्श था। दारा मेधावी शिष्य था। उसने वह समस्त विद्या प्राप्त करली जो अब्दुललतीफ सिखा सकता था। उसमे विद्यानुरागी स्वभाव का विकास हो गया और सबसे बडी बात यह हुई कि माकूलात—अर्थात् कल्पनात्मक विद्याओ के प्रति उसके शिक्षक की जो विशेष रुचि थी उसने उसमे प्रवेश कर लिया। कहा जाता है कि दारा का एक शिक्षक प्रसिद्ध सुलेखकार अब्दुर्रशीद दायलेमी था[2]। उसका हस्तलेख सुन्दर और स्पष्ट था, यह उसके पिता के हस्तलेख के लगभग अनुरूप था, जैसा कि शाहजहाँ और दारा के हस्तलिखित पत्रो से प्रकट होता है तथा जो पटना की ओरियन्टल पब्लिक लायब्रेरी (पूर्वीय सार्वजनिक पुस्तकालय) और अन्य स्थानो मे सुरक्षित है। उसने फारसी कविता का बहुत अध्ययन किया, परन्तु फिर्दोसी और सादी उसके लिये इतने रोचक न थे जितने कि रूमी और जामी। अपने पिता के विपरीत उसको इतिहास से न कोई शिक्षा, न प्रेरणा प्राप्त होती थी। यदि शाहजहाँ महान् अलेक्जान्डर की प्रशसा करता, तो उसको अरस्तू और अफ्लातूँ अधिक पसन्द थे। युद्ध-प्रिय सूरमाओ के पराक्रमो की अपेक्षा सन्तो के अद्भुत कर्म उसके लिये अधिक रुचिकर थे।

दाराशिकोह आजीवन विद्यार्थी रहा। अध्ययन और कल्पना के प्रति उसको असतुलित अनुराग था। उसका चित्त गूढरहस्यवाद-प्रिय था और जहाँ पर अन्य लोगो को कठोर तथ्य प्राप्त होते थे, वहाँ वह अलकारो की खोज मे रहता

१—पाद० I ब० ३४४-३४५.

२—१९२८ के 'भारतीय ऐतिहासिक प्राचीन पत्र आयोग' के नागपुर अधिवेशन से सम्बन्धित प्रदर्शिनी की प्रदर्शित वस्तुओं में अब्दुर्रशीद दायलेमी के सुलेख का एक नमूना था (अ० घोष—४२, शामबाजार गली, कलकत्ता का सग्रह)। हकीम हबीबउर्रहमान, चौक, ढाका के व्यक्तिगत संग्रह ग्रन्थ में मैने एक अन्य नमूना देखा है। अब्दुर्रशीद दारा का शिक्षक था—वा नहीं, इसमें मतभेद है।

था। कुरान और हदीस का अध्ययन उसने उस तार्किक की तत्परता और पक्षपात से किया जो किसी विशेषवाद को सिद्ध करने का उत्सुक हो। अपने कुरान के अध्ययन मे, उसने शास्त्रीय सम्प्रदाय के प्राचीन विद्वानो की टीकाओ को अस्वीकृत कर दिया। उसको अरबीप्राधान्यता से घृणा थी क्योकि उसकी दृष्टि में उससे असहनशीलता और मानसिक निष्फलता की उत्पत्ति होती थी। वह कानूनदानो से दूर रहता और इस्लामी कानून के अध्ययन की उसने कभी चिन्ता न की। शाहजहाँ की इच्छा थी कि युवराज को अपनी देख-रेख में शासन के कर्त्तव्यो मे शिक्षित करे और उसने उसको सदैव दरबार मे रखा। परन्तु दारा मे यह सामर्थ्य न थी कि व्यक्तिगत सम्पर्क से मनुष्यो और अन्य प्रश्नो को समझ सके। यद्यपि उसका पालन-पोषण दरबार मे हुआ था तथापि वह कभी भी किसी दरबारी को ठीक-ठीक समझ नही सका।

अपने जीवन के आरम्भ मे ही नवयुवक राजकुमार भ्रम मे पड गया। अकबर की मृत्यु से पतनशील उदारवाद के शान्त तल के नीचे साम्राज्य मे प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ शक्ति-सचय कर रही थी। आभासो से दारा को धोखा हुआ और शाहजहाँ ने सम्भवतया आगामी विपत्तियो के प्रति उसको सचेत न किया था। यदि अकबर के साम्राज्य का उत्तराधिकार वास्तव मे किसी को प्राप्त करना है, तो यह कार्य केवल अकबर की नीति और आदर्शवाद के द्वारा ही सम्पादित हो सकता है, ऐसी धारणा राजकुमार की हुई। इस प्रकार अकबर का कर्त्तव्य-भार राजकुमार को वहन करना पडा, परन्तु उसके अपुष्ट कन्धो पर यह भीम का भार सिद्ध हुआ। दारा को बोध हुआ कि किसी नवीन धर्म का विकास करना निरर्थक होगा जो हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो के लिये समान रूप से अस्पष्ट और अस्वीकार्य होगा। वह इसका कभी विचार न कर सका कि इस्लाम के चक्र से बाहर निकल कर वह प्रेम और मैत्री भाव से मनुष्यमात्र का आलिंगन कर सके। इस्लाम के हृदय-स्थल मे ठहर कर ही प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायो के लिये वह समान मिलन-स्थल की खोज करना चाहता था। उसने निश्चय किया कि मुहम्मद के प्रति वह अपनी निष्ठा को स्थिर रखेगा और साथ-साथ एकता और शान्ति के उदारहृदय अभिवधक का कार्य करेगा और समस्त ससार की उन्नति, सस्कृति और सभ्यता की आत्मा से इस्लाम को सयुक्त करेगा। इस्लाम की दीक्षा के मार्ग को उसने ग्रहण किया और अपने पर्याप्त अवकाश को उसने धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के निमित्त अर्पित कर दिया। तौहीद अर्थात् विश्वदेवतावाद के सिद्धान्त के विषय मे अपने अन्वेषण-मार्ग में उसने यहूदियो, ईसाइयो और ब्राह्मणो के धर्म-ग्रन्थो के अनुवादो का अध्ययन किया।

सस्कृत के विद्वानो को उसने आश्रय दिया; उनकी सहायता से उसने भगवद्गीता और ५० उपनिषदो का अनुवाद किया, उसने हिन्दी पर अधिकार कर लिया और उस सर्वप्रिय भाषा मे उसने भक्ति-गीत लिखे। सक्षेपतः—उस समय की उदारवादी प्रवृत्तियो का वह केन्द्र हो गया और हिन्दुओ की धारणा हो गई कि वह अकबर की आत्मा का अवतार है। आगामी सतति के लिये दाराशिकोह का नाम दर्शन-शास्त्र के पण्डित का प्रतीक बन गया।

विभाग ३—सगाई और वियोग

शाहजहाँ की राजगद्दी के करीब दो वर्ष पीछे विख्यात सेनापति खानजहाँ लोदी ने, जो ७ हजार सवारो का अध्यक्ष था, विद्रोह कर दिया और दक्षिण को भाग निकला। चूँकि यह भय हुआ कि वह बीजापुर के शासक से जा मिलेगा, शाहजहाँ ने दिसम्बर १६२६ मे दक्षिण को प्रयाण किया। शाही शिविर के साथ दारा ने भी प्रस्थान किया, परन्तु उसने किसी युद्ध मे भाग न लिया। जब सम्राट् खानदेश मे होकर जा रहा था, मुमताजमहल ने स्वर्गीय राजकुमार सुल्तान पर्वेज की पुत्री और युवराज के विवाह का प्रस्ताव किया। शाहजहाँ ने इस योजना का हृदय से समर्थन किया और आज्ञा दी कि इस विवाह के लिये विशाल परिमाण पर भव्य तैयारियाँ की जायँ। परन्तु बुर्हानपुर में ७ जून, १६३१ (१७ जिल्काद, १०४० हि०) की रात्रि को अकस्मात् साम्राज्ञी का देहान्त हो गया। ठीक उसके पहले उसने एक कन्या गौहरआरा बेगम को जन्म दिया था। लगभग २½ वर्ष की अनुपस्थिति के बाद सम्राट[1] राजधानी को वापस आया (जून ६, १६३२)

परिशिष्ट

शाहजहाँ और मुमताजमहल की सन्तान

(पादशाहनामा, खण्ड १ अ०; ३९१–३९३)

१—हुरुन्निसा—आगरा मे शनिवार ६ सफर, १०२२ हि० को जन्म। तीन वर्ष और एक मास पीछे अजमेर मे बुधवार, २४ रबी उस्सानी १०२५ हि० को देहान्त। (जन्म २० मार्च, १६१३ ई० तथा मृत्यु १ मई, १६१६ ई०)।

१—बुर्हानपुर से शाहजहाँ का राजकीय प्रस्थान--२४ रमजान, १०४१ हि० (अप्रैल ४, १६३२ ई०) पाद० I अ० ४२२, राजधानी में राजकीय प्रवेश--१ जिलहिज, १०४१ हि० (६ जून १६३२ ई०) सम्राट के पीछे बैठा हुआ दाराशिकोह अपने पिता के शिर के ऊपर न्यौछावर (निसार) की वर्षा करता है—पाद० I अ० ४२८।

२—जहाँनारा बेगम—मेवाड़-अभियान के समय हीनी के गाँव में २१ सफर, १०२३ हि० को जन्म (बुधवार २३ मार्च, १६१४ ई०)।

३—दाराशिकोह—अजमेर मे सोमवार की रात्रि २९ सफर, १०२४ हि० को जन्म (२० मार्च, १६१५ ई०)।

४—शाहशुजा—अजमेर मे रविवार रात्रि १८ जमादी उलाखिर १०२५ हि० को जन्म (२३ जून, १६१६ ई०)।

५—रौशनराय (रौशन आरा) बुर्हानपुर मे २ रमजान, १०२६ हि० को जन्म (रविवार २४ अगस्त, १६१७ ई०)।

६—औरगजेब—गुजरात के पचमहल जिले के दोहद नामक स्थान पर रविवार रात्रि १५ जिल्काद, १०२७ हि० को जन्म, (२४ अक्तूबर, १६१८ ई०)।

७—उम्मेद बख़्श—बुधवार ११ मुहर्रम, १०२९ हि० को सरहिन्द के पास जन्म। १०३१ हि० के रबीउस्सानी मास मे बुर्हानपुर मे मृत्यु (८ दिसम्बर १६१९—फर्वरी १६२२)।

८—सुरैया बानू बेगम—जन्म २० रजब, १०३० हि०। ७ वर्ष की आयु पर २३ शाबान, १०३७ हि० को देहान्त (३१ मई, १६२१ ई०, १८ अप्रेल, १६२८)।

९—एक पुत्र—१०३२ हि० मे जन्म। नामकरण के पूर्व ही मृत्यु।

१०—मुरादबख्श—बिहार मे रोहतासगढ पर २५ जिलहिज, १०३३ हि० को जन्म (२८ सितम्बर, १६२४ ई०)।

११—लुत्फुल्ला—बुधवार १४ सफर, १०३६ हि० (२५ अक्तूबर, १६२६ ई०) को जन्म। १९ मास पीछे ९ रमजान, १०३७ हि० को मृत्यु।

१२—दौलतअफजा—जन्म ४ रमजान, १०३७ हि० : मृत्यु २० रमजान, १०३८ हि० (२८ अप्रेल, १६२८ ई०—३ मई, १६२९ ई०)।

१३—एक पुत्री—जन्म १० रमजान, १०३९ हि०। मृत्यु तुरन्त पश्चात् (१३ अप्रैल, १६३० ई०)।

१४—गौहरआरा बेगम—जन्म बुधवार रात्रि, १७ जिलकाद, १०४० हि० बुर्हानपुर मे (७ जून, १६३१ ई०)।

अध्याय २

विवाह और पारिवारिक जीवन

विभाग १—दाराशिकोह का विवाह

आगरे मे सम्राट् की वापसी के बाद जहानआरा बेगम की देख-रेख मे सुयोग्य पालिका सितिउन्निसा खानम[1] की सहायता से दारा के विवाह की तैयारियाँ पुनः आरम्भ की गई। राजकुमारी ने यथासामर्थ्य कष्ट सहन किया कि युवराज के विवाहोत्सव की तैयारियाँ उस भव्य परिमाण पर की जायँ जैसा कि मृतक मुमताज की इच्छा हो सकती थी। कुल ३२ लाख रु० के व्यय मे से केवल जहानआरा ने १६ लाख रु० दिये। दो लाख की लागत का साचाक (नव वधू को शुभ सेंदुर सहित प्रथम उपहार) भव्य जुलूस मे ११ नवम्बर, १६३२ को भेजा गया। साथ मे मृतक सम्राज्ञी की माता, बडी बहिन और फूफियाँ थी। तीन मास पीछे वास्तविक विवाहोत्सव हुआ। (पाद० I अ०, ४५३)। शुक्रवार १ फरवरी, १६३३ ई० (१ शाबान, १०४२ हि०) की रात्रि को हिनाबन्दी की रस्म के अवसर पर दीवाने खास के प्राङ्गण मे विशाल सभा (मजलिस) का आयोजन किया गया। मुमताजमहल की मृत्यु के बाद पहली बार सम्राट् ने उत्सव के वस्त्र धारण किये, सहभोज मे प्रधान पद ग्रहण किया और राजभवन मे पुनः सगीत होने की अनुमति प्रदान की। सैकडो मनमोहिनी गायिकाओ ने सभा का मनोरञ्जन किया और मण्डप के कोने-कोने से हर्ष की प्रतिध्वनि उठ खडी हुई। परदो के पीछे बैठी हुई महिलाओ ने दारा के हाथो को हिना (मेंहदी) से रीत्यनुसार रग दिया तथा सुन्दर कन्याओ ने बाहर आकर सम्मानित अतिथियो की अँगुलियो को लाल रग से रग दिया और सोने के काम के रुमालो को उनकी अँगुलियो पर बाँध दिया। जब यह हर्षोत्पादक कार्य समाप्त हो गया, अतिथियो को प्रथानुसार कमरबन्द बाँटे गये और वे विदा किये गये।

दूसरे दिन सायकाल को राजाज्ञानुसार तीनो छोटे राजकुमारो के संरक्षण में विशाल जुलूस के साथ अपने महल से सुन्दर घोडे पर सवार होकर दारा दीवाने आम (सार्वजनिक सभा-मण्डप) मे आया। दण्डवत् करने के बाद जब राजकुमार सिंहासन के सम्मुख उपस्थित हुआ, सम्राट् ने मोतियो की एक माला उसके गले मे पहना दी और दारा के शिर पर वही सेहरा (वर का मौर) बाँध

१—सितिउन्निसा खानम के जीवन सम्बन्धी एक रेखाचित्र पादशाहनामा, II ६२८-६३१, सरकार का 'मुगल भारत के अध्ययन।'

दिया जो उसके पिता जहाँगीर ने उसके शिर पर मुमताजमहल से उसके विवाह की रात्रि पर बाँध दिया था। जब रात्रि के दो प्रहर और ६ घड़ियाँ बीत गई (अर्थात् अर्धरात्रि के बाद) तब उस समय के सर्वाधिक मतान्ध मुल्ला काजी मुहम्मद इस्लाम[१] को विवाह सस्कार के अनुष्ठान के लिये बुलाया गया। यह अनुष्ठान सम्राट् की उपस्थिति मे सम्पादित हुआ। वधू के कपीन (देयधन) के लिये उसने वही धन निश्चित किया (अर्थात् ५ लाख रुपये) जिसकी प्रतिज्ञा मुमताज से की गई थी (पाद० I अ० ४५८-४५६)। ८ फरवरी (८ शाबान) को यह आमोद-प्रमोद समाप्त हुआ। उस दिन अपने पुत्रो, उच्च सामन्तो और गार्हस्थ सेवको के साथ सम्राट् दारा के घर गया और उस राजकुमार ने उसका भव्य और विशाल स्वागत और सत्कार किया।

विभाग २—दाम्पत्य जीवन

यद्यपि दारा के अन्त:पुर (हरम) मे दास-कन्याओं की साधारण पूरक मण्डली उपस्थित थी, परन्तु उसने और कोई विवाह नही किया। मन्मथ के मार्ग-भ्रष्ट बाण, जिन्होने कट्टरपन्थी औरगजेब को भी न छोडा था, कभी-कभी कामुक राजकुमार को अधीर कर देते होगे, परन्तु यह निश्चित है, कि दारा और उसकी विवाहित पत्नी करीमुन्निसा के बीच प्रेम सर्वदा वर्तमान रहा। जन-साधारण मे यह करीमुन्निसा नादिरा बेगम के नाम से प्रसिद्ध थी। यदि हम मनुची का विश्वास करे तो राणादिल नामक एक हिन्दु नर्तकी पर एक समय राजकुमार प्रबल रूप से आसक्त हो गया, जिसने बिना नियमपूर्वक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये उसके प्रति आत्म-समर्पण करने से इन्कार कर दिया। उसकी काम-वासना इतनी पीडक थी कि जब शाहजहाँ ने इस नीच प्रस्ताव का विरोध किया, वह सूख कर काँटा होने लगा। अन्त मे सम्राट् ने इस विवाह के प्रति अपनी अनुमति दे दी और राणादिल इतनी सती और साध्वी वधू सिद्ध हुई जितनी कोई और उच्चकुलीय महिला हो सकती थी।[२] यद्यपि इस कहानी का आधार सदिग्ध प्रमाण पर है, यह कहानी उसकी आधी भी रोमाञ्चक नही है जितना कि केलि-प्रिय हीरा-बाई (जैनाबादी महल) के प्रति प्रौढ अवस्था मे औरंगजेब की प्रेम-व्यथा का वर्णन। जिस हीराबाई को प्रसन्न करने के लिये

१—वह इतना कट्टर सुन्नी था कि जब वह बीमार पडा, उसने एक योग (नुस्खे) को आग में जला दिया क्योंकि वह किसी शिया वैद्य के ग्रन्थ से सयोगवश उद्धृत किया गया था। उसका देहान्त १०६१ हि० (१६५१ ई०) में हुआ। जीवन सम्बन्धी टिप्पणी के लिये देखो—मासीरुलुमरा III—८६-६१)।

२—मुगलों की कथायें I—२२२-२६१।

उस समय के आदर्श मुसलमान ने एक बार निषिद्ध प्याले (मद्य) को अपने ओठों से लगा लिया था।

नादिरा के प्रति दारा का प्रेम मुममाज के प्रति शाहजहाँ के प्रेम से कम, निश्चल और रोमाञ्चक न था। और न शारीरिक और नैतिक सौन्दर्य मे तथा सहनशीलता और भक्तिमत्ता मे, नादिरा अपनी सास से तुलना मे कम थी। जब एक बार लाहौर से काबुल को दरबार के साथ यात्रा करते हुए वह जहाँगीराबाद मे बहुत सख्त बीमार पड गई, दारा ने बहुत प्रेम से कई महीनो तक उसकी सेवा-शुश्रूषा की[1]। वे जीवन मे कभी भी अलग न हुए और दुर्भाग्य ने उनके प्रेम को और भी चमका दिया। उसके सब पुत्र और पुत्रियाँ नादिरा के पेट से थे, नीचे उनका कुल वृत्तान्त है।

दारा शिकोह और नादिरा की सन्तान

१—एक पुत्री—रविवार, २९ रजब, १०४३ हि० (१९ जनवरी, १६३४) को आगरा में जन्म। उच्च सामन्तवर्ग सहित सम्राट् शिशु को देखने गया और दारा के यहाँ खाना खाया। कुछ मास पीछे ईदुल्फितर के दिन (२१ मार्च, १६३४) को उसका देहान्त हो गया। दारा उस समय दरबार के साथ लाहौर को यात्रा कर रहा था। दु:ख और मानसिक खिन्नता के कारण उसको जोर से बुखार आ गया और हृदय-वेदना उत्पन्न हो गई। सम्राट् को इतनी चिन्ता हुई कि उसने लाहौर से हकीम वजीरखाँ को बुला भेजा और चिन्ताकुल होकर उसने आज्ञा दी कि दारा का डेरा उसके डेरे के निकट लगा दिया जाये ताकि जहानआरा बेगम उसको सम्भाल सके। शाहजहाँ कई बार उसको देखने गया और फकीरो और कगालो मे बहुत-सा धन बाँट दिया। (पाद० I ब० ३, ९, १०)

२—सुलेमान शिकोह—दिल्ली से आगरा को दरबार के साथ सफर के समय सुल्तानपुर गाँव में शुक्रवार को प्रातःकाल २७ रमजान १०४४ हि० (६ मार्च, १६३५ ई०) को जन्म। जन्मोत्सव आगरा मे हुआ। हजारी की श्रेणी तक के सब सामन्तो के साथ दारा के घर पर सम्राट् का विशाल सत्कार हुआ। (पाद० I ब०, ७३–७४, ८४–८५)

३—मिहिर शिकोह—जन्म बुधवार, २ रबी उलअव्वल १०४८ हि० (४ जुलाई, १६३८ ई०)। मृत्यु अगले मास की ९ तारीख को (पाद० II १०१, १०४)।

१—पाद० II ५०१, ५७१, ६३४।

४—पाकनिहाद बानू बेगम—जन्म २९ जमादी उल्अव्वल १०५१ हि० अगस्त २६, १६४१ ई० (पाद० II २४५)

५—मुमताज शिकोह[१]—जन्म जमादीउल्अव्वल १०५३ हि० का अन्तिम दिवस ६ अगस्त, १६४३ ई० (पाद० II ३३७)। मृत्यु सम्भवतया १०५८ हि० के जिलकाद मास मे।

६—सिपिहर शिकोह—जन्म बृहस्पतिवार, ११ शाबान, १०५४ हि० ३ अक्तूबर, १६४४ ई० (पाद० II ३८८)। अपने प्रत्येक पौत्र या पौत्री के जन्म के बाद शाहजहाँ दारा के घर को जाता और प्रत्येक अवसर पर जन्मोत्सव के लिये दो लाख रुपये देता।

७—जहाँजेबबानू।

८—अमलुन्निसा।

यह कुछ अद्भुत-सी बात है कि १६४५ से उसकी मृत्युपर्यन्त (१६५८) शाहजहाँ के दरबारी इतिहास दारा के किसी शिशु के जन्म का उल्लेख नही करते है। ऐसा मालूम होता है कि दारा की दो कन्याये अपने पिता की मृत्यु के पीछे तक जीवित रही। कलिमाते औरगजेब मे दारा की एक कन्या तमलुन्निसा बेगम का दो बार उल्लेख आता है कि वह औरगजेब की विशेष कृपा-पात्र थी। उस सम्राट् से कुछ आभूषण उसको उपहार मे प्राप्त हुए थे (सरकार ह० ग्र० ९२, १०१) मनुची दारा की एक छोटी कन्या का उसके घरेलू नाम जानीबेगम से उल्लेख करता है (अधिकृत नाम जहाँजेब बेगम)। उसका पालन-पोषण जहानआरा ने किया था और उसका विवाह (१६६८ मे) औरगजेब के पुत्र मुहम्मद आजम से हुआ था। दारा की यह कन्या पाकनिहाद बानू नही हो सकती है जो मुहम्मद आजम से १२ वर्ष बडी थी। अमलुन्निसा और जानीबेगम, प्रत्यक्ष है, एक ही न थी। निस्सन्देह इनका जन्म सिपिहर शिकोह के बाद हुआ था।

१—वारिस का उल्लेख है कि दारा के एक पुत्र का देहान्त जिलकाद १०५८ हि० में ४ वर्ष और १ मास की आयु में हुआ था। यह शिशु, जिसके नाम का उल्लेख नही है पाकनिहाद बानू नही हो सकता है जो उस समय ६ वर्ष १ मास की थी। अत प्रत्यक्ष है कि अभिप्राय ममताज से है।

अध्याय ३

दारा शिकोह की स्थिति और उसके अधिकार पद
उसके आरम्भिक आज्ञापक पद

विभाग १—मुग़ल सामन्त वर्ग में स्थान

मुगल दरबार की प्रथा के अनुसार, सिवाय अधिकृत सामन्तवर्ग के सदस्य के रूप मे, किसी व्यक्ति की कोई सस्थिति नही हो सकती थी। मुगल सामन्त वर्ग मे वीरजन और शिष्टजन दोनो ही सम्मिलित थे—सैनिक और वैद्य, कवि और चित्रकार, धर्मशास्त्री (आलिम) और नपुसक (ख्वाजा) सब को सेना अधिकारियो (मनसबदारो) के रूप मे इस सम्मान का समान अधिकार था।

सम्राट् की चान्द्र वर्ष गाँठ, शनिवार ५ अक्तूबर, १६३३ ई० (११ रबी उस्सानी १०४३ हि० पाद I अ० ५४१) को राजकुमार दारा को उसका प्रथम मनसब (अधिकार पद) १२ हजार जात और ६ हजार सवार का प्राप्त हुआ। उस दिन हिसार की सरकार (पजाब मे) जो बाबर के राजवश मे युवराज का क्षेत्र था, राजकुमार को उसकी जागीर के रूप मे दी गई। यह पसन्द अकस्मात नही हुई थी, परन्तु विचारपूर्वक की गई थी कि ज्येष्ठ राजकुमार को सिहासन का उत्तराधिकारी (युवराज) घोषित कर दिया जाये।

दारा की पदोन्नति शीघ्रता से उच्चता की ओर हुई और वह परिवार के सब पहले के वृत्तान्तो से बढ गई। पाँच वर्षो मे कई उन्नतियाँ प्राप्त कर उसका पद २० हजार जात और १० हजार सवार का हो गया। इसके बाद क़रीब १० वर्षों तक उसका जात स्थिर रहा। तब भी उसके सवार-दल की वृद्धि के रूप मे उन्नतियाँ जारी रही। दो अस्पाह (दो सैनिक) तथा सेह अस्पाह (तीन सैनिक) परिवर्तन के रूप में भी उन्नति प्राप्त होती रही। अप्रैल, १६४८ मे दारा को १० हजार जात की उन्नति प्राप्त हुई और ८ वर्ष पीछे जनवरी, १६५६ मे दूसरी उन्नति १० हजार जात की। शुजा और औरगजेब के सम्मिलित सैन्याधिकार से इस समय दारा का सैन्याधिकार बढा हुआ था। परिश्रमी और वीर औरगज़ेब छोटा होते हुए भी अकर्मण्य शुजा से आगे निकल गया था; परन्तु शाहजहाँ की नीति और प्रेम ने दारा को प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र के ऊपर उठा दिया। अपनी प्राणघातक बीमारी के ठीक पहले सम्राट् ने दारा के पद को ५० हजार जात तक बढा दिया, और अपने आशिक स्वास्थ्य लाभ के पीछे जब उत्तराधिकार-युद्ध क्षितिज मे वृद्धि को प्राप्त हो रहा था, उसने दारा को 'रुग्ण अवस्था के समय उसकी पितृभक्ति और सहृदय सेवा-सुश्रूषा की मान्यता मे ६० हजार

ज़ात और ४० हज़ार सवार का असाधारण पद प्रदान किया जिनमे से ३० हज़ार दो अस्पाह और सेह अस्पाह थे।

विभाग २—दारा के महाराज्यपाल-पद (सूबेदारियाँ)

१—इलाहाबाद—शाइस्ताखाँ के स्थान पर दो अधिक राजकीय गढो—चुनार और रोहतास सहित १५ जून, १६४५ को दारा इलाहाबाद के सूबे का सूबेदार (राज्यपाल) नियुक्त हुआ। चूँकि राजकुमार इस समय दरबार के साथ काश्मीर मे भ्रमण कर रहा था, बकी बेग को जो दारा के अन्तःपुर का मुख्य ख्वाजा था, उस प्रान्त मे उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। अनुपस्थित महाराज्यपाल की ओर से १२ वर्षो तक बकी बेग और अन्य प्रतिनिधियो ने इस प्रान्त का सफलतापूर्वक प्रशासन किया। यहाँ पर दारा केवल एक बार आया। (१६५६–१६५७) और बनारस मे १ जुलाई, १६५७ को उसने अपने प्रसिद्ध स्मारक ग्रन्थ सिर्रूल् अस्रार (सिर्रे अकबर के नाम से भी विख्यात) को पूर्ण किया। यह ग्रन्थ ५० उपनिषदो का अनुवाद है। इलाहाबाद से राजकुमार को कोई राजनैतिक तथा आर्थिक स्वार्थ न था। राजकुमार की दृष्टि मे इसके सम्मान का कारण केवल यह था कि वह हिन्दु-विद्या का केन्द्र और सूफी फकीर शेख मुहीबुल्ला इलाहाबादी का निवास-स्थान था।

२—पजाब—करीब दो वर्ष पीछे (मार्च, १६४७) पजाब का सूबा दारा के महाराज्यपाल-क्षेत्र मे सम्मिलित कर दिया गया। चूँकि इस समय यह प्रान्त उस शाही सेना को रण-सामग्री पहुँचाने का केन्द्र-स्थान हो गया था, जो बलख़ मे औरगजेब की अधीनता मे युद्ध कर रही थी। दारा को करीब एक वर्ष तक अपने नये प्रान्त के मुख्य निवास-स्थान पर ठहरना पडा। यह प्रान्त निर्विघ्न रूप से दारा के अधिकार मे रहा; जब तक कि औरंगजेब की सेना ने उसको यहाँ से बाहर न भगा दिया। यद्यपि यह प्रान्त साधारणतया उसके प्रतिनिधियो के प्रबन्ध मे रहता था, परन्तु लाहौर को दारा का सर्वोपरि ध्यान था और उसके शासन की सराहना यहाँ से अधिक और कही नही हुई। उसको महान् जन-प्रसिद्धि इस कारण प्राप्त हुई कि नगर के कल्याण मे उसने बहुत रुचि प्रकट की और जिसको उसने अनेक चौको (अर्थात् बाजारो) के निर्माण से उन्नत कर दिया। उसके नाम को अब भी लाहौर मे प्रेम से स्मरण किया जाता है और औरगजेब द्वारा निर्मित बहुमूल्य बादशाही मस्जिद सदैव बदनाम रही है क्योकि इसका निर्माण खूनी लूट से हुआ है।[1]

१—सिक्खों ने इस मस्जिद को बारूदखाना बना दिया था, अग्रेजों ने इसे मुसलमानो को वापस दे दिया जो इसको अकलदम समझकर इससे घृणा करते थे (लाहौर का गजेट

दारा के लिये लाहौर विशेष रूप से पवित्र था क्योकि यहाँ पर प्रसिद्ध सन्त मियाँ मीर का निवास-स्थान था और यही पर उसकी मृत्यु हुई थी। १६३४ ई० मे उस सन्त से उसका परिचय हुआ था। महाराज्यपाल के रूप मे अपने शासन-काल मे दारा ने सन्त की कब्र पर एक महासमाधिभवन का निर्माण किया और यही पर उसकी प्रिय अर्धांगिनी नादिरा बानू बेगम के शव को शरण मिली।

३—गुजरात—यह सूबा १६४६ मे दारा को प्राप्त हुआ। उसने बकीबेग[१] को जिसको अब बहादुरखाँ की उपाधि प्राप्त हो गई थी, इलाहाबाद से गुजरात मे स्थानान्तरित कर दिया कि वह इस नवीन प्रान्त की व्यवस्था को स्थिर कर दे। दारा कभी भी गुजरात न गया और उसके भारवहन से वह जुलाई, १६५२ मे मुक्त हो गया।

४ तथा ५—मुल्तान और काबुल—जुलाई, १६५२ में प्रान्तो का पुनर्विभाजन आवश्यक हो गया जब दारा ने कन्धार अभियान के नायक का स्थान ग्रहण किया। ईरानियो से उस गढ को पुनः हस्तगत करने मे औरगजेब दो बार असफल हो चुका था। गुजरात के भार से दारा मुक्त किया गया (१७ शाबान १०६२ हि०, १४ जुलाई, १६५२ ई०) और बदले मे उसको काबुल और मुल्तान मिले। औरगजेब को मुल्तान का प्रान्त दारा के सुपुर्द करना पडा और दक्षिण के चार सूबे उसको प्राप्त हुए।[२] बिहार का सूबा जिस पर बगाल और उडीसा के महाराज्यपाल राजकुमार शुजा की आँख बहुत दिनो से लगी हुई थी, दारा को २० दिसम्बर, १६५७ को दे दिया गया जब कि गृह-युद्ध लगभग आरम्भ हो गया था। दारा मुल्तान और काबुल दोनो स्थानो मे अनुपस्थित महाराज्यपाल रहा। १६५३ ई० मे कन्धार से उसकी वापसी पर सुलेमान शिकोह उसके साथ दिल्ली गया। काबुल को बहादुरखाँ (बकीबेग) के शासन मे छोड दिया। मुल्तान मे एक वर्ष पीछे मुहम्मदअलीखाँ के स्थान पर सैयद इज्जतखाँ नियुक्त किया गया। जनवरी, १६५७ मे रुस्तमखाँ बहादुर फीरोजजग को काबुल मे

१८८३, पृ० २४, १७६)। मियाँ मीर का समाधि-भवन लाहौर पूर्वीय (छावनी) स्टेशन के समीप है। यह सगमरमर और आगरा के रेत के पत्थर का भवन है और इसके आँगन में एक मस्जिद है (वही, पृ० १६६)। मनुची का वर्णन है कि इस भवन को दारा ने बनवाया था।

१—बहादुरखाँ (बकीबेग)। मासीरुलुमरा I ४४४-४४७ में जीवन-सम्बन्धी पाण्डुलेख।

२—१७ शाबान १०६२ हि०—जुलाई १४, १६५२ को प्रान्तो का पुनर्विभाजन, (वारिस ६६ अ)। गुजरात शाइस्ताखाँ को मिला जिसके स्थान पर मार्च, १६५४ में उसी प्रान्त में मुरादबख्श नियुक्त हुआ (वारिस ८५ अ०)।

बहादुर खाँ (बकीबेग[1]) के स्थान पर नियुक्त किया गया जिसका स्थानान्तर लाहौर को हो गया। जब गृह-युद्ध का आरम्भ हुआ, अल्पायु सुलेमान शिकोह का सरक्षक बनाकर बकीबेग को शुजा के विरुद्ध अभियान पर भेज दिया। लाहौर मे उसकी जगह पर सैयद इज्जतखाँ (अब्दुर्रज्जाक जीलानी)[2] नियुक्त हुआ।

विभाग ३—दाराशिकोह की सेवाएँ और उसकी आय

सैनिक और प्रशासक के रूप मे दारा का चरित्र घटनाशून्य है। अपने अधिकारी जीवन मे दारा ने ईरानियो के विरुद्ध तीन सैनिक अभियानो का सञ्चालन किया। इनमे से दो आमोदमय सैन्यप्रदर्शन-मात्र थे जिनमे किसी शत्रु का सामना न करना था, परन्तु तीसरे मे दुःखद रूप से भाग्य ने उसका पक्ष त्याग दिया। वह कई प्रान्तो का नाममात्र का अनुपस्थित महाराज्यपाल रहा जहाँ पर उसके नाम से उसके अधीनस्थ अधिकारी शासन करते थे और जिनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। युवराज का पालन-पोषण काँच के हरित गृह मे पाले हुए वृक्ष की भाँति किया गया था, उसको सकटो और निराशाओं से सुरक्षित रखा गया था और शाहजहाँ के प्रेम के सतत निर्झर से उसको सीचा गया था।

यद्यपि उसकी सेवाएँ न्यून थी, उसकी आय अधिक थी। केवल अपने सैनिक पद के कारण वह २ करोड ७५ हजार रुपये के वार्षिक वेतन का अधिकारी था। काश्मीर, काँगडा और पजाब मे अपनी विस्तृत जागीर भूमियो के अतिरिक्त उसको महामन्त्री सादुल्लाखाँ की समस्त जागीरें दे दी गई थी (अप्रेल, १६५६)। उसके पास दो कर्मशून्य वेतनिक-पद भी थे—कोल (अलीगढ) की फौजदारी और दिल्ली और आगरा के बीच के प्रदेश की राहदारी (सरक्षक पद) जिनकी वार्षिक आय साढे २२ लाख रुपये वार्षिक थी। शाहजहाँ ने दारा की इच्छा पर विशाल सैनिक और कर-सम्बन्धी साधन छोड रखे थे और उनका उपयोग करने के लिये वास्तविक योग्यता को विकसित करने का उसको कोई अवसर न दिया था।

विभाग ४—ईरानियों के विरुद्ध प्रथम अभियान

१५५२ ई० से १२५ वर्षो तक तैमूर और सफवी राजवंशो मे क़न्धार का प्रान्त विवादास्पद भूमि रहा। इस काल मे कई बार इसका हस्त परिवर्तन हुआ। दो बार अनायास ही यह मुगल सम्राटो को प्राप्त हो गया; परन्तु उनके शिथिल

१—वारिस ह० अ० ६६ ब०, खफीखाँ, II, ७१३।

२—सैयद इज्ज़तखाँ की जीवनात्मक टिप्पणी—मसीरुलुमरा, II, ४७५।

नियन्त्रण के कारण वह जाता रहा। अकबर की बाल्यावस्था मे शाह तहमास्प ने इसको अधीन कर लिया, परन्तु १५९६ मे मुजफ्फरखाँ मिर्जा ने विश्वास-घात द्वारा उसको मुगल सम्राट् को समर्पित कर दिया और वह मुग़ल-सेवा मे प्रविष्ट हो गया। शाह अब्बास प्रथम ने १६२३ मे इसको बलात् जहाँगीर से छीन लिया, परन्तु १५ वर्ष पीछे कन्धार के ईरानी राज्यपाल अलीमर्दनखा ने इसको मुगलो के हस्तगत कर दिया और अपने प्रजापीडक स्वामी के क्रोध से शाहजहाँ के दरबार मे भाग आया (फरवरी, १६३८)।

अनायास-प्राप्त इस प्रदेश को संगठित करने के लिये शाहजहाँ ने शक्तिशाली प्रयास किये और कन्धार के दो आश्रित स्थानो बस्त और जमीदावर को विजित कर लिया। इन दुर्गों की रक्षा-पंक्तियो को दृढ करने मे उसने ८ लाख रुपये व्यय किये और एक नये प्रान्त—कन्धार के सूबे का निर्माण किया। डेरा गाजीखाँ और डेरा इस्माईलखाँ के पश्चिम स्थित जातियो की प्रदेश भूमि भी इसमे सम्मिलित थी और इसका राजस्व १५ लाख रुपये (६ करोड दाम) था।

कन्धार के छिन जाने के दु:ख के कारण जैसा अब्दुल हमीद ने कटाक्षपूर्वक कहा है शाह सफी को 'न तो दिन को चैन था, न रात को नीद' (रोज बे ताब वो शब बे ख्वाब)। परन्तु वास्तव मे उसके अपने स्वामी की अवस्था कुछ अच्छी न थी क्योकि उसको सदैव यह भय रहता था कि अनायास-प्राप्त यह असुरक्षित स्थान कही उसके हाथो से न निकल जाये। १६ वी और १७ वी शताब्दियो मे भारतीय विदेश नीति का यह स्वाभाविक गुण था कि हिन्दुस्तान, तुर्की और आक्ससपार देशो के सुन्नी शासको के सघटन से शिया-मत-प्रधान ईरान का कूटनीतिक पृथकत्व कर दिया जाये। तुर्की के सुल्तान मुराद चतुर्थ से शाहजहाँ ने गाढी मित्रता बनाये रखी। सुल्तान मुराद की ईरानी इराक पर अपनी योजनाये थी। शाहजहाँ ने बलख के नजरमुहम्मदखाँ और ऊजबेग सरदारों को मैत्रीवत् सन्देशो और उपहारो के सामयिक विनिमय से प्रसन्न रखने की चेष्टा की; परन्तु उन्होने हृदय से कभी उस पर विश्वास न किया क्योकि तैमूर वंशियो ने बलख, बदख़शाँ और समरकन्द के प्रति अपने स्वत्व प्रतिपादन का कभी सर्वथा त्याग न किया। इन युद्ध-सदृश और कूटनीतिक व्यवहारो के होते हुए भी ईरानी भूत शाहजहाँ के स्वप्न को प्राय: भंग ही करता रहा।

१६३९ के आरम्भ मे यह समाचार प्राप्त हुआ कि ईरानी कन्धार पर आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं। युवराज को जिसने अभी तक किसी युद्ध में भाग न लिया था, यह उत्सुकता थी कि ईरानियो के विरुद्ध अभियान मे वह अपना प्रथम रणानुभव प्राप्त करे। तदनुसार ८ फ़रवरी, १६३९ (१४

शव्वाल, १०४८ हि०)[1] को लाहौर मे बहुत गम्भीरता से उसको आज्ञा दी गई।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक ईरानी शत्रुता का भय अस्त हो गया था, जैसा कि काबुल के प्रति भारतीय सेना का मन्द और विराम गति से प्रयाण प्रकट करता है। वह १८ मई को काबुल पहुँची। उस नगर मे एक पक्ष के विश्राम के बाद दारा को अपने दलसहित गजनी जाने की आज्ञा मिली और किलीचखाँ को कन्धार जाने की, कि ईरानियो की गतिविधि पर निगाह रखें। वास्तव मे इस समय शाह सफी का कुस्तुन्तुनिया के सुल्तान मुराद चतुर्थ से घोर सघर्ष चल रहा था। सुल्तान ने ईरानी इराक पर आक्रमण कर दिया था और बगदाद को हस्तगत कर लिया था। जुलाई, १६३९ मे मुगल युवराज काबुल वापस बुला लिया गया।

विभाग ५—क़न्धार की ओर दारा का दूसरा अभियान

सुल्तान मुराद चतुर्थ की मृत्यु पर और इराक और आर्मीनिया मे अपने नव-विजित प्रदेशो से तुर्को के शीघ्र निष्कासन पर, ईरानी आक्रमण का भय वास्तविकता को प्राप्त हो गया। तुर्को के भय से मुक्त होकर और अपनी नयी विजयो पर प्रसन्न होकर, ईरान के शाह ने अपने राज्य के समस्त युद्ध-साधनो को कन्धार की ओर मोड दिया। उसने अपने मुख्य सेनापति रुस्तमखाँ गुर्जी को सबल सैन्य सहित पहले ही भेज दिया और उसको आदेश दिया कि खुरासान की राजधानी निशापुर मे ठहर कर उसके आगमन की प्रतीक्षा करे। लाहौर के मुगल दरबार मे इस समाचार से बहुत हलचल पैदा हो गई। प्रान्तीय शासनो से विशिष्ट अधिकारी अविलम्ब बुलाये गये और अपने-अपने दल लेकर राजपूत सामन्त पजाब की ओर शीघ्रता से चल पडे। इस सेना का सर्वोपरि अधिकार राजकुमार दारा को दिया गया (१० अप्रैल, १६४२) और सैयद खाँजहाँ, रुस्तमखाँ बहादुर, राजा जयसिंह, राजा जसवन्तसिंह और अन्य अनुवभी वृद्ध पुरुष दारा के अधिकारी-मण्डल मे नियुक्त किये गये।

मुल्तान के सूबेदार सैयदखाँ बहादुर और काबुल की सेना के कुछ अधिकारियो को आज्ञा मिली कि दारा को सैन्य सहायता दें। विशाल सेना को

१—प्रथम अभियान—दारा का कन्धार के प्रति प्रस्थान—पाद० II १४०। मुगल सेना का काबुल में आगमन, २५ मुहर्रम १०४९ हि० वही, पृष्ठ १४७। दारा का गजनी को प्रस्थान १७ सफर, १०४९ हि० वही, १५०। काबुल को वापस १८ रबीउल अव्वल, १०४९ हि० वही, १५१। घर को प्रस्थान २५ रबी उस्सानी वही, १५६। लाहौर में सम्राट् का सदर्शन, ९ अक्तूबर, १६३९ ई० (२१ जमादी उल्सानी, १०४९ हि० वही, १६३)।

लेकर फिर युवराज ने सिन्धु को पार किया, परन्तु ईरान का शाह निशापुर कभी न पहुंचा क्योकि मई, १६४२ मे काशान के स्थान पर उसने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी।

यह घटना दारा के लिये घोर निराशाजनक हुई। बिना शत्रु से टक्कर लिये दारा वापस होना न चाहता था। उसने प्रस्ताव किया कि सीस्तान, फराह और हिरात पर आक्रमण करके ईरानियो को युद्ध पर विवश कर दिया जाये और इस प्रकार कन्धार को सदा रहने वाले ईरानी भय से मुक्त कर दिया जाये। शाहजहाँ ने अधिक विवेक से काम लिया और इस अविचारपूर्ण साहस को स्वीकार न किया और राजकुमार को गजनी से आगे बढने की आज्ञा न दी। कन्धार की गढस्थित सेना और निवासियो को पुन: विश्वास दिलाने के लिये दो विशिष्ट अधिकारी रुस्तमखाँ बहादुर फीरोजजग और सैयद खाँ बहादुर जफरजग ३० हजार सवारो के सहित वहाँ भेजे गये। एक मास बाद दारा दरबार मे वापस बुला लिया गया और लाहौर मे उसके आगमन पर (२ सितम्बर, १६४२)[१] विजयी सेनापति योग्य सर्वसम्मान से उसका स्वागत किया गया।

विभाग ६—कन्धार में औरंगज़ेब की असफलतायें

ईरानियो के विरुद्ध दारा के द्वितीय अभियान के ५ वर्ष बाद तक शाहजहाँ ने अपेक्षाकृत विश्राम का आनन्द भोग किया। जिसका श्रेय अल्पवयस्क शाह अब्बास द्वितीय की बाल्यावस्था और परवशता को है। परन्तु शाह ने अपने शत्रु के अनुमान को असत्य सिद्ध कर दिया और मध्य हेमन्त (जनवरी, १६४६) मे सुसज्जित सैन्य सहित कन्धार के सम्मुख प्रकट हो गया। सुहावने जाडे के आनन्द के लिए शाहजहाँ ने इस अति लुभावने अधिकृत क्षेत्र की बलि दे दी। स्वयं रणक्षेत्र मे उपस्थित होने के स्थान पर उसने औरंगजेब और सादुल्लाखाँ के अधीनस्थ सैन्य-साहाय्य भेजी; परन्तु कायर मुगल सेना ने गढ को राजकुमार के आगमन के पहले ही शत्रु के हवाले कर दिया। औरगजेब ने मई, १६४६ में कन्धार पर घेरा डाल दिया, परन्तु तीन मास के असफल प्रयास के बाद वह वापस हटने पर विवश हो गया।

इसके बाद तीन वर्ष की भारी तैयारियो के बाद औरंगजेब और सादुल्लाखाँ ६० हजार की विशाल सेना सहित भेजे गये कि कन्धार को पुन: विजित करे। दूसरा घेरा २ मई, १६५२ से जुलाई १६५२ तक पडा रहा, परन्तु बहुत खुदाई और बमबारी के होते हुए भी सफलता इतनी ही दूरस्थ प्रतीत होती रही जितनी

१—कन्धार के प्रति दारा का दूसरा अभियान—पाद० II २९१–३०८।

पहले किसी और अवसर पर। निराशा-मय साहस से औरंगजेब सर्वदल-सहित आकस्मिक आक्रमण के लिए उत्सुक था, परन्तु इस विवेक-हीन उद्योग का समर्थन करने से सम्राट ने इन्कार कर दिया और उसको आज्ञा दी कि वह घेरे को हटाले।

विभाग ७—क़न्धार को घेरने के लिये दारा की नियुक्ति—उसकी तैयारियाँ

९ जुलाई, १६५२ को जब कन्धार से हताश होकर सेना काबुल वापस आई, साम्राज्य की प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिये दारा ने दूसरे अभियान के नेतृत्व के लिए अपने को प्रस्तुत किया। अतः निश्चय हुआ कि आगामी वसन्त ऋतु मे युवराज को महासेनापति बनाकर शाही सेना ईरानियो के विरुद्ध लाहौर से प्रस्थान करे। इस समय युवराज का पद ३० हजार जात का था जिसमे २० हजार सवारो का दो अस्पाह, सेह अस्पाह दल भी था। शाहजहाँ का भी सिंहासनारोहण के समय यही मनसब था। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के समस्त सैनिक साधन उसकी इच्छा पर रख दिये गये कि वह इस चढाई करने वाली सेना को सुसज्जित करे। काबुल और मुल्तान के प्रान्त उसके शासन-क्षेत्र में सम्मिलित कर दिये गये, जिन पर शासन करने के लिये उसके प्रतिनिधि शिकोह और मुहम्मदअलीखाँ क्रमशः नियुक्त किये गये।

सैनिक की अपेक्षा विद्वान् के रूप मे इस समय दारा की ख्याति अधिक थी और समस्त साम्राज्य किसी चमत्कार की प्रतीक्षा मे था। युवराज की योग्यता का अनुमान स्वय युवराज से अधिक और कोई न करता था। औरंगजेब और सादुल्ला जैसे योग्य पुरुष उसके अनुमान मे केवल दयनीय साधारण व्यक्ति थे। वह स्वभावतः आवेगशील भावुक और अनुचित रूप से आशावादी था। उसकी कल्पना प्रायः उसको धोखा देती। गिबन के सन्त पीटर के समान दारा "जैसी उसकी इच्छा होती वैसा विश्वास कर लेता और जो कुछ वह विश्वास करता वह उसको स्वप्नो और आभासो मे दिखाई देता।" भावुकता के सतत अभ्यास और सूफी और हिन्दू सन्तो (साधको) की संगति के कारण दारा की मानसिक प्रवृत्ति सरल विश्वासी, सवेदनशील और अव्यावहारिक हो गई थी। आशावादिता ने राजकुमार की कल्पना पर अपना प्रभाव प्रकट किया। कन्धार के शीघ्र हस्तगत होने के स्वप्न उसको पहले से हो रहे थे।

कहा जाता है कि जब वह काबुल मे ठहरा हुआ था, एक दिन दो फकीर राजकुमार की बैठक मे आये और अपने थेगली लगे हुए वस्त्रो की सलवटो में अपने शिरो को ढक कर मौन बैठ गये। कुछ देर के बाद उनमे से एक ने अपना शिर उठाकर जोर से कहा—"ईरान की घटनाये इस समय मेरे समक्ष है। ईरान

के शाह की मृत्यु हो गई है।" दूसरा चिल्ला उठा—"मै भी यही देख रहा हूँ, परन्तु मै वापस नही आऊँगा जब तक शाह का विमान गाड न दिया जायेगा।" इन शब्दो को सुन कर राजकुमार ने कहा—"मैने भी एक आभास (मकाशफा) मे देखा है कि सात दिनो से अधिक मुझको कन्धार मे न ठहरना होगा और इन सात दिनो मे गढ विजित हो जायेगा 'शाह अब्बास की मृत्यु सत्य हो सकती है।" हेमन्त के आगमन पर वह लाहौर वापस आ गया और अपनी तैयारियो मे यथाशक्ति संलग्न हो गया। वारिस कहता है—"जो एक वर्ष मे न हो सकता था वह कार्य लाहौर मे अपने ३ मास और ९ दिन के निवास-समय मे राजकुमार ने पूरा कर लिया (लतायेफ, ७ अ, वारिस ७० अ)। लतायेफ-उल-अख्बार का लेखक कहता है—"जो विपुल भडार और अवरोध सामग्री राजकुमार ने एकत्र की, उसका कुछ अनुमान इस बात से हो सकता है कि ६ हज़ार बॉस जिनमे से प्रत्येक लम्बाई मे १० गज से कम न था (१ गज = ४२ अगुल) सीढियाँ बनाने के लिये इकट्ठे किये गये।" (लतायेफ ८ ब)।

तोपखाने की सुसज्जा और सैनिक रसद विभाग के सगठन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। बजारे, जो उस समय सेना के ठेकेदारो और अन्न के व्यापारियो की एक जाति थे, इस पर बाध्य किये गये कि कन्धार की सेना को अन्न की रसद पहुँचाते रहेगे। लाहौर के तोपो के कारखाने मे तीन बडी तोपे[1] और ७ छोटी तोपे (तोपें हवाई) ढाली गईं।

तोपखाने की पूरी शक्ति ७ बडी तोपो, १७ तोपे हवाई, और ३० छोटी तोपो तक पहुँच गई। ३० हजार गोले, १४ हजार हवाइयाँ, डेढ हजार मन गोलियाँ और उसी अनुपात मे लाहौर के अस्त्रागार मे बारूद का संग्रह किया गया।

१—इनमें से सबसे बडी का नाम 'फतहे मुबारक' रखा गया। यह ४५ सेर का गोला फेंक सकती थी। इस पर यह शुभेच्छा खुदी थी —

तोपेदाराशिकोह शाहेजहाँ। मी कुनद कन्धारा रा वैराँ।

"ससार के अधिपति दाराशिकोह की यह तोप कन्धार का विनाश करदे"। एक दूसरी तोप का नाम 'किश्वर कुशा' रखा गया। यह ३२ सेर का गोला फेंक सकती थी। तीसरी का नाम सस्कृत में रखा गया—गढ भजन। सब से बडी तोप ४६ सेर का गोला फेंक सकती थी। इसका नाम 'किला कुशा' रखा गया और उस पर यह शेर खोदा गया—

तोपे दाराशिकोह, किला कुशा। सरे गरजस्प मे बुर्द ब हवा॥

"दाराशिकोह की यह तोप 'किला-कुशा' नामक गरजस्प के शिर को वायु में फेंक दे।" (लतायेफ-उल-अख्बार ७ अ, ८ अ, वारिस ७ ब)

तोपखाने के कार्यकारिवर्ग मे पर्याप्त वेतन भोगी कुछ योरुप के तोपची और थोडे से सैनिक इन्जीनियर थे। कहा जाता है कि लाहौर मे अपने निवास-समय मे राजकुमार ने आज्ञा दी कि कन्धार के अनुरूप एक नकली किले का निर्माण किया जाये जिससे उसको हस्तगत करने का पूर्व अभ्यास हो सके। तब उसने फिरगियो (योरुप-निवासियो) को बुलाया जो घेरा डालने मे निपुण थे और जिनके पास गढहस्तगत करने की विद्या पर उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तके थी ('किताबहा दर ऑफन साखतन्द उहमराह दाशतन्द)। इन पुस्तको मे सर्व प्रकार के कल्पनीय गढो के चित्र थे, उनके वर्णन थे और जिस जाति का गढ हो उसी के अनुसार उसके निकट प्रवेश करने के ढंग थे। नियुक्त दिन पर युवराज स्वय कन्धार का यह नकली घेरा देखने लाहौर गया। उसने दो घेरने वाली तोपो की पक्तियो का निरीक्षण किया जो इस कृत्रिम कन्धार के सम्मुख खडी की गई थी और इसकी भित्तियो पर गोलाबारी की आज्ञा दी। एक दल को आज्ञा दी कि उस पर अचानक धावा करे और उसको हस्तगत कर ले। उपस्थित सज्जनो ने राजकुमार को बधाइयाँ दी। एक समकालिक पुस्तिका—"फतेह अव्वले-दारा शिकोह" अर्थात् दारा शिकोह की प्रथम विजय—मे यह घटना चिरस्मृत कर दी गई। वह राजभवन को वापस आया और प्रशसा की कि हिन्दुस्तानियो की अपेक्षा फिरगियो का तोपखाना अच्छा था[1]।

अधिकारी गणना-पट्ट के अनुसार लाहौर मे एकत्र इस अभियानक दल की सख्या ७० हजार सवारो की थी। इसमे ११० मुसल्मान और ५८ राजपूत उच्च पदाधिकारियो की सेनाये सम्मिलित थी (जिनका अधिकार क्षेत्र पंच हजारी से पंच सदी तक था)। राजकुमार की निजी सेना की टुकडियाँ भी इसमे सम्मिलित थी। इनके अतिरिक्त ५ हजार तोडेदार बन्दूकची और अहदी दल के ३ हज़ार तीर चलाने वाले ये सब घुडसवार थे। तोडेदार बन्दूकचियो की दस हजार पैदल सेना और शाही हस्तिशाला के ६० युद्ध-हस्ती थे। राजकुमार और मनसबदारो के १७० हाथी इस संख्या के अतिरिक्त थे। सेना की कार्यक्षमता इनसे बहुत बढ गई थी। सेना के न लडने वाले सस्थान मे ६ हज़ार लोनिए और बेलदार थे, ५०० पत्थर काटने वाले और खनक थे और ५००[2] पानी वाले।

१—लतायेफ़, ह० ग्र० ९ अ, ९ ब।

२—खफीखाँ के इस उद्धरण में ५०० की सख्या—यद्यपि गलत नहीं—छापे की अशुद्धि प्रतीत होती है क्योंकि सेना की सख्या को देखते हुए ५०० खनकों और पानी वालों की सख्या बहुत ही कम है। दोनों दशाओं में शुद्ध सख्या शायद ५ हजार है। आगे एक उद्धरण में वारिस कहता है कि खाई को सुखाने के कार्य में मुल्ला फाज़िल की सहायता पर सैयद महमूद बारहा को १०७० खनकों ... सहित नियुक्त किया गया था (वारिस, ७४ ब.)।

शिविर-अनुयायिओ की संख्या सम्मिलित नही है। जब तैयारियाँ पूरी हो गईं दारा ने सम्राट् को लिखा कि ज्योतिषियो ने प्रस्थान के लिये २३ रबी उल अव्वल (११ फरवरी, १६५३) और कन्धार के अवरोध के लिये ७ जमादी उस्सानी (२५ अप्रैल) निश्चित की थी। सम्राट् का निर्देश हुआ कि मुल्तान होकर थल छोटयाली के मार्ग से सेना प्रस्थान करे क्योकि मुल्तान और कन्धार के बीच मे खाद्य-सामग्री का बाहुल्य था। इस अवसर पर राजकुमार को अनेक उपहार प्राप्त हुए—आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, हाथी और घोडे जिनका मूल्य ५ लाख रुपये था, एक लाख के सोने के सिक्के और सैनिक कोष के लिये एक करोड रुपये, और इसके अतिरिक्त २० लाख रुपये अधिकारियो और सैनिको को पुरस्कार देने के लिये थे।[1]

सेना मे साधारणतया, परन्तु विशेषतया राजकुमार के निजी दल के सैनिको और अधिकारियो मे बहुत उत्साह फैला हुआ था। अपने स्वामी की भाँति ये सब "अपरीक्षित वीर" थे। इनके अदम्य आशावाद से उनको दुःख होता जो लडते-लडते वृद्ध हो गये थे और दो बार कन्धार से असफल वापस आये थे। दारा का प्रत्येक अधिकारी अपने को उस समय का रुस्तम या अफरासियाब समझता था और अनिच्छुक प्रतीत होता था कि कन्धार-विजय के गौरव मे अपने शाही सहायको को हिस्सा दे, परन्तु दारा अपनी सफलता के लिये लौकिक बल पर इतना भरोसा न करता था जितना कि आध्यात्मिक बल पर। बहुत से "प्रार्थनाकारी मुल्लाओ" (अरबाबे दुआआत) को उसने वेतन पर रख लिया। उन्होने उसकी विजय के लिये लाहौर मे प्रार्थना करना आरम्भ कर दिया और सेना के साथ कन्धार गये। अन्धविश्वास और जादू-टोने के उस युग मे कोई भी व्यक्ति, चाहे जितना धार्मिक और बुद्धिमान क्यो न हो, शैतान की उपेक्षा न कर सकता था। अतः राजकुमार ने कई जादूगरो (साहिरान) को अपनी सेवा मे रख लिया कि अवरोधितो के अन्न मे कीडे (किरम) पैदा कर दे और अपने जादू-टोने से शत्रु-दल मे फूट डाल दे। इस प्रकार प्रत्येक रूप से सुसज्जित होकर और बिना भेद-भाव के मनुष्य, परमात्मा और शैतान को अपनी सेवा पर विवश करके युवराज ने तीसरी बार ईरानियो के विरुद्ध मोरचा लिया।

११ फरवरी, १६५३ को दिन की तीन घडी बीत जाने पर राजकुमार दारा शिकोह लाहौर के नगर से बाहर आया और उसने बाहर शिविर मे निवास किया। दो दिन ठहरने के बाद मुल्तान, डोकी और पिशिन के मार्ग से उसने

१—सफीखाँ, I, ७१६–१७; वारिस, ह० अ० ७० ब०।

अपना प्रयाण आरम्भ किया । २३ अप्रैल (५ जमादी उस्सानी) को हिन्दुस्तानी सेना पञ्जमुन्दराह के दर्रे से बाहर आगई और २५ को क़न्धार से ५ कोस मर्दे-किला के स्थान पर शिविरस्थ हो गई। इस प्रकार मन्दगामी प्रयाण के कारण अवरोध आरम्भ करने की शुभ तिथि (७ जमादी उस्सानी) निकल गई, जिसको ज्योतिषियो ने निश्चित किया था । यद्यपि रुस्तमखाँ बहादुर फीरोजजग की अध्यक्षता मे सेना का अग्रदल पहले से कन्धार पहुँच गया था और दोनो ओर से गोलियो की मार हो चुकी थी । दारा के अधिकारियो अब्दुल्लाबेग और जाफर ने हठ किया कि खन्दको के खोदने के लिये दूसरा शुभ मुहूर्त निकाला जाये । अतः स्पष्ट है कि इस कारणवश नायकगण आते ही आते अवरोध-पक्ति मे अपने निश्चित स्थानो पर जम न सके । यह कार्य उन्होने बृहस्पतिवार, १० जमादी उस्सानी १०६३ हि० को किया । परन्तु कामराँ (हुमायूँ का हत-भाग्य भाई) के बाग मे अपने मुख्य स्थान पर राजकुमार सात दिन बाद को ही दूसरे शुभ दिवस १६ जमादी उस्सानी (४ मई, १६५३) पर ही निवास कर सका[1] ।

अध्याय ४

क़न्धार का तृतीय घेरा

विभाग १—प्राचीन कन्धार और उसके बाह्य स्थान

कन्धार का प्राचीन नगर, जिसका सर्वनाश १७३८ मे नादिरशाह ने कर दिया, आधुनिक नगर से करीब २ मील बाहर हिरात की सड़क पर था । नगर के तीन अलग-अलग भाग थे, प्रत्येक एक अलग ऊँचाई पर था । वे एक दूसरे की रक्षा कर सकते थे । पहाडी की दाँतेदार चोटी पर अनेक बुर्ज थे जो पत्थर की झिझरियो द्वारा एक दूसरे से जुडे थे । इन में से सबसे ऊँचा जो लकह कहलाता था, गढ (जिसका नाम था दौलताबाद) को ऊपर से देखता था जो कुछ नीचे दूसरी ऊँचाई पर था । बस्ती और बाजार (मण्डी) जिन के चारो ओर परकोटा था, कुछ और नीचे पूर्व के मैदान के ऊपर प्रथम पठार पर

१—दारा का कन्धार को प्रयाण—वारिस, ७४ अ०, ७४ ब०, लतायेफ, ६ ब, १३ अ, इस द्वितीय प्रयाण के अनुसार कामराँ के बाग में लगे हुए अपने शिविर में दारा ने बुधवार १६ जमादी उस्सानी—अर्थात् ४ मई, १६५३ को प्रवेश किया । परन्तु वारिस कहता है—"१५ को"—अर्थात् ३ मई को ।

बसे हुए थे। प्राचीन नगर के प्राकार कही-कही पर दस गज़ चौडे थे। ये पक्की मिट्टी के बने हुए थे, जो फूस के टुकडो और पत्थरो के मिश्रण से बहुत मजबूत कर दिये गये थे। मैदान की ओर चौडी और गहरी खाई थी। पहाडी शृङ्खला के उत्तरीय पक्ष पर, जिसके आश्रय मे गढ स्थित था, चालीस सीढियाँ थी जो चट्टान मे कटी थी और एक गुफा को जाती थी जो पहाडी के ऊपर की ओर आधी दूर पर थी। इस पहाडी का नाम चहलजीना (४० सीढियो की पहाड़ी) था जो नगर और गढ दोनो के ऊपर थी। शृ खला के बीच मे चोटी पर लाकह् का दुर्ग था जो इसके पश्चिम पक्ष पर स्थित कन्धार की रक्षा करता था। यहाँ पर एक लम्बी ढाल मे समाप्त होकर पहाडी मैदान से मिल जाती है। पहाडी सिलसिले के उत्तर पूर्वीय कोने से पहाडी के साथ-साथ चलते हुए जहाँ पर परकोटा पहाड़ी से अलग हो जाता है, हम क्रमशः बाबा वली, वेजकराँ, ख्वाजा-खिजिर और मशूरी के फाटको पर पहुँचते है। यहाँ पर गढ के दक्षिण-पश्चिमी कोने पर परकोटा फिर पहाडी से जा मिलता है। यहाँ पर मिट्टी का एक पुश्ता और गढ़ी थे। (औरङ्गजेब, खण्ड १ और २, पृ० १२४–७)।

विभाग २—घेरा डालने वाली सेना की यथास्थान नियुक्तियाँ

बृहस्पतिवार २८ अप्रैल, १६५३ को सेना के विभागीय नायको ने निम्न क्रम से स्थान ग्रहण कर घेरा-पंक्ति को पूर्ण कर दियाः—

उत्तर पूर्व से आरम्भ—

बाबा वली फाटक पर—महावत खाँ—पञ्चहचारी।

वेजकराँ फाटक पर—किलीचखाँ—पञ्चहजारी।

वेजकराँ और ख्वाजा खिजिर के बीच—जाफर, राजकुमार का मीर आतिश, अपने तोपखाने सहित।

ख्वाजा खिजिर फाटक पर—अब्दुल्ला—राजकुमार का मीरबख्शी, अपनी पैदल सेना सहित।

खिजिर और मशूरी फाटको के बीच—कासिम खाँ—शाही तोपखाने का मीर आतिश—चार हजारी।

मशूरी फाटक पर—मिर्जा राजा जयसिंह—पञ्च हजारी।

चेहल जीना बुर्ज पर—इख्लस खाँ—तीन हजारी।

लाकह् दुर्ग पर—बकी खाँ, चम्पतराय बुन्देला, सैयद मिर्जा तथा अन्य।

राजकुमार का मीरे सामान, मुल्ला फ़ाजिल, खाई को सुखाने के कार्य पर नियुक्त हुआ और १०७० खनको और एक सैनिक दल सहित सैयद महमूद बारहा उसकी सहायता पर नियुक्त किया गया। लाकह् पहाड़ी के पश्चिम की ओर

मिर्जा कामरॉं के बाग के सामने राजकुमार ने ४ मई को अपने शिविर मे प्रवेश किया। रुस्तमखाँ बहादुर फीरोजजग ने सबल सैन्य सहित कुछ आगे बढ कर अपना स्थान संभाला कि बस्त की सडक पर निगाह रखे। अन्य थाने असदिग्ध योग्यता के अधिकारियो के सरक्षण मे सौप दिये गये।

विभाग ३—धावे और रात्रि प्रहार

प्रथम दिवस को ही ईरानियो का एक जत्था खिजिर फाटक से बाहर आ गया और उसने हिन्दुस्तानियो को चुनौती दी। कुछ अनुयायी लेकर ख्वाजा खॉं उजबेग बाहर आया और उसने खन्दक के पास तक शत्रु का पीछा किया। यहाँ पर उसका घोडा मारा गया और उसके भी कई गोलियो के घाव आये जो प्राकार से चलाई थी। जब वह वापस हो रहा था, पलायक उस पर टूट पडे और उसको मार डालने वाले ही थे, जब उनके एक अधिकारी ने चिल्लाकर उनसे कहा—"तुमको शरम आनी चाहिये। उसको जाने दो।" जब यह समाचार राजकुमार के कानो तक पहुँचा, उसने ख्वाजाखॉं को बुलाया और उसको एक विशेष खिलअत (वस्त्रोपहार) और एक घोडा उपहार मे दिया और उसके मनसब मे २०० सवार बढा दिये।

२ रमजान (१७ जुलाई, १६५३) को प्रातःकाल ही ३०० ईरानियो का एक जत्था इज्जतखॉं की खन्दक के सिपाहियो पर टूट पडा, जब वे नमाज (प्रार्थना) के लिये एकत्र हुए थे। उन्होने बहुत से सैनिको को मार डाला और घायल कर दिया। यदि नजर बहादुर खेशगी के पुत्रो कुत्बखॉं और शम्सखॉं ने उनको वीरतापूर्वक सहायता न दी होती, उन पर बहुत बडी विपत्ति आ जाती। इन दोनो भाइयो के ३१ सैनिक घायल हो गये और महावत खॉं के १४ सिपाही मारे गये और ३१ घायल हो गये। उसने वापस जाते हुए ईरानियो का सामना उनकी खन्दक के पास किया।

इज्जत खॉं दारा का कृपापात्र सेवक था; उसने अपनी हानि की मात्रा (करीब ६० मरे और घायल) गुप्त रखी, अन्यत्र मारे गये, ईरानियो की लाशो को अपनी खन्दक मे उठा लाया और उन लाशो को अपने सैनिको की वीरता के विजय-चिह्न के रूप मे उस अधिकारी को बता दिया जो पूछताछ करने भेजा गया था[1]।

१—लतायेफलअख्बार ७६ अ–७७ अ। पादशाहनामा में अधिकारी वर्णन दारा द्वारा प्रेषित पत्रों के आधार पर स्पष्ट रूप से है। वह इस प्रकार है—"धावे बहुत ही कम हुए और कोई भी सफल न हुआ। परन्तु एक अवसर पर महावत खॉं को खाई के सैनिकों की उपेक्षा के कारण, खॉं के कुछ सैनिक मार डाले गये और कुछ घायल हो गये। जब ईरानी वापस हो रहे

अवरोध की समाप्ति के निकट—विशेषकर दारा के कृपापात्र जाफर की खन्दको पर—धावे बहुधा हुआ ही करते। अपने रात्रि-जागरण मे ईरानी उतना सतर्क रहते जितना कि हिन्दुस्तानी असावधान। वे प्रायः चुपके से खन्दको में घुस आते और अपने रात्रि आक्रमण के भयानक स्मृति के रूप मे खनकों के मुण्ड-हीन रुण्ड छोड जाते। कासिमखाँ की खाई मे बेलदारो का दरोगा (नायक) फतेह मुहम्मद कलाल २४ मई की रात्रि मे खाई के अग्रभाग को चार बेलदार लेकर गया। दूसरे ही दिन प्रभात को उनके मस्तकहीन शव मिले। उसी रात्रि को दूसरा जत्था महावतखाँ और किलीचखाँ की जगहो के बीच की जमीन को चुपके से पार करके उनकी पंक्तियो के पीछे के मैदान मे पहुँच गया। उसने तीन सिपाहियो को मार डाला और चार घोडो की टाँगे तोड डाली। (लतायेफ ३१ ब)। सतर्क बुन्देले सरदार भी इन अप्रिय अवपातो (धावो) से बचे न थे। ३० जून के मध्याह्न मे पहाडसिंह बुन्देला की खाइयो मे उसके सिपाहियो को असावधान देख कर अवरोधितो (घिरे हुओ) की एक टोली उन पर आ धमकी और करीब ६० लोगो को मार डाला; पहाडसिंह के कुछ सिपाहियो ने उनका पीछा किया और गढ की गोलियो से अपने २० आदमी और नष्ट किये। (वही, ५८ अ०)। तीसरी रमजान को (१८ जुलाई) करीब ३० ईरानी बन्दूकची लाकह की पहाडी से उतर आये, चार ऊँटो और पाँच गायो के गले काट डाले। ये चम्पतराय बुन्देला और बकी खाँ के तोपखानो के बीच की जमीन पर चर रहे थे। वे उनका माँस लेजा रहे थे कि कई सौ शाही सैनिको ने उन पर आक्रमण किया। अपने साथियो की रक्षा पर और ईरानी पहुँच गये और परस्पर गोली चली, परन्तु ईरानी अपना शिकार लेकर भाग ही गये। (७९ ब.)। ये थोड़ी-सी उदाहरणार्थ घटनाये है जो इस अवरोध मे प्रायः होती ही रहती थी।

थे, इज्जतखाँ की खाई के सिपाहियों ने जो समीप ही थे, उनको दण्ड दिया और कुछ ईरानियों को मार गिराया।" (वारिस ७७ ब)। शिविर में साधारण वार्तालाप का यह विषय बन गया कि इस घटना के असत्य वृत्तान्त पर दारा ने अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। लतायेफुल अख्बार का लेखक कहता है—"चूँकि आरम्भ से ही यह स्पष्ट था कि युवराज की इच्छा थी कि गढ को हस्तगत करने के प्रयासों का सम्पूर्ण श्रेय उसी के ही सेवकों को—विशेषकर जाफर और इज्जतखाँ को प्राप्त हो ·· शत्रु को दण्ड देने में, उसको भगा देने में और उनको रोकने में कि अपने मृतकों को उठा न ले जायें, जो कुछ महावतखाँ के सैनिकों ने किया—उसका श्रेय सम्राट को प्रेषित वृत्तान्तों में इज्जतखाँ को दिया गया। दो मारे हुए शत्रुओं के शवों की उपस्थिति इसका आधारभूत कारण बताया गया। वास्तव में महावतखाँ के तोपखानों के सामने से इज्जतखाँ के सैनिकों ने उनको उठा लिया था ·· कुतबखाँ और शम्सखाँ का कोई उल्लेख नही है·······।" (७८ ब—७९ ब.)

विभाग ४—जादू और चमत्कार

यद्यपि दारा शिकोह वास्तव मे ईश्वर-प्रेमी था, परन्तु ईश्वर के झगडे को अपना झगडा बनाना उसके धर्म का अङ्ग न था। अपनी युद्ध-सज्जा के पूरक रूप मे बहुत से विद्वान् और ईश्वर-भक्त उलेमा (धर्मज्ञो) के साथ वह लाहौर से कई टोना करने वाले जादूगर भी लाया था। उनमे एक हिन्दू सन्यासी, स्पष्टतया तान्त्रिक साधु, इन्द्रगिरि नामक था, जो बहुत दिनो से इस प्रतिज्ञा पर कि कन्धार मे वह अपना चमत्कार बतायेगा, राजकुमार के अन्न-पान का उपभोग कर रहा था। वह "४० आत्माओ (प्रेतो) का अधिपति" माना जाता था जिनसे वह परकोटा को गिराकर खाई भरने का काम ले सकता था। ३ मई को इन्द्रगिरि को आज्ञा हुई कि अपने प्रेतो को बुलाये और उनको गढ पर लगादे जो मानुषी प्रयास द्वारा अजेय प्रतीत होता था। बहुत विश्वास से वह खाई तक गया और गढ मे प्रवेश की आज्ञा माँगी। ईरानी सन्तरियो के आह्वान के उत्तर मे उसने कहा—"मै राजकुमार के निकट मित्रो मे हूँ। मै गढ को देखना चाहता हूँ और एक चिलम तम्बाकू उस ऊँचे बुर्ज पर पीना चाहता हूँ।" ईरानी उसको गढ के अन्दर ले गये और बाद को जो दूसरी ओर जा मिले थे उनसे यह पता चला कि वे ईरानी उसको अपने सरदार के पास ले गये थे। उस सरदार ने आज्ञा दी कि उसको गढ के चारो ओर घुमा दिया जाये और एक चिलम तम्बाकू उसको पीने को दी जाये। ईरानी सेना नायक ने आज्ञा दी कि उसको एक कलश मदिरा, भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुये दी जाये जो दारा साधारणतया नित्य इन्द्रगिरि को देता था।

जब इन्द्रगिरि वापस होने का बहुत आग्रह करने लगा, ईरानियो को सन्देह हो गया और वह शिकंजे मे डाल दिया गया। शारीरिक यातना मे पडकर उसने अपना भेद प्रकट कर दिया और उसको यह कार्य दिया गया कि लाकह गढ मे अपने कार्य मे सलग्न ईरानियो को पानी पिलाये। ईरानी आज्ञापक ने इन्द्रगिरि को कहा कि अपना कुछ जादू बताये जिससे मुगल सेना विवश होकर वापस चली जाये। परन्तु जब वह सन्यासी की ओर से हताश हो गया, उसने आज्ञा दी कि इन्द्रगिरि को जामरूद शाही पहाड़ी की चोटी पर पहुँचा दिया जाये और वहाँ से उसको नीचे फेक दिया जाये कि वह पाताल लोक के अपने मित्रो मे जा मिले (लतायेफ, १८ अ०)।

२३ जुलाई को एक हाजी दारा के शिविर मे प्रकट हुआ। साधु वेश मे वह जादूगर और दिठबन्द था (साहिर व चश्मबन्द)। उस ने राजकुमार से कहा कि वह कनौर (गनौर ?) के देश से आया है और उसका अभिप्राय है कि प्रार्थना और जादू से कन्धार का पतन प्राप्त करना। उसने घोषणा की कि अपने

मन्त्रो द्वारा एक पस (३ घण्टे) और दो घडियो तक वह गढ की तोपो और बन्दूको को चुप रख सकता है और इस पर्याप्त समय मे कुछ वीर पुरुष उसको हस्तगत कर सकते है। राजकुमार ने उसके लिये निःशुल्क भोजन और २०) रु० प्रतिदिन पारितोषिक के स्वीकृत किये। जादूगर ने दो रण्डियो, दो जुवारियो, दो चोरो, एक भैसा, एक मेढा और पाँच मुर्गो की भी अपेक्षा की और कुछ सोच विचार कर राजकुमार ने यह प्रार्थना भी स्वीकृत कर दी। अब एक जोगी अपने ४० शिष्यो को लेकर आया और एक विशेष प्रार्थना करने की इच्छा प्रकट की जिसके द्वारा गढस्थ सेना २० दिनो के अन्दर अधीनता स्वीकार कर लेगी। अपनी टोली लेकर वह एक एकान्त स्थान को चला गया। उसके लिये निःशुल्क भोजन और सौ रुपये दैनिक अन्य व्यय के स्वीकृत हुए। कुछ दक्षिणी साधु आये। वे गुरु कहे जाते थे[1]। वे अपने को १७ वी शताब्दी के काउट जेप्पलिन कहते थे। उन्होने बीडा उठाया कि राजकुमार के लिये वे "एक आश्चर्य वस्तु का निर्माण करेगे जो दो वा तीन व्यक्तियो को उनके हथगोलो (हुक्को) सहित उठा लेगी और बिना पक्षो और परो के वायु मे उड जायेगी।" उनको अपना प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त हो गई और ४० रुपये प्रतिदिन उनके लिये स्वीकृत हुए (लतायेफ, ८५ अ, ८५ ब०)।

अगले दिन २४ जुलाई को नकीबो (घोषको) ने प्रत्येक डेरे का चक्कर लगाया और सैनिकों को घोषणा की कि प्राकारो पर चढने के लिये तैयार हो जायँ। दोपहर को हाजी आया और कुछ देर बाद दृष्टि से ओझल हो गया; परन्तु दिन बीत जाने पर वह पुनः प्रकट हुआ और कहा—"मै गढ के अन्दर गया था और मगलवार को दोपहर के समय मै सिपाहियो को अपने साथ ले जाऊँगा।" यह आगामी सोमवार के लिये पुनः स्थगित कर दिया गया। २६ जुलाई की रात्रि मे जादूगर ने जाफर के हित मे कुछ पैशाचिक क्रियाओ का अनुष्ठान किया। हाजी ने एक दीपक जलाया और दाल के कुछ दाने (माश-उडद) उस पर डाले, तब वह एक अतिमानुष नृत्य करने लगा, कभी वह एक गज ऊँचा कूद जाता और कभी जमीन पर आ गिरता। नृत्य की समाप्ति पर दीपक के सामने एक कुत्ते का और एक भेड और मुर्गो का भी बलिदान दिया गया और तब रण्डियो, जुआरियो और चोरो को सम्बोधन कर उसने कहा—"तुम सब का बलिदान देना आवश्यक है; परन्तु तुम्हारे स्थान पर मै अपना रक्त दूँगा। तुम मुक्त हो।" अपनी एक जाँघ पर उसने घाव कर दिया, और

१—दबिस्तॉ का लेखक काश्मीरी ब्राह्मणों की एक जाति का उल्लेख करता है जो गुरुवागुरीन कही जाती थी (शिया० II, १०३)।

अपना कुछ रक्त निकालकर बलि दिये हुए पशुओ के रक्त पर उसने यह रक्त छिडक दिया। वह फिर नाचने लगा और कुछ समय तक नाचता रहा .... तब उसने जाफर को बुलाया और उसको आज्ञा दी कि बलि-रक्त से अपनी तलवार को धो लेवे जिसके प्रभाव से वह फौलाद को भी काट देगी। उसको यह भी विश्वास दिया गया कि इन क्रियाओ द्वारा वह अचेलीज बन गया था, परन्तु उसके अचेलीज की एँडी न थी।

अगले दिन जब रात्रि की केवल चार घडियाँ रह गई थी, जाफर ने अपने अनुयायियो को सुसज्जित कर दिया और उनको पूर्णतया तैयार करने के बाद वह हाजी को जगाने गया कि वह दुर्ग की तोपो को बाँध दे। अनिच्छा से जादूगर ने अपनी आँखे खोली और बोला—"मिर्जा जाफर—तीन देव (प्रेत आत्मायें) इस दुर्ग की रक्षा कर रहे है। इस रात्रि को उनका और मेरा कठोर मल्ल युद्ध हुआ है। इस युद्ध मे मुझे कई बार आकाश मे जाना पडा और पृथ्वी पर उतरना पड़ा। मैं इस समय तक दो देवो को परास्त करने मे सफल हो चुका हूँ, परन्तु तीसरा जो उन सब मे अति दुर्दान्त है, इस समय तक स्वतन्त्र है और दुर्ग के प्राकारो की रक्षा कर रहा है। आगामी सोमवार तक आक्रमण को स्थगित कर दो, क्योकि मुझे आशा है कि उस समय तक मैं इस हठी देव को अधीनस्थ कर लूँगा।"

जाफर के हित मे जादूगर के प्रयास की वार्ता बाहर भी फैल गई थी और स्पष्ट है कि ईरानियो को भी पहुच गई। उन्होने उसके प्रतिकार मे शुक्रवार को कुछ जादू किया और एक कुत्ते की लाश को नीचे गिरा दिया। उसका पेट फटा हुआ था और उसमें कुछ उबले हुए चावल भरे हुए थे। कहा जाता है कि वही उपाय उन्होने फिर किया और एक अन्य अधिकारी, जम्मू की पहाडियो के राजा राजरूप की खाई मे उन्होने एक कुत्ते की लाश फेंकी। यह राजा चहल-ज़ीना बुर्ज पर आक्रमण का विचार कर रहा था। फिर भी नियुक्त दिवस पर अमन्द उत्साह से जाफर फिर हाजी के पास गया।[1] हाजी ने उसको उत्तर दिया कि तीसरे देव को परास्त करने की आशा उसको नहीं रह गई थी और यदि दोनो बन्दी देव मुक्त न किये गये, वे उसकी जान ले लेंगे। अतः इस उद्योग का निश्चय ही त्याग कर देना चाहिये।

विभाग ५—बस्त और गिरिष्क का हस्तगत करना

बस्त और क़न्धार के अन्य आश्रित स्थानो को अधीनस्थ करने के लिये

१—लतायेफ़, ह० ग्र० ८६ अ, ८६ ब, ८७ अ, ८९ ब, ९० अ। शनिवार ९ फरवरी, १९२९ के स्टेट्समैन में एक 'भूतो के अपति' की लगभग सदृश कहानी निकली थी।

रुस्तमखाँ बहादुर फीरोज जग १३ मई, १६५३ को १५ हजार सैनिको की सुसज्जित सेना लेकर शिविर से निकला। २१ मई को वह बस्त पहुँच गया, कुछ प्रदर्शन किया, और मेहदी कुलीखाँ के पास एक सन्देश-वाहक भेजकर उसको परामर्श दिया कि वह आत्मसमर्पण कर दे। जब ईरानियो ने रक्षा की तैयारियाँ की, रुस्तमखाँ ने कन्धार से एक बडी तोप और कुछ खनक याचना कर मँगा लिये और गढ पर घेरा डाल दिया। जब बडी तोप आ गई, मेहदी कुलीखाँ ने शर्ते जानने की प्रार्थना की और अवरोध घेरे के दसवे दिन उसने गढ को समर्पित कर दिया (वारिस ७६–अ)। परन्तु अनधिकृत इतिहास लतायेफुलअख्बार में बस्त के पतन की एक भिन्न कथा पाई जाती है। उसमे कहा गया है कि अवरोध के सातवे दिन रुस्तमखाँ ने कन्धार के पतन की एक झूठी कहानी का प्रसार कर दिया और अपने शिविर मे आमोद-प्रमोद की आज्ञा दे दी। इस चाल से मेहदीकुली को धोखा हुआ, और नवागत बडी तोप से बिना एक गोला चलाये दुर्ग पर अधिकार हो गया। तब भी इस तोप का नाम 'अमन-तलब' (शान्ति की इच्छुक) रख दिया गया (लतायेफ, ३५ ब०)।

रुस्तमखाँ ने मेहदीकुली को इस बात पर प्रस्तुत कर लिया कि अपने पुत्र को पत्र लिखे कि वह आजाये और उसके साथ हिन्दुस्थान को चला चले। इस पुत्र के संरक्षण मे गिरिष्क का गढ था जो ३० मील आगे बढकर हेलमण्ड के तट पर था। मेहदीकुली के पुत्र ने दुर्ग को खाली कर दिया, परन्तु वह फराह को भाग गया। २६ शाबान (१५ जुलाई, १६५३) को रुस्तमखाँ ने सैनिको की एक टोली भेजी कि जमीनदावर के समीप मे मिर्जा मुहम्मद रौशन गुर्जी को दण्ड दे। जुलाई के अन्तिम सप्ताह मे उसने स्वय हेलमण्ड पार एक धावा किया कि नौसाद (?) गाँव के पास ईरानियो के एक जमाव को बिखेर दे। रुस्तमखाँ को इसके आगे यह आज्ञा मिली कि और आगे बढकर उत्तर-पश्चिम की ओर जमीनदावर के जिले पर आक्रमण करे क्योकि फराह से कन्धार को यहाँ होकर सडक जाती थी।

हजारो ने मुगलो को अपना सहयोग दिया और ईरानियो से कुछ थाने छीन लिये। दौलत बेग हजारा ने किरिवाज (?) पर अधिकार कर लिया और मिहिर कुली सुल्तान हजारा ने किजिलबाशो और गुर्जियो के एक दल को भगा दिया। इन लोगो के अधिकार मे चरशिना का गढ था और गुर्जी लोग फीरोजकोह पर्वतमाला के उत्तर मे गुर्जिस्तान के निवासी थे। परन्तु ये सरलताये प्रभावहीन हो गईं जब यह आवश्यक हो गया कि कन्धार पर धावे मे भाग लेने के लिये रुस्तमखाँ के दल को वापस बुला लिया जाये। मुख्य शिविर से कोई भी सैनिक

बस्त को गढरक्षा कार्य पर जाने को तैयार न हुए। जब मुगल ग्रहदियो को ग्राज्ञा मिली कि वे बस्त के लिये प्रस्थान करे, उन्होने साफ इन्कार कर दिया ग्रौर धमकी दी कि वे सेवा से त्याग-पत्र दे देंगे। विद्रोही सैनिकों ने यह तर्क किया कि सग्रादतखाँ जिसके ग्राधीन बस्त मे सेवा करने की उनको ग्राज्ञा हुई थी, ईरानी था, हिन्दुस्तान से उसको कुछ लेना-देना न था, वहाँ उसके कोई नातेदार भी न थे, उसका एकमात्र पुत्र उस समय उसके साथ शिविर मे था। उन्होने कहा—"भाग्य के किसी परिवर्तन की दशा मे सग्रादत खाँ प्रसन्नता से ईरानियो से जाकर मिल जायेगा, परन्तु हिन्दुस्थान मे हमारे परिवार नष्ट हो जायेंगे। ईश्वर ही जानता है कि हम वहाँ से भाग सकेंगे या नही" (लतायेफ, १४६ ब)।

राजकुमार के ग्रादेशानुसार रुस्तमखाँ बहादुर, बस्त के दुर्ग को पूर्णतया नष्ट करके २७ सितम्बर को कन्धार के मुख्य शिविर मे पुनः सम्मिलित हो गया।

विभाग ६—चेहल ज़ीना पहाड़ी पर हमला

कन्धार की रक्षा-पंक्ति की कुंजी एक सख्त चट्टान की पहाडी थी। यह गढ से करीब पौन मील की दूरी पर पहाडी शृङ्खला के उत्तरी पक्ष पर थी। चट्टान मे खुदे हुए ४० ज़ीनो के ऊपर इसमे बाहर की ग्रोर दो ऊँचे बुर्ज थे जो क़न्धार के गढ ग्रौर उसकी मण्डी (सुरक्षित बाज़ार) के ऊपर थे। इस पहाड़ी पर ग्रधिकार कर लेने पर कन्धार ग्ररक्ष्य हो जाता है। शाह ग्रब्बास द्वितीय ने १६४६ मे यह पता लगा लिया था ग्रौर ग्रौरंगजेब की भी यह योजना थी कि इस पर ग्रधिकार करके कन्धार की रक्षा-पंक्ति को नष्ट कर दिया जाये। परन्तु धीरे-धीरे सुरगे लगा कर ग्रौर गोलाबारी द्वारा इस पर ग्रधिकार नही प्राप्त हो सकता था। ग्रतिमानुषी साहस द्वारा बहुमूल्य चुकाने पर ही इस पर ग्रधिकार प्राप्त हो सकता था। दारा युद्ध-विद्या मे निपुण न था। उसने विचार किया कि निरन्तर ग्रग्नि वर्षा से वह बुर्ज के रक्षको को भगा देगा। उसके विचार मे किसी ग्राक्रमणकारी दल की ग्रावश्यकता न थी जो शत्रु की ग्रपव्यवस्था से लाभ उठा सके। ७ ग्रौर ८ मई की रात्रियो को निरन्तर कई हजार गोले फेंके गये। इससे ईरानी बहुत प्रसन्न हुये क्योकि उन्होने इतने ज़ोर की ग्रातिशबाजी पहले कभी न देखी थी। ग्रातिशबाजों ग्रौर ग्राज्ञापक ग्रधिकारियो से बहुत प्रसन्न होकर दारा ने प्रत्येक व्यक्ति को २०) रु० पुरस्कार मे दिये ग्रौर मुहम्मद सादिक ग्रौर मीर शिहाबुद्दी को १०० ज़ात की वृद्धि दी।

१० मई को अस्थिर रूप से एक नये स्थान पर जाफर को भेजा गया कि वह चेहल जीना के पूर्वीय बुर्ज के सामने एक भारी तोपो की पक्ति खडी करे। गोलाबारी का कोई प्रभाव न हुआ और ईरानियो ने उसकी कुछ तोपो को शान्त कर दिया। अन्त मे इस तोपखाने का अधिकार उचित व्यक्ति काँगडा की पहाडियो के राजा राजरूप को दिया गया जिसने द्वितीय अवरोध (घेरे) मे इस पहाडी पर आक्रमण करके विशेष ख्याति प्राप्त की थी। दारा ने राजरूप को ५०० जात और ५०० सवार की पद-वृद्धि दी और मुक्तकठ से उसकी प्रशसा की (६ जून)। परन्तु कुछ देर बाद राजरूप के पडोसी और उसके पुश्तेनी शत्रु राजा मान ग्वालियरी ने राजकुमार के कान भर दिये। उसको राजरूप के पद के प्रति ईर्ष्या थी। प्रथम अवरोध मे भी वह राजरूप के पिता का प्रतिस्पर्धी रहा था। इस समय तक सुरग लगाने मे राजरूप के ४० आदमी मारे जा चुके थे और १६० घायल हो गये थे। अतः उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी मूल्य पर वह आक्रमण करने का साहस अवश्य करेगा। अपने वाम और दक्षिण पक्ष पर स्थित तोपखानो के आज्ञापको को उसने आक्रमण के निश्चित समय की सूचना दे दी और उसकी स्वीकृति के लिये राजकुमार को भी विधिपूर्वक यह सूचना भेज दी। दारा के ज्योतिषियो को २० जून का "५ घडी पीछे" का यह समय अशुभ प्रतीत हुआ क्योकि सूर्य उस समय कर्क रेखा मे था जो बुर्ज की स्थिति के विचार से लाभदायक न था। राजरूप को स्पष्ट आज्ञा मिली कि समय को बदल कर '१८ घडी के बाद' कर दे। परन्तु ज्योतिषानुसार अनुकूल समय होने के पहले ही जाफर के एक छोटे भाई का देहान्त हो गया जो बहुत दिनो से बीमार था। यह अशुभ शकुन समझा गया और आक्रमण की आज्ञा बिल्कुल रद्द कर दी गई। अपने अग्र-दल को वापस बुलाने मे बेचारे राजरूप के और भी ५ आदमी मारे गये और करीब २० घायल हो गये।

इसके तीन दिन बाद दारा ने राजरूप को (उसकी अनुपस्थिति में) कायर लोमडी के नाम से पुकार कर कहा—"उसको जाफर की खाई मे भेज दो। वह उसको बतायेगा कि सेवा कैसे करते है और किस प्रकार उसको अपना तोप-खाना राजा मान ग्वालियरी के सुपुर्द करना है।" काजी अफजल ने दृढता से राजरूप का पक्ष लिया और तिरस्कार से उसको बचा लिया। १५ जुलाई को वल्लभ चौहान को आज्ञा मिली कि राजरूप से चेहल जीना पर आक्रमण का भार ले ले, परन्तु उसने यह कह कर क्षमा याचना की—"मै मैदान का निवासी हूँ।" इस पर राजकुमार क्रुद्ध हो गया और उसने आज्ञा दी कि चौहान को अविलम्ब जाफर की खाई मे भेज दिया जाये। परन्तु शीघ्र ही उसको पश्चात्ताप

हुआ और जब वह जाफर के यहाँ जा रहा था, उसने उसको वापस बुला लिया। वल्लभ को आज्ञा हुई कि वह देवीसिंह बुन्देला के स्थान पर जाये जो चेहलजीना के आक्रमण पर नियुक्त था (लतायेफ, ७२ ब)। परन्तु इस समय से इस स्थान की उपेक्षा की गई क्योकि अब समस्त साधन परिखा को पाटने मे और अवरोध की मुख्य पंक्ति मे खाइयो को आगे बढाने मे जुटा दिये गये।

१४ सितम्बर (२ जिल्काद) को चेहल जीना के तोपखाने की दीवारे[1] गिरा दी गई। देवीसिंह ने सामग्री राजरूप को सुपुर्द करदी। राजरूप को अब आज्ञा हुई कि ख्वाजा वायसकराँ के फाटक के समीप, गढ के एक आगे निकले हुए भाग (मरगज) शेर हाजी को मार्ग बनाने मे, वह जाफर को सहयोग दे। जाफर के सहयोग की स्थिति मे राजरूप का काम बहुत अच्छा रहा। दारा ने उसको ५ हजार रुपये पुरस्कार मे दिये कि उसको उस समय के सकट मे सहायता मिल जाये। उसने ५ हजार अधिक का वादा किया जब उसकी खाई शेर हाजी के नीचे पहुँच जायेगी।

दारा की ओर से ऐसा ही व्यवहार उसके अधिकाश अधिकारियो को प्राप्त होता था। यह केवल मनुष्य प्रकृति की माँग थी कि गृह युद्ध मे औरगजेब के विरुद्ध दारा का पक्ष लेने मे राजरूप ने आना-कानी की और दारा का शत्रु भी बन गया।

विभाग ७—खन्दक बनाना

कन्धार के पूर्वीय पक्ष पर मुख्य द्वारो के सम्मुख स्थापित सैनिक टुकड़ियों की भयानक पक्ति सुरक्षित खाइयाँ खोदकर धीरे-धीरे परिखा के समीप पहुँच गई। जाफ़र का तोपखाना समस्त अवरोध कार्यों का केन्द्र बन गया। इसके

१—चेहलजीना। वारिस राजरूप की वीरता की प्रसंशा करता है—"राजरूप ने······ चेहलजीना के नीचे तक खाई को पहुँचा दिया और यद्यपि एक तोप उसको भेजी गई। गोलाबारी का कोई प्रभाव न पडा ·· "एक बुर्ज पर आक्रमण भी किया गया, परन्तु दुर्गस्थ सेना ने नफता का उपयोग किया और बहुत से सैनिक घायल हो गये। राजकुमार ने राजरूप को आज्ञा दी कि वह यह कार्य छोड दे · ···इसके बाद जाफर और किलीचखाँ के तोपखाने के बीच में उस को एक तोपखाने का अधिकार दिया गया" (७६ अ)। ऊपर वर्णन की हुई बडी तोप अमन तलब मालूम होती है। यह बस्त के आत्मसमर्पण के बाद १४ जून को वापस दे दी गई थी (लतायेफ, ४३ अ०)। ऊपर कहा हुआ आक्रमण चेहलजीना का आक्रमण न था, परन्तु लाकह पहाडी के एक दुर्ग का आक्रमण था। यह १४ जुलाई को राजरूप ने किया था जब उसके साथ तीन और अधिकारी थे—चम्पतराय बुन्देला, देवीसिंह और सैयद महमूद। शाही सेना एक अचानक हमला करना चाहती थी, परन्तु उन पर स्वय निर्दयता से अचानक हमला हुआ और राजा राजरूप को, जिसके सिपाही सब से आगे थे, बहुत ही हानि हुई। उसके दल के श्रेष्ठ सैनिक मार डाले गये (वही, ७० ब०)।

कारण उन अधिकारियो मे जो अन्य तोपखानो के अधिकार थे, ईर्ष्या और जलन उत्पन्न हो गई। उनको शिकायत हुई कि राजकुमार जाफर का पक्ष लेता है। जाफर की गर्व मुद्रा और आत्मश्लाघा पर उनको क्रोध होता। ६ अगस्त को दो बडी तोपे—तोपमरियम और किला-कुश शिविर मे पहुँच गई और ६ दिन बाद फतेहमुबारक (फतेह लश्कर ?) भी आ गई। परन्तु ये तोपे निरर्थक से भी बुरी सिद्ध हुई क्योकि इनके समानुपाती आकार और शक्ति के लोहे के गोले लाहौर से नही लाये गये थे। राजकुमार ने अपने एक कृपा-पात्र के इस सुझाव को स्वीकृत कर लिया था कि यह अधिक लाभकारी और सुविधाजनक होगा कि सेना के साथ सगतराश ले लिये जाये और कन्धार की अक्षय खानो से सख्त पत्थर के गोले तैयार कर लिये जाये। परन्तु सगतराशो के दुष्ट दरोगा ने मुलायम पत्थर के गोले बनवाये। इसका परिणाम यह हुआ कि जब वे किला-कुश से चलाये गये, वे हवा में फट गये और उन्होने स्वयं तोपचियो को घायल कर दिया। अब इन पत्थर के गोलो पर सन लपेटा गया कि वे कुछ हद तक फटने न पाये। कुछ फिरगी तोपची इधर से छोडकर ईरानियो से जा मिले और दूसरे मुश्किल से हिन्दुस्तानियो से अधिक निपुण सिद्ध हुए। कहा जाता है कि गोलो की २७ हजार से भी अधिक मारें हुई, परकोटा मे कोई वास्तविक तोड़ फोड न हो सकी और न वे ईरानी तोपो को बन्द कर सके।

अवरोधको ने बहुत परिश्रम किया कि बाँधो को तोडकर परिखा को सुखा दें। १३ जुलाई को एक सोता खाली भी कर दिया गया; परन्तु तीन दिन पीछे कासिमखाँ और अब्दुल्ला ने ये समाचार भेजे कि उनके स्थान का पानी जो पहले घुटने भर रह गया था अब गर्दन तक आ गया है। जब वे अन्त मे परिखा को खाली करने मे सफल भी हो गये, इसको सूखा रखना कठिन हो गया, क्योकि शेर हाजी के किनारो के समीप गुप्त धाराओ से पानी आने लगा। वरन लकडी के लट्ठो और मिट्टी के बोरो को उसमें गिराकर जाफर के तोपखाने के सामने परिखा पाट दी गई। अब यह किसी न किसी प्रकार आक्रमणकारी दल के लिये बाधक न रह गई थी। परन्तु ईरानियो की अग्नि वर्षा, विशेष कर उनकी बन्दूकें इतनी विनाशक और अचूक थी कि हिन्दुस्तानियो को साहस न हुआ कि अपने ऊँचे दमदमो और बालू के थैलो के प्राकारो से बाहर निकल सके।

जाफर ने एक विशाल चबूतरे का निर्माण किया। यह ७५ गज़ लम्बा, ५५ गज चौडा और २७ गज ऊँचा था और उसने इसके ऊपर १० छोटी तोपें चढादी। उसने एक बडा दमदमा (ढका हुआ चबूतरा) बनवाया, जिसमें सुरंग लगाने का कार्य करने के लिये २० आदमी आराम से सीधे खडे हो सकते थे।

अधिकृत वृत्तान्त के अनुसार राजकुमार की तोपो ने शेरहाजी के परकोटा और प्राकार को करीब ३०० गज गिरा दिया। जाफर और इज्जतखॉ ने (जिसके अधिकार मे शेरहाजी के सम्मुख एक तोपखाना था) विश्वासपूर्वक कहा कि उनके सम्मुख परकोटा मे काम चलाऊ छेद कर दिया गया है। अपने कृपा-पात्रो पर शेष जगत् की अपेक्षा राजकुमार को अधिक विश्वास था। बिना व्यक्तिगत अनुसधान के या तथाकथित छिद्रो के स्वयं निरीक्षण के, राजकुमार ने उनके कथन को स्वीकृत कर लिया। इस विषय पर राजकुमार का प्रतिवाद करना किसी भी अधिकारी के लिये विपत्तिजनक था, क्योकि इसका कारण यह समझा जाता कि वक्ता कायर है वा उसमे स्वामी के प्रति आसक्ति नही है।

विभाग ८—धावे की तैयारियॉ

दो दिन पीछे सामूहिक धावे के विचार से २१ अगस्त को दारा ने विभिन्न तोपखानों के अधिकारियो मे कवच और वक्षत्राण वितीर्ण कर दिये और उनको भिन्न-भिन्न स्थानो पर नियुक्त कर दिया। लतायेफुल अख्बार का लेखक कहता है कि डुग्गी पीटकर यह घोषणा कर दी गई कि धावे के दिन वे लोग जो सिपाही नही है और जिनमे आक्रमण मे भाग लेने का आवश्यक साहस नही हैं, प्रार्थना (ब सआदत-ए-बन्दगी) के लिये तैयार रहे; प्रत्येक किजिलबाश के सिर पर ५) रु० का पुरस्कार रखा गया और प्रत्येक जीवित ईरानी बन्दी को लाने पर एक अशर्फी[1]। अपने उच्च-पदस्थ सामन्तो से बिना परामर्श किये ही अपनी कार्य प्रणाली निश्चित् कर, राजकुमार ने अगले दिन अपने सामन्तो को बुलाया कि उनकी सम्मति जान लेवे। परन्तु इससे वे और भी रुष्ट हो गये और अपने को अधिक अपमानित समझने लगे। किलीचखॉं को छोडकर सब उपस्थित हुए। उसने कहला भेजा कि वह तीसरे पहर आयेगा क्योकि उसने जुल्लाब ले रखा है। महाबतखॉ को[2] सम्बोधन कर दारा ने कहा—"इज्जतखॉ और जाफर के तोपखाने के सम्मुख परकोटा भग कर दिया गया है। अचानक धावे के प्रति आपकी क्या राय है ?" महाबत ने उत्तर दिया—"हम नौकर है। हमारा कार्य केवल यह है कि आपकी आज्ञाओ का पालन करे। राजा को तो राजा ही

१—लतायेफ, १२१ ब, १२२ अ०

२—महाबतखॉं—मिर्जा लोहरास्प, कुख्यात महाबतखॉं का पुत्र जिसने जहॉंगीर को बन्दी बना लिया था (म० उ० III, ५००, ५०५)। मनुची कहता है—"ऐसा हुआ कि महाबतखॉं के सिपाहियों ने दारा के एक आदमी को मार डाला। आवेश में आकर और विषय का बिना अनुसंधान किये उसने आज्ञा दी कि उसके सैनिक एकत्र किये जायें और महाबतखॉं को उसके सम्मुख खीच लायें। ... शाहजहॉं ने आज्ञा दी कि दारा को कठोर वाग्दण्ड दिया जाये

परामर्श दे सकते है।" दारा ने चाटुकारी करने का प्रयास किया, परन्तु अन्त मे उसने भर्त्संना के कटु शब्द कहे।

राजकुमार ने कहा—"आप साफ क्यो नही कहते है कि आक्रमण उचित है और दूसरो के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर लड़ते हुए आप तुरन्त गढ़ पर अधिकार कर लेगे। आपके पिता ने दौलताबाद के प्रसिद्ध दुर्ग को विजय किया था। आपका ऐसा विचार मालूम होता है कि बिना कन्धार लिये ही आप घर वापस चले जाये। ऐसे अनुपयुक्त और कुसगत विचार को आप मन से निकाल दे—यह अधिक अच्छा होगा।" इसके बाद एक पञ्च हजारी नजाबतखाँ[1] को उसने आज्ञा दी कि आक्रमण की व्यवहार्यता पर वह अपनी सम्मति प्रकट करे। नजाबतखाँ ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि अधिक अच्छा हो यदि तीन या चार दिनो तक और आगे तोपे परकोटे को ढा देने मे लगी रहे। दारा ने यह कहकर उसको चुप कर दिया—"आपका अभिप्राय यह मालूम होता है कि परकोटा कही से टूटा नही है   कही से परकोटा टूटा हो या न, आक्रमण तो करना ही है।" तब उसने मिर्जा राजा जयसिंह कछवाहा को सम्बोधन किया और अकस्मात् कहा—"राजाजी, (अवरोध के) आरम्भ ही से सम्राट के कार्य

इस घटना के बाद महाबतखाँ को दारा से विद्वेष हो गया (कहावतें–I, २२५)। ऊपर की घटना का एकमात्र प्रमाण मनुची है। कन्धार के अभियान के पूर्व वा पश्चात् यह घटित हुई—यह ज्ञात नही है। दारा चुगुलखोरों की बात मान लेता था; अवरोध के आरम्भ ही से उसका महाबतखा से मत-भेद था। दारा के निजी सेवकों की दुष्टता और प्रगल्भता इस कष्ट का कारण थे। जब लतायेफुल अख्बार का लेखक दारा के सचिव फकीरखाँ के पास खाईयों को आगे बढाने की दुस्साध्यता प्रकट करने गया, उसने खा को कुछ अपमान-जनक शब्द कहे (मई ११, १६५३) (लतायेफ, २४ अ०)। यह महाबतखाँ वही व्यक्ति था जिसने एक सभा मे औरंगजेब के सम्मुख कहने का कठोर साहस किया था कि शिवा से लडने के लिये किसी सैनिक की आवश्यकता न थी "काजी (अब्दुल वहाब) उसको परास्त कर देगा।" (म० उ० III, ५६४)

१—नजाबतखाँ, मिर्जा शुजा (म० उ० III, ८२१-८२८) कन्धार अभियान के पहले जब नजाबत सहारनपुर का फौजदार था, उसको स्वर्ण खानों की वार्ता सुनकर यह लोभ हुआ कि नक-कटी राणी के प्रदेश पर वह धावा करे। कमायूँ की पहाडियो में स्थित श्रीनगर में उसकी राजधानी थी। अपनी नाक लेकर वह अवश्य भाग निकला, परन्तु सम्मान और स्वर्ण वहाँ ही रह गये (वही, ८२२)। आरम्भ से ही नजाबत की वृत्ति आपत्तिजनक थी। आवदुंद्द द्वार के सम्मुख स्थान ग्रहण करने से उसने इन्कार कर दिया था। जब उसको आज्ञा मिली कि रुस्तमखाँ के साथ बस्त को जाये, उसने पहले तो इन्कार कर दिया, परन्तु अपने सहकारियों की प्रेरणा पर वह बाद को तैयार हो गया (लतायेफ, १६ अ, २४ अ, २५ अ०)। परन्तु कुछ समय के लिये राजकुमार की कृपा उसने पुन प्राप्त करली थी और कन्धार को पुन बुला लिया गया था।

मे आपका प्रयास आशा से कम रहा है।[1] अब कोई प्रार्थना न सुनी जायगी। यदि आपकी यह आपत्ति है कि आपके तोपखाने के सम्मुख प्राकार कही से भग नही हुआ है, तो मै आपको जाफर का तोपखाना देता हूँ।'' इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर राजा ने कहा—''जब तक जाफर और इज्जतखाँ टूटे भागो मे से (जो उन्होने तोडे है) गढ मे प्रवेश करेंगे, परकोटा पर चढने की सीढियाँ लगा कर मै भी वही कर दिखाऊँगा।'' दारा ने पूछा—''यदि यही बात है, तो किस दिन आक्रमण करने के लिये आप सहमत है ?'' राजा ने उत्तर दिया—''सहमतियो से और आश्वासनो से मेरा कोई वास्ता नही है। मुझे केवल आपकी आज्ञा का पालन करना है।'' क्रोध से राजकुमार चिल्ला उठा—''ये कैसे शब्द है ? आपको साफ कहना है कि आक्रमण उचित है या नही है। यदि आपका अभिप्राय है कि इस बात से आप अपने को दूर रखे, तो आप मुझे यह लिख कर दे दे कि या तो मै हिन्दुस्तान को वापसी की आज्ञा दे दूँ, या रुस्तमखाँ बहादुर को वापस बुला लू और उसकी सलाह से हमला करूँ।'' राजा ने उत्तर

१—इसका प्रसग है राजा की यह प्रार्थना कि वह अपनी खाई को और अधिक शीघ्रता से आगे बढाने मे असमर्थ है। राजकुमार के आदमी को राजा ने यह कह कर भगा दिया—''अवरोध कार्य मे और खाई खोदने में हम राजपूत लोग बहुत चतुर नही है अधिक अच्छा तो यह होगा कि राजकुमार यह तोपखाना किसी और को दे दे—जिसको वे देना चाहे (मई २८, १६५३, लतायेफ, ३५ अ०)। १५ रमजान (३० जुलाई) को दारा ने जयसिह को बुलाया। राजकुमार ने उससे बहुत आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि वह आक्रमण करे। उसने अनेक आकर्षक प्रतिज्ञायें भी की। राजा का भाव बहुत रूखा रहा और बहुत देर तक उत्तर में वह एक शब्द भी न बोला। अन्त में राजकुमार को अनुत्साहजनक टालटूल का उत्तर देकर वह वापस चला गया (लतायेफ ६४ ब, ६५ अ०)। देखो लखनऊ के भारतीय ऐतिहासिक पत्र-लेख आयोग के नवें अधिवेशन में मेरा पत्र।

जयसिह के जीवन सम्बन्धी पाण्डु-लेख के लिये देखो—म० उ० III, ५६८-७६। यह अपर्याप्त और असन्तोषजनक है। जयपुर के पत्र-रक्षागारों में कुछ पत्र अभी प्रकाश में आये है जिनसे प्रकट होता है कि जयसिह से दारा की बहुत घनिष्ठता थी। कन्धार के अभियान में दोनों में जो परस्पर अनुत्साह वृत्ति रही, उसका स्पष्टीकरण केवल इस प्रकार हो सकता है कि जाफर और अन्यों के प्रति दारा के पक्षपात से राजा अप्रसन्न हो गया था और दारा की शिशु-तुल्य मूर्खताओं और उसके अनियन्त्रित भाषणों से उसको घृणा हो गई थी। मनुची कहता है कि दारा ने एक बार जयसिंह का अपमान कर दिया जब उसने उपहास में यह टिप्पणी की कि राजा की आकृति गायक की भाँति थी (कहावतें I, २२५)। कन्धार में भी दारा ने ऐसा ही ताना राजा को मारा—''यह तीसरा अवसर है जब आप कन्धार को आये है। यदि इस बार भी आप असफल रहे ·· ·· तो किस प्रकार हिन्दुस्तान की महिलाओं को अपना मुँह दिखायेंगे ? वास्तव में स्त्रियां उन पुरुषों से अच्छी है जो बार-बार इस स्थान से वापस गये है। (लतायेफ, २० अ, ८४ ब, भी देखो)।

दिया—"यह लिख कर देने को मै तैयार हूँ कि मै सदैव आक्रमण के पक्ष मे हूँ और मै सदैव आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत हूं।" दारा ने प्रत्युत्तर दिया—"आपका हृदय और आपकी जिह्वा सहमत नही प्रतीत होते है। जो आपके हृदय मे है, वह आपकी जिह्वा नही बोलती है और जो आपकी जिह्वा बोलती है, उसकी प्रतिध्वनि आपके हृदय मे नही है। यदि वे एकरस है, तो आप सीधे क्यो नही कहते है कि आप आक्रमण को उचित समझते है और आप सुघठित प्रयास द्वारा गढ पर अधिकार कर लेगे।" उसने यह और भी कहा—"शायद आप यह सोचते हो कि बिना कन्धार जीते मै वापस हो जाऊँगा। यदि मै यह करूँ, तो अपना मुँह पादशाह को (सम्राट को) कैसे दिखाऊँगा।" राजा ने प्रत्युत्तर दिया—"हुजूर तो सम्राट् की आँखो की पुतलियाँ है। जब भी सम्राट् की दृष्टि हुजूर के जग-ज्योति-कारक मुखारविन्द पर पडेगी, उसका स्वागत ही होगा। परन्तु हम तुच्छ सेवक गण अपने मुख कैसे दिखायेगे ?" राजकुमार ने ताना मारा—"दो बार तो यही मुँह आप सम्राट् को दिखा चुके है। प्रश्न तो मेरा है जिसके लिये यह पहला अवसर होगा।" और भी अधिक कटु शब्दो का उपयोग हुआ। इन बराबरी के निर्भीक प्रति-वचनो पर राजकुमार बहुत चिढ गया और इस दुखद वाग्युद्ध को ये शब्द कहकर उसने अकस्मात् समाप्त कर दिया—"आक्रमण के इस प्रस्ताव से चाहे आप सहमत हो या नही, मै आपको निश्चय रूप से आज्ञा देता हूँ कि आप आक्रमण करे। मुझे चिन्ता नही चाहे आप मरे या गढ जीत ले ··।" तब उसने गम्भीरता से फातिहा पढे और ऊपर वर्णन किये हुए सामन्तो को जाने की आज्ञा दे दी।

साम्राज्य के तीन सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न सामन्तो के भावो को ही दारा ने केवल कलुषित न कर दिया, परन्तु इज्जतखाँ की उपस्थिति मे जाफर की अनवसर प्रशसा से उसने अपने दो विश्वासपात्रो मे अनजाने ही पारस्परिक ईर्ष्या के बीज बो दिये। जाफर की आशावादिता और उसकी चाटुकारिता के साथ शेखी मारने की मुक्त प्रशसा मे राजकुमार ने कहा—"तेरे सरीखे यदि दो और पुरुष होते, तो इस समय तक इस गढ का प्रश्न निश्चित हो गया होता।" जाफर, इज्जतखाँ और राजा राजरूप ही तीन व्यक्ति थे जिन्होने अपनी सम्मति आक्रमण के पक्ष मे दी। किलीचखाँ तीसरे पहर आया, परन्तु उससे आसन ग्रहण करने की प्रार्थना करने के पहले ही राजकुमार ने कहा कि आक्रमण करने का निश्चय हो गया है और फातिहा के बाद खान जा सकता है।

२३ अगस्त को (मंगलवार, ९ शवाल) सारी रात सैनिक सशस्त्र रखे गये और उनके विशेष स्थानो मे राजकुमार ने उनका निरीक्षण किया। जब रात्रि की लगभग तीन घडियाँ रह गई, राजकुमार के सकेत पर आक्रमणकारी टोलियाँ

अपने उद्दिष्ट स्थानो पर झपट पडी। जेरेक्सीज की भाँति, जो अपने स्वर्ण-सिंहासन से सलामीस के रण का अवलोकन कर रहा था, दारा प्रसिद्ध पहाडी चेहल दुख्तराँ (४० पुत्रियो की पहाडी)[1] के शिखर पर एक सुरक्षित भवन से अपने सैनिको के भाग्य का निरीक्षण कर रहा था। आगे क्या हुआ इसका बहुत सुन्दर चित्रमय वर्णन लतायेफुल अख्बार के लेखक ने दिया है। वह महाबतखाँ की आज्ञा से उसके तोपखाने के समीप एक ऊँचे स्थान पर खडा हुआ था और रण की उत्तरोत्तर गति का वृत्तान्त खाँ को भेज रहा था। खाँ स्वय एक दमदमे मे (उठे हुए तोपखाने में) सुरक्षित बैठा हुआ था।

विभाग ६—आक्रमण का अनुष्ठान

इज्जतखाँ के तोपखाने से हम अपना वर्णन आरम्भ करते है। दो युद्ध-हस्तियो और एक हजार कवच-धारी अश्वारोहियो को अपने साथ लेकर जहाँगीर बेग ने भग्न स्थान पर धावा किया। ऐसा मालूम होता था कि ईरानियो ने इस स्थान को त्याग दिया है। बहुत धैर्य से ईरानियो ने अपने तोपखाने को उस समय तक शान्त रखा जब तक कि मुगल उनके तीरों और गोलियो की मार के भीतर न पहुँच गये। तोपखाने और बन्दूकचियो की अति भयानक अग्नि वर्षा से, जो ठीक उन पर आकर गिरी, मुगलो के हाथी और सवार भाग निकले। शिविर के ईर्ष्याजनित जनवाद अनुसार, जब आक्रमण का सकेत हुआ, इज्जतखाँ गुलाबजल से स्नान कर रहा था (जामा रा वा करदह गुलाब बर खुद मेबाशिद)। एक टोली को लेकर उसने जहाँगीर बेग के अग्रदल का अनुसरण किया, परन्तु वह अपनी खाई को वापस आ गया। उसने कोई प्रयास न किया कि अपने सैनिको को प्रोत्साहित करे और आक्रमण को पुनः आरम्भ करे।[2] इस समय महाबतखाँ अपनी खाई मे बैठा हुआ लतायेफुल्-अख्बार के लेखक से वृत्तान्त सुन रहा था। दुर्घटना से एक गोला उसकी खाई के समीप फट गया और एक सैनिक की मृत्यु हो गई जो ठीक उसके सामने बैठा हुआ था, परन्तु खाँ को कोई चोट न आई। जब इज्जतखाँ ने शत्रु को पीठ दिखा दी, वह पीछे की ओर अपने स्थान को वापस चला गया।

१—१० रमजान, २५ जुलाई को राजकुमार ने अपने बयुतात (गार्हस्थ सामग्री और कारखानों का अध्यक्ष) चन्द्रभान को आज्ञा दी कि वह एक ऐसा स्थान चुन लें जिससे वह आक्रमण के दिन अपने सैनिकों के वीरकर्मों को देख सके। चेहल दुख्तराँ के नाम से प्रसिद्ध भवन को, जो एक पहाडी की ढाल पर था, चन्द्रभान ने पसन्द किया और राजकुमार ने इसका निरीक्षण किया (लतायेफ, ८९ अ)।

२—यह उक्ति सत्य हो सकती है। वारिस का वर्णन केवल यह है—"इज्जत खाँ की ओर से जो लोग आगे बढे ''' वे तीन ओर से अग्नि में फँस गये।" वारिस, ७८ ब।

जाफ़र के तोपख़ाने की दाहिनी ओर से क़िलीचख़ाँ, और बाईं ओर से मिर्ज़ा अब्दुल्ला और कासिमखाँ बहुत साहस और धैर्य से भग्न स्थान की ओर बढे। परन्तु जाफर शिविर की अनुदार किंवदन्ती के अनुसार इस समय निश्चिन्त होकर रोटी और प्याज खा रहा था और तरबूज का स्वाद ले रहा था। (नान ओ प्याज ओ हिन्दुआना मे खुर्द)।[1] तो भी इस स्थान पर जमकर लडाई हुई। भीषण अग्नि वर्षा[2] और दृढ प्रतिरोध के सम्मुख मुगलो ने घोर सघर्ष किया; परन्तु अनेक घायलो के अतिरिक्त ५५७ मृतको की हानि को सहन कर उनको वापस होना पडा। कहा जाता है कि नजाबतख़ाँ और राजा मुकुन्दसिंह हाडा, जो जाफर के तोपख़ाने को भेजे गये थे, आक्रमण के समय अकर्मण्य रहे। नजाबतख़ाँ को दारा से कुछ शिकायते थी, परन्तु हम नही जानते है कि प्रसिद्ध हाडा सरदार जिसने बाद को सामूगढ के रण मे दारा के हितार्थ अपने प्राणो का बलिदान कर दिया, इस अवसर पर इतना शिथिल कैसे रहा। कहा जाता है कि नजाबतखाँ ने हाडा सरदार को पूछा कि वह अपने सिपाहियो को हमला पर क्यो नही भेज रहा है, और उसने उत्तर दिया—"ये लोग, जो मेरे साथ है, साधारण किराये के टट्टू नही है, वे मेरे भाईबन्द और नातेदार है। मै उनको वहाँ नही भेज सकता हूँ जहाँ मै स्वयं नही जाना चाहता हूँ।" ख़ाँ ने प्रत्युत्तर दिया—"सम्राट् के कार्य मे भाई-बेटे का कोई विचार न होना चाहिये।" उत्तेजित होकर जोशीला हाड़ा सरदार उठकर खडा हो गया और नजाबतख़ाँ के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद कुली का हाथ पकड कर प्राकार की ओर चल पडा। जब ख़ाँ ने देखा कि राजा हँसी नही कर रहा है, वह अपने पुत्र के जीवन के भय से नगे पाँव दौड पडा कि उनको वापस लाये। राजा जयसिंह ने, जो दारा पर बहुत क्रुद्ध था, उल्लेख योग्य कोई प्रयास नही किया। उसकी खाई से केवल दो व्यक्ति चढने की सीढियाँ लेकर बाहर निकले, परन्तु तुरन्त वे ईरानियो की गोलियो का शिकार हो गये और आक्रमण के इस क्षेत्र मे कार्यवाही यहाँ पर समाप्त हो गई।

सैयद महमूद बारहा, लशकरख़ाँ, मुहम्मद आकिल और मीरकअताउल्ला (अहदियो का बख़्शी) के अधीनस्थ चार टोलियो ने पश्चिम की दिशा से प्रयत्न किया कि अचानक आक्रमण से कैतुल पहाडी और लकह दुर्ग पर अधिकार

१—लतायेफ, १३४ अ० "अपने तोपखाने से जाफर ने अपने आदमियों को प्रेरित किया कि आगे बढ़ कर हमला करें।" वारिस, ७८ ब।

२—ईरानियों ने जलती हुई चादरों का उपयोग किया "जिन पर नफ़ता चढ़ा हुआ था।" वारिस, ७८ ब०।

कर लें। शत्रु की उभयपक्षीय भीषण अग्नि-वर्षा के सम्मुख बे-सोचे समझे बढने मे अनेक सैयदो के साथ सैयद महमूद मृत्यु को प्राप्त हो गया। एक हजार बकसरिया (बकसर निवासी) बन्दूकचियो के साथ लशकरखाँ चुपचाप लाकह दुर्ग के प्राकार के नीचे तक चढ गया। उसके साथ कुछ उल्लेखनीय सरदार भी थे—उदाहरणार्थ बदनसिंह भदवरिया और चम्पतराय बुन्देला। चढने वाली सीढियो की सहायता से वे ऊपर तक पहुँच जाने वाले ही थे कि दुर्भाग्यवश ईरानियो ने उनकी प्रगति का पता लगा लिया और पत्थरो से आक्रामको को आकुल कर दिया और ३० व्यक्तियो को बिल्कुल मार ही डाला। मुहम्मद आकिल ने द्वन्द्व युद्ध मे ईरानियो की एक टोली को परास्त कर दिया, परन्तु एक आकस्मिक गोली से उसका सहायक अताउल्ला मारा गया जिस पर अहदी अति शीघ्र पीछे हट गये। आकिल और देवीसिंह बुन्देला इस प्रकार असहाय रह गये। वे अपनी जगह पर डटे नही रह सकते थे और भारी हानि का सहन कर उनको पीछे हटना पडा।

चार घण्टो तक, अगले दिन के एक प्रहर तक कोलाहल बना रहा। करीब एक हजार आदमी मारे गये और उतने ही घायल हो गये। जैसे ही दारा अपने डेरे को वापस आया, दुर्ग के भीतर विजय-सगीत प्रारम्भ हो गया। ईरानी, नर्तकियो को उन स्थानो तक लाये जहाँ से मुगलो के तोपखाने दिखाई पडते थे, अपने शत्रुओ के मनोरंजन के लिये वहाँ उनका नृत्य कराया और मन-भर समस्त दिन आनन्द मनाया। प्रसन्न वदन होकर हिन्दुस्तानियो को मुँह बना-बनाकर उन्होने बहुत चिढाया। अगले दिन ईरानी आज्ञापक ने मुगल सेना के मुसलमानो को अनुमति दे दी कि केवल मुसलमानो की लाशे उठा ले जायं और उनको दफन कर दे। उसने हिन्दुओ के ५ सौ सिर एकत्र किये और उनके बिना सिर के धडो को मासाहारी पक्षियों के लिये छोड दिया।[1]

१—अनुषग के लिये—लतायेफ, ११२ अ, १३३ ब, वारिस, ७७ ब। आक्रमण की तिथि (६ शवाल, १०६३), उसके उद्देश्यो और विवरणों के विषय में दोनों प्रामाणिक लेखक सहमत है। वारिस कहता है कि आक्रमण की रात्रि में प्रत्येक बडी तोप से १०० बार अग्निवर्षा की गई। इस विषय पर लतायेफुल अख्बार मौन है। फिर वारिस मृतकों और घायलो की सख्या १ हजार बताता है, परन्तु दूसरा लेखक कहता है कि पूर्वीय तोपखानों मे ५५७ मृतकों के अतिरिक्त केवल पश्चिमीय मोर्चे पर वह सख्या मृतको और घायलों की थी (मृतकों की ठीक सख्या का अनुसन्धान नही किया गया है)। वारिस बहुत ही विवेकशील है और वास्तव में आक्रमण के विशुद्ध विवरण देता है। वह बडे सामन्तों के निन्दनीय चरित्र पर कोई टीका-टिप्पणी नही करता है। वह कहता है कि अपने नेता की मृत्यु के बाद भी अहदी वीरता से लडते रहे, परन्तु और लोग अहदियों की पक्तियों में सहार को देखकर पहाडी से नीचे भाग निकले।

विभाग १०—अवरोध का अन्तिम रूप

आक्रमण की असफलता पर परस्पर दोषारोपण किया गया। अन्य साम्राज्यवादियो ने जाफर और इज्जतखाँ पर कायरता का लाछन लगाया और उन्होने महाबतखाँ और राजा जयसिह पर कर्तव्योपेक्षा का दोष आरोपित किया। परन्तु परस्पर एकान्त मे लोग कुछ ही कहे, किसी में यह साहस न हुआ कि दारा को कहे कि आक्रमण के समय जाफर ने कुछ भी न किया था (हिचरा कुदरते ऑनीस्त के बेगोयद के जाफर कारे न कर्द, लतायेफ, १२८ ब०)।

दारा बहुत ही उदास था। जाफर ने उसको इस प्रकार आश्वासन दिया—"हुजूर को सैनिको की मृत्यु पर क्यो दुःख होना चाहिये। वे सेवा मे इसी उद्देश्य से रखे जाते हैं कि रण मे उनका बलिदान दिया जाये। रहा आक्रमण के विषय मे, तो हुजूर कृपया यह जाँच कर लें कि शाह अब्बास (द्वितीय) ने इस दुर्ग को एक से अधिक आक्रमण करने के बाद ही प्राप्त किया था।" उसने महावत खाँ को बस्त भेज दिया—प्रत्यक्ष मे इस कारण से कि रुस्तमखाँ को सैनिक सहायता पहुँचाये, और राजा जयसिह को[1] शुतर्गर्दा दर्रे की ओर भेज दिया कि एक ईरानी सेना के तथाकथित आगमन पर ध्यान रखे (३० अगस्त)। केवल किलीचखाँ एक पञ्चहजारी था जिसने दारा के कृपापात्रो की ओर विद्वेष भावना रखते हुए भी आक्रमण के दिन अत्यन्त भक्ति से आचरण किया था। अब दारा ने खाँ से साग्रह प्रार्थना की कि वह असफलता की अपकीर्ति से उसे बचाये। समस्त तोपखानो का एक-मात्र अधिकार

१—इस अभियान की समाप्तिपर्यन्त दारा और जयसिह में परस्पर कटु भावनायें बनी रही। "२५ शवाल (८ सितम्बर, १६५३) को दारा ने शाहम कुली को राजा के पास यह सन्देश देकर भेजा—"मैने सुना है कि आप जनता को कष्ट दे रहे है और उनके बागों के वृक्ष कटवा रहे है। यदि कन्धार के प्राकारों के नीचे आपने अपनी इस विनाशक शक्ति का प्रदर्शन किया होता, तो इस समय तक सारी दीवारों को गिराकर सम्भवतया आप उस पर अपना अधिकार कर लेते।" राजा ने उत्तर दिया "मेरे शिविर-स्थान से दो-तीन कोस के अन्दर तक मेरे सौभाग्य से कोई बाग नही है जहा से मेरे सिपाही वृक्षों को काटकर ईंधन इकट्ठा कर सकते हों।" दारा के सन्देश-वाहक ने यह भी सूचना दी कि राजा के शिविर के आस-पास कोई बाग नही दिखाई पडता है, और जिस व्यक्ति ने यह समाचार उसको दिया था, वह अवश्य झूठ बोला होगा (लतायेफ, १४६ अ)। आगे चलकर १ जिल्काद (१३ सितम्बर, १६५३) को राजा ने दारा को पत्रोत्तर दिया। दारा ने लिखा था कि उस मास की ४ तारीख को दूसरा हमला करने के लिये वह कन्धार में उपस्थित हो जाये। राजकुमार को इसका उत्तर यह मिला—"आक्रमण मुझसे नही हो सकता है। मेरी इस त्रुटि पर हुजूर जो भी चाहें वह दण्ड मुझे दे सकते है। कन्धार से अब मुझे कुछ भी लेना देना नही है।" (वही, १५१ ब)

उसको देने का दारा ने प्रस्ताव किया और खानेखानाँ की उपाधि सहित उसको हफ्त (सप्त) हजारी का पद (७ हजार जात और ७ हजार सवार, दो अस्पाह, सेह अस्पाह) देने की प्रतिज्ञा की। किलीचखाँ सतर्क वृद्ध सैनिक था। इस प्रलोभन पर विचार करते हुए उसने कहा—"अवरोध (घेरा) समाप्त हो रहा है। इस स्थिति मे कार्य-भार मेरे सुपुर्द करना मेरे हाथ मे मछली की दुम देना है (दुमे माही ब दस्ते मन दादन अस्त)। तो भी उसने प्रतिज्ञा की कि वह यथाशक्ति प्रयास करेगा और अवरोध को निर्देश देने का कार्य उसने स्वीकृत कर लिया। दारा इतना प्रफुल्लित हो गया कि वह खाँ के गले से चिपट गया और उसके प्रस्थान के समय उसकी गर्दन का उसने चुम्बन किया (लतायेफ, १३५.ब)। कुछ दिन पीछे किलीचखाँ ने[१] दारा को परामर्श दिया कि रुस्तमखाँ बहादुर के सैनिको को वापस बुला लिया जाये कि द्वितीय आक्रमण किया जा सके। अवरोध एक मास और खिंच गया। उसमे आवेग-पूर्ण उद्योग और निराशामय प्रयास लक्षित होते थे। उनका उद्देश्य शेर हाजी की रक्षा-पंक्तियो की प्राकारो मे सुरगे लगाना और उन पर गोले फेंकना था।

विभाग ११—दारा की असफलता के कारण

आक्रमणकारी मुगल साम्राज्यशाही की प्रगति को ईरान की प्रगाढ़ देश-भक्ति और अदम्य गर्व ने उलटा फेर दिया। १७वी शताब्दी के अवरोध-रण-व्यापार में आक्रमण की अपेक्षा रक्षा-साधनो की उनकी उत्तमता ने उनका पूरा साथ दिया। महान् मुगलो की सेना सदैव अनियत सैनिको की एक विशाल राशि रही थी। इसको देशी और विदेशी स्वार्थसाधक सैनिक सशक्त बनाये हुए थे, और ये बारह विशेष जातियो और देशो के व्यक्ति होते थे। भारत में मुगल सेना की गौरवशाली सफलता उसकी सैनिक निपुणता के कारण इतनी न हुई जितनी कि और बातो के कारण—उदाहरणार्थ—हिन्दुओ के विरुद्ध इस्लाम की सामान्य देश-भक्ति और उनका दृढ सगठन, हिन्दुओ के जाति-पाँति के झगडे और उनके राजवशो के पितृ-परम्परा-गत कलह तथा राजनैतिक प्रश्नो और अपने शासको के भाग्य के प्रति भारतीय जनता की प्रसिद्ध उदासीनता। परन्तु ईरान के विरुद्ध दिल्ली का सम्राट् अपनी सेना के मुस्लिम भाग को धर्म या देश के नाम पर कोई प्रेरणा न दे सकता था। क्योकि ईरान से हिन्दुस्तान मे आकर बस जाने वालो के बुद्धि और बाहुबल से ही प्रायः इस सेना की बल-वृद्धि होती थी। कछवाहो और राठौडो को जो

१—किलीचखाँ तूरानी (म० उ० III, ९२)। वह ईमानदार मुँहफट सैनिक था। उसने अपने जीवन का बहुत-सा समय कन्धार में ईरानियों से लड़ते हुए व्यतीत किया था। इस वीर अनुभवी सैनिक के प्रति दारा का व्यवहार या तो फुसलाने का होता था या उपेक्षा का।

आनन्द शिशोदियो से लडने मे मिलता था, वह सफावियो से लडने मे प्राप्त न होता था। मनसबदारो के दलो मे और जातीय पलटनो मे पारस्परिक ईर्ष्या तथा अनुशासन और शस्त्राभ्यास की अनुपस्थिति के कारण सेना मे किसी प्रकार की सैनिक-भावना की वृद्धि न हुई थी। इन्ही के कारण सहयोग भी असम्भव था, जब तक किसी अधिकारशील व्यक्ति की सतर्क दृष्टि उनका नियन्त्रण न कर रही हो। मैत्री-भावना तथा सामान्य पक्ष के प्रति निष्ठा नही, परन्तु इनके विपरीत ईर्ष्या और वैयक्तिक प्रतिष्ठा के प्रति अनुराग मुगल सेना की निस्सन्देह प्रेरक शक्तियाँ थी। मुगल साम्राज्य का समस्त सैनिक इतिहास इस तथ्य को प्रमाणित करता है। मुगल सेना के जन्मजात इन अवगुणो के प्रति औरगजेब सदृश व्यक्ति भी असहाय था।

कुछ भी हो, दारा के चरित्र के कुछ गम्भीर अवगुणो की कोई भी उपेक्षा नही कर सकता है। कन्धार मे उसकी असफलता के प्रति ही नही, बल्कि उसके समस्त राजनैतिक जीवन की दु.खद असफलता के प्रति भी वे ही उत्तरदायी है। उसने एक दल—अपने दल के व्यक्तियो से अपना तादात्म्य कर लिया और कुछ नवोदयो को विना विचार के अपना विश्वास सौप दिया। ये अनुभवहीन थे और बहुत सीमा तक धूर्त और अभिमानी थे। इसके कारण उसमे और उच्च सामन्तो मे भेद-भाव बढ गया। उनको सन्देह हुआ कि राजकुमार की ऐसी इच्छा न थी कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान प्राप्त करने के समान अवसर दे। परिणाम यह हुआ कि उनको कन्धार का पतन इतना प्रिय न था जितना कि दारा के कृपा-पात्रो का अपमान। उसमे चरित्र-बल और चातुर्य न था जो उसकी सेना के परस्पर विरोधी तत्वो को एकत्र रखने के लिये आवश्यक था। आज्ञा भग[१] और अवज्ञा केवल पञ्चहजारियो के ही नही, अपितु न्यून पदाधिकारियो के भी चरित्र की विशेषताये थी।

केवल साम्राज्य सहायको और राजकुमार के दलो के बीच कटुता और ईर्ष्या की भावनाये थी, यही नही उसके कृपा-पात्रो ने भी अपनी स्वार्थी चाले

१—थोडे से उदाहरण दिये जाते है—

अ—जाफर के तोपखाने से मुहम्मद आकिल आता है, स्वतन्त्र अधिकार मांगता है। उसको प्राप्त कर लेता है। (२५ मई, लतायेफ, ३१ ब०)

इ—जाफर की खाई में सेवा करने से नुस्रतखां इन्कार कर देता है और पद-त्याग की धमकी देता है (१५ अगस्त, वही, ११४ ब०)।

उ—राजकुमार के क्षमा के प्रस्ताव को शम्सखां और कुत्बखां ठुकरा देते है और अपने स्थानों पर वापस होने से इन्कार कर देते है। वे कहते है कि इज्जतखां के साथ रख दिये जाने से उनकी इज्जत (मान) जाती रही है (२६ अगस्त, वही, १३६ अ०)।

चली जिनका परिणाम अवश्यभावी था। दारा के तीन विश्वस्त अधिकारियो ने-अर्थात्—अब्दुल्ला, जाफर और इज्जतखाँ ने—परस्पर झगडा कर लिया और निकृष्ट ढग से एक दूसरे के प्रति अविश्वास उत्पन्न करने का षड्यन्त्र किया। राजकुमार के तोपखाने का सरदार जाफर अवरोध का परम वीर पुरुष था। उसको राजकुमार का असीमित विश्वास प्राप्त था। वास्तव मे वह राजकुमार के लिये 'अधे की लाठी' था। कहा जाता है कि राजा जयसिह, महावतखाँ और किलीचखाँ द्वारा प्रतिज्ञा करने पर और आश्वासन दिये जाने पर जुल्फिकारखाँ ने एक बार आत्म-समर्पण कर देने की अपनी इच्छा प्रकट की। इस पर दारा ने घृणा से कहा—"यदि उसकी इच्छा आने की है, तो वह जाफर और इज्जतखाँ की प्रतिज्ञा पर आ सकता है क्योकि उनका वचन मेरे वचन के बराबर है" (कौलेओंहा कौले मा अस्त)[1]। परन्तु ये दोनो राजकुमार की स्वय उपस्थिति मे भी प्रायः झगड जाते और कभी-कभी एक दूसरे की चुगली भी करते। जाफर की गर्वोक्ति पर बिगड कर इज्जतखाँ ने उसको पाजी कहा और राजकुमार को मुँहफट कह दिया—"इन पाजियो के प्रति आपके द्वारा प्रदर्शित कृपा और विश्वास से कोई लाभ न होगा[2]।" १५ जून को अब्दुल्ला ने जाफर के पास एक प्रार्थना भेजी। जाफर के तोपखाने के सनिकट उसका तोपखाना था। उसने कहा कि जाफर अपने तोपखाने के अग्र भाग को आगे बढाना स्थगित करदे जब तक वह उसकी समरेखा मे न आ जाये। चार दिन बाद अब्दुल्ला राजकुमार को प्रणाम करने गया और एक प्रश्न के उत्तर मे उससे निवेदन किया कि उसकी खोई जाफर की खाई से कुछ पग आगे है। जब यह बात जाफर के कानो तक पहुँची, वह क्रोधित हो उठा और ईरानियो की समस्त जाति और उनके दुष्ट विश्वासहीन शिया सम्प्रदाय को गालियाँ देने लगा। उसके क्रोध को शान्त करने के लिये दारा के कृपालु शब्दो से भी कोई लाभ न हुआ। तीन दिनो के बाद काजी अफजल इन दोनो के बीच मे वैर-शान्ति करने मे सफल हुआ। परन्तु यह सन्देह किया गया कि अब्दुल्ला के सैनिक[3] शत्रु से विश्वासघातक पत्रव्यवहार कर रहे है।

विभाग १२—अवरोध-त्याग

कन्धार के मुगल अभियानो मे थकाने वाली एकरूपता है, क्योकि तीनो मे एक ही योजना, एक ही कार्य-प्रणाली और एक ही अवश्यभावी परिणाम,

---

१—लतायेफ, ६८ ब०।

२—लतायेफ, ६२ अ०।

३—अब्दुल्ला की चाल—लतायेफ, ४६ ब, क़ाजी द्वारा वैर-शान्ति—वही, ५० अ; अब्दुल्ला के सैनिकों को चेतावनी, ६४ अ०।

दिखाई देते है। ईरानी हिन्दुस्तानियो की तुलना ग्रीष्मकालीन चिडियो से करते थे जो अफगानिस्तान की हेमन्त ऋतु के आगमन पर अपने गरम मैदानो को चली जाती थी। परन्तु दारा ने निश्चय कर लिया कि हेमन्त मे भी अवरोध चालू रहेगा और आज्ञा निकाल दी कि सेना के लिये रसद-सामग्री प्राप्त की जाये। परन्तु इसकी तो कोई सम्भावना न थी कि वह इतना समर्थ हो जाये कि दुर्गस्थ सेना को भूखा मार कर आत्म-समर्पण पर उनको विवश कर दे, क्योंकि अवरोध का कोई विशेष प्रभाव न था। अफगान लोग और कभी-कभी तो दारा के शिविर के ही व्यापारी (बक्काल) चोरी-चुपके से भोज्य सामग्री दुर्ग मे पहुँचा देते थे। सीमास्थ अफगान जातियो की विद्रोही वृत्ति से परिस्थिति चिन्तनीय हो गई थी। उन्होने धमकी दी कि लाहौर और मुल्तान से अभियानक-सेना का यातायात सम्बन्ध काट देंगे। जुलाई के अन्तिम सप्ताह ही मे डोकी के स्थान पर दरबार के एक दण्डधारी (गुर्ज-बरदार) को उन्होने लूट लिया था, और शाही आज्ञा (फर्मान), घोडो, सम्मान-वस्त्र और स्वय दारा के निमित्त प्रेषित इत्रदान (हुक्कये इत्री) को लूट ले गये थे (लतायेफ, ८८ ब०, २५ जुलाई १६५३)। हिन्दुस्तानी फौजे पूर्णतया आचारभ्रष्ट हो गई थी, और अपने विरुद्ध दैवी हस्तक्षेप के स्वप्न देखने लगी थी। एक मनुष्य ने एक हजार अपरिचित सवारो को स्वप्न मे देखा जो मुगल सेना से होकर शान्तिपूर्वक दुर्ग मे प्रवेश कर रहे थे। इसका अर्थ यह लगाया गया कि वे इमाम रजा के सैनिक थे और वे हिन्दुस्तानी सुन्नियो के विरुद्ध ईरानी शियो की सहायता के लिये आये थे। राजकुमार के शिविर मे एक पवित्र कुल के सैयद को स्वप्न मे रसूल (मुहम्मद) के दर्शन हुए और रसूल ने भविष्यवाणी की कि उस वर्ष विजय प्राप्त करना सम्भव न था और यह कि मुसलमानो का अधिक रक्त-पात कराना निरर्थक था (लतायेफ, ६१ अ, ६२ ब, १४४ ब०)।

बस्त के गढ को भूमिसात् करके २७ सितम्बर को रुस्तमखॉ बहादुर फीरोज-जंग कन्धार को लौट आया। परन्तु सम्राट् की आज्ञा-पालन निमित्त राजकुमार को कन्धार पर एक और आक्रमण करने की योजना त्याग देनी पडी और आगामी हेमन्त मे अवरोध चालू रखने का विचार छोड देना पडा। अगले दिन शुभ मुहूर्त पर राजकुमार ने घर की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी। तोप-खाना और काबुल से आये हुए दल के साथ इज्जतखॉ ने गजनी की राह पकडी और सेना का मुख्य भाग राजकुमार के अधीन पिशिन और डोकी के मार्ग से मुल्तान की ओर चल पडा। ५ अक्तूबर को दारा पिशिन पहुँचा और वहाँ के गढ को नष्ट करने की आज्ञा दी। इस सेना को कबायली (जातियो के) प्रदेश में लड़ कर अपना मार्ग बनाना पडा, क्योकि अफगानो ने सडको को घेर लिया

था और उन्होने अपना जैसा रिवाज था, सहायता का धन माँगा था। डोकी के समीप राजा जयसिंह ने अफगानो के एक बडे दल को परास्त किया। डोकी मे १३ अक्तूबर को राजकुमार ने निवास किया और वहाँ से ९ दिनो मे मुल्तान पहुँच गया। यहाँ ११ दिन ठहर कर उसने २२ नवम्बर को (११ मुहर्रम, १०६४)[1] लाहौर मे प्रवेश किया।

२६ दिसम्बर, १६५३ को दिल्ली शाहजहाँनाबाद के नव-निर्मित नगर मे युवराज और उसके दल का सार्वजनिक रूप से भव्य स्वागत किया गया। पिछली सध्या को (१४ सफर। १०६४ हि०; वारिस, ८२ अ) क्रमशः लाहौर और आगरा से दारा और शाहजहाँ दिल्ली पहुँच गये थे। सम्राट् की आज्ञा थी कि रात्रि मे वह नगर के बाहर ठहर जाये। अगले दिन प्रभात मे दरबार मे उपस्थित सामन्तो को उसने भेजा कि जाकर उसके पद-योग्य सर्वसम्मान से उसको दीवाने आम[2] (सार्वजनिक सभामण्डप) मे लिवा लाये। अपने पुत्र सुलेमानशिकोह को अपने साथ लेकर दारा ने दरबार मे प्रवेश किया और एक हजार अशर्फियाँ नजर (भेंट) पेश की। अपनी असीम कृपा और प्रेम-बाहुल्य मे सम्राट् ने उसका आलिङ्गन किया और उसका चुम्बन किया (वही, ८२ ब)। अपने प्रेमोन्मत्त पिता की अन्यून कृपा और स्नेह मे दारा अपने क्लेशो और निराशाओं को भूल गया और अपने अध्ययन को शान्तिपूर्वक प्रारम्भ कर दिया। दारा अपने एकान्तवास और अध्ययन मे मग्न रहा जब तक कि गृह-युद्ध की भेरी ने उसको समर का आह्वान न दिया।

१—लतायेफुल् अख्बार का लेखक कहता है कि १३ जिल्काद (२५ सितम्बर) को दारा ने रुस्तमखाँ बहादुर को पत्र लिखा कि १४ को अवश्य ही मुख्य शिविर में पहुँच जाये, परन्तु १५ जिल्काद (२७ सितम्बर) को खाँ शिविर में पहुँचा। १० जिल्काद (२८ सितम्बर) बृहस्पतिवार को ७ घडी रात्रि शेष रहने पर दारा ने घर की ओर यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु वारिस के अनुसार १४ जिल्काद (२६ सितम्बर) को रुस्तमखाँ बहादुर क़न्धार पहुँचा और अगले दिन प्रयाण प्रारम्भ हुआ (लतायेफ, १६८ अ, १७० ब, वारिस, ह० ग्र० ७० अ)। प्रत्यागमन की अन्य घटनायें—पिशिन के दुर्ग का विनाश, लतायेफ, ७२ ब। एक युद्ध-हस्ती पागल हो जाता है, राजकुमार की आज्ञा पर भी राजा छत्रसाल हाडा उसको मारने से इन्कार कर देता है, विद्रोही अफगान क़बायलियो से छत्रसाल की टक्कर (वही, १७३ ब, १७४ अ)। पहाडसिंह बुन्देला के सिपाहियों को अफगान लूट लेते है और राजा जयसिंह उनको कडुआ पाठ पढाता है (वही, १७५ अ०)। क़न्धार से लाहौर की यात्रा का सक्षिप्त वर्णन (वारिस, ह० ग्र० ७९ ब०)।

२—इस अवसर पर एक बहुमूल्य खिलअत (वस्त्रोपहार), एक निमस्तीन और शाही अश्वालय से दो इराकी घोडे दारा को दिये गये।

विभाग १३—कन्धार के अभियान का अवशेष

यह उल्लेख कर देना रोचक होगा कि २६ दिसम्बर को सार्वजनिक स्वागत के सम्मान में भाग लेने के लिये युवराज के साथ एक भी पञ्चहजारी न था। मिर्जा राजा जयसिंह की भविष्यवाणी के अनुसार ही घटनाये घटित हुई। युवराज के दर्शन पर सम्राट् की आँखे हर्षोत्फुल्ल हो गईं। असफलता का कलक लगे हुए दारा के कृपा-पात्रो को श्लाघा और वास्तविक अभिवृद्धियाँ प्राप्त हुई। सम्राट् की अगली चान्द्र जन्मगाँठ के अवसर पर, दारा की सिफारिश पर जाफर को जो "खाइयो को अग्रसर करने मे सर्वोपरि प्रयत्नशील था" बरकन्दाजखाँ की उपाधि से सम्मानित किया गया। दारा के दूसरे कृपा-पात्र फकीरखाँ को (बाकरखाँ नजुमसानी का पुत्र), जो पद-च्युत कर दिया गया था, और जिसको दरबार मे आना मना था, उसको दारा की याचना पर २ हजार जात और १ हजार सवार का अपना पुराना पद पुनः प्राप्त हो गया।[1] महावतखाँ ने कन्धार से अपनी वापसी के बाद आज ही सम्राट् से भेट की, परन्तु उसको एक खिलत भी न मिली। नजाबतखाँ का भाग्य भी ऐसा ही रहा। १४ जनवरी, १६५४ को उसको आज्ञा हो गई थी कि अपनी जागीर को चला जाये, उसको खिलत न मिली थी (वारिस, ८३ ब)। किलीचखाँ के साथ सप्त हजारी के पद और खानेखानाँ की उपाधि की प्रतिज्ञा की गई थी, परन्तु वह राजकुमार की कृपा से इस कारण वञ्चित रह गया कि उसने कहा था कि जाफर द्वारा कृत प्राकार-भग अव्यावहारिक था (२५ सितम्बर, लतायेफ, १६६ अ)। (पंजाब मे) भेरा के स्थान पर २४ जनवरी, १६५४ को उसका देहान्त हो गया (वारिस, ८३ ब०)। चान्द्र जन्म गाँठ पर (६ फरवरी) राजा जयसिंह के पुत्र कुँवर रामसिंह को उसके मनसब मे ५०० जात की वृद्धि प्राप्त हुई, परन्तु उस वयोवृद्ध अनुभवी सैनिक की योग्यता और सेवा की यह कोई मान्यता न थी जब हम इसकी तुलना उसके राठौड प्रतिस्पर्धी जसवन्तसिह की मान्यता से करते है जो आयु मे उससे बहुत छोटा और योग्यता मे बहुत कम था। सम्राट् की सौर जन्म गाँठ के गजट मे एक मास पूर्व (६ जनवरी) उसको ६ हजारी का पद और महाराजा की उपाधि प्राप्त हो गई थी। राजा मुकुन्दसिह हाडा को

१—फकीरखा शायद दारा का सचिव और उसका विश्वासपात्र था। दारा की आज्ञा से उसने महावतखाँ को एक पत्र लिखा कि अपनी खाई आगे बढाये। लतायेफुल अख्बार का लेखक फकीरखा के पास गया कि महावतखाँ की ओर से परिस्थिति का स्पष्टीकरण करे। कारणों की उपेक्षा कर फकीरखाँ ने उत्तर में कुछ रोष-जनक शब्द कहे (११ मई, लतायेफ, २४ अ)। फकीरखा के चरित्र को प्रकट करने के लिये यह पर्याप्त है। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है कि उसने किसी न किसी प्रकार दारा की कृपा प्राप्त करली।

५०० जात की वृद्धि देकर मना लिया गया। १६५४ के जन्म गाँठ के गजटो में राजरूप और चम्पतराय बुन्देला का कोई उल्लेख नही है और न इसकी चर्चा पाई जाती है कि उनको कोई पुरस्कार प्राप्त हुआ हो। चान्द्र जन्म गाँठ पर (६ फरवरी) रुस्तमखाँ बहादुर फीरोज जग को ४ हाथियो, एक हथिनी और १० इराकी घोडो का राजोचित पुरस्कार प्राप्त हुआ।

कन्धार के इस तृतीय अभियान मे पञ्चहजारियो के आचरण और उनसे दारा के सम्बन्धो के विषय में लतायेफुलअख्बार के वर्णन की यथार्थता को दोनो जन्म गाँठो के सम्मानो की ये सूचियाँ सिद्ध करती है।

अध्याय ५

दाराशिकोह का आध्यात्मिक जीवन

विभाग १—दारा शिकोह और क़ादिरिया सम्प्रदाय

दारा के विवाह के प्रथम वर्ष ही में नादिरा बेगम ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका देहान्त ईदुल्फितर के दिन (२१ मार्च, १६३४) हो गया। उस समय वह सम्राट् के साथ लाहौर को जा रहा था। इस प्रथम दुख के आघात मे वह विचलित हो उठा। यह बहुत सम्भव है कि इस मानसिक स्थिति की दशा में वियोग-पीडित नव दम्पति ने लाहौर के प्रसिद्ध साधक फकीर मियाँ मीर के चरणो मे आध्यात्मिक सान्त्वना प्राप्त करना चाहा। वह कादिरिया सम्प्रदाय का सूफी था जिसको स्वनामधन्य सन्त अब्दुल कादिर जीलानी ने स्थापित किया था (१०७७-१६६६ ई०)।

महान सम्राट् शाहजहाँ ने केवल दो मुसलमान सन्तो को अपने पदार्पण से सम्मानित किया था। एक था बुर्हानपुर का शेख मुहम्मद फजलुल्ला जिससे वह सम्राट् जहाँगीर के जीवन-काल मे मिला था जब वह दक्षिण का सूबेदार था। दूसरा मियाँ मीर था जिससे वह १६३४ ई० मे तीन बार मिला। सन्त की कुटी मे उसका प्रथम पदार्पण ७ अप्रैल, १६३४ को हुआ। दूसरा उसके दो दिन बाद। काश्मीर से लौट कर शाहजहाँ ने पुनः शेख के दर्शन किये (१८ दिसम्बर, १६३४ ई०) और उससे "ब्रह्म ज्ञान और अध्यात्म विद्या के कुछ जटिल प्रश्नो पर वार्तालाप किया जो उस तपस्वी के लिये हर्ष और उल्लास के हेतु थे।"[1]

१—पादशाहनामा I ब० ६५। मियाँ मीर और मुल्लाशाह बदख्शी का जीवनोल्लेख पाद० I ब० ३२६-३३०, ३३५। मियाँ मीर के चरित्र पर खफीखाँ; और अपने राजकीय अतिथि

१६३५ के हेमन्त ऋतु मे जब दरबार लाहौर मे एकत्र था, बहुत सम्भव है कि दाराशिकोह को मियाँ मीर से अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रति स्वस्थ प्रेरणा प्राप्त हुई और इससे अधिक महत्त्व की यह घटना हुई कि उसका परिचय उसके भविष्य के पीर (आध्यात्मिक गुरू) मुल्ला शाह बदख़शी से हो गया जो शेख़ का शिष्य था। उसी वर्ष पूजनीय सन्त मियाँ मीर का देहान्त हो गया और उसको अवसर न प्राप्त हो सका कि राजकुमार को अपना शिष्य बनाये। मियाँ मीर की मृत्यु के पीछे ६ वर्षों तक ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान के इच्छुक राजकुमार ने प्रत्येक दिशा में आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक की खोज की और सन्तो की जीवनियो और उनके चमत्कारो के अध्ययन मे व्यस्त रहा।

अपनी पुस्तक 'रिसालै हक़नुमा (ईश्वर बोध) (१६४६ ई० मे लिखित) मे दारा कहता है कि 'उसकी मध्य युवा अवस्था मे' एक रात्रि को एक फरिश्ते (हातिफ) ने उसको स्वप्न मे चार बार उच्च स्वर से कहा—"तुझ पर ईश्वर की वह कृपा है जो इस पृथ्वी के किसी राजा पर नही हुई है।" आरिफो (स्वप्न-वेत्ताओ) ने इस स्वप्न का यह अर्थ लगाया कि उसको ईश्वर-ज्ञान-प्राप्ति का वचन प्राप्त हुआ है। राजकुमार कहता है—"समय आने पर इसका पूर्वाभास प्रकट होने लगा और दिन-दिन आवरण कुछ न कुछ उठता ही गया।" हम सत्य से अधिक दूर न हो जायँगे यदि हम यह धारणा बना ले कि यह दैवी प्रेरणा दारा को उसके विवाह के पहले न प्राप्त हुई थी और न निश्चय से ठीक उसके बाद जब युवको को भिन्न प्रकार के स्वप्न आते है। सम्भव यह है कि अपने प्रथम शिशु की मृत्यु के पीछे मियाँ मीर के गूढ प्रभाव से दारा आध्यात्मिक जीवन के प्रति जाग्रत हो उठा। इच्छा विचार की जननी है—इस कहावत के अनुसार दारा का स्वप्न, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, शायद उसी के विचार की साकारता थी। १६३५ ई० की हेमन्त ऋतु मे लाहौर मे गूढद्रष्टा संतों की संगति से उसकी कल्पना उत्तेजित हो उठी थी। यह उसका प्रभाव था। उस दिन से राजकुमार सन्तो की कुटियो मे प्रायः जाने लगा और एक गुप्त वेदना से वह विकल हो गया।

राजकीय इतिहासकार अब्दुल हमीद दारा के साहित्यिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रायः मौन है। वह हमको एक रोचक आख्यान देता है जो राजकुमार के सन्तो के प्रति अन्ध विश्वास-मूलक सम्मान पर और चमत्कारो मे उसकी मूढ

के प्रति उसकी उदासीनता और सम्राट् द्वारा इसकी प्रशंसा पर मुन्तखब ५४८-४६। दबिस्ताँ में मियाँ मीर और मुल्लाशाह का उल्लेख जो दबिस्ताँ के लेखक का पीर था। शिया भाग III पृ० २८४, २८७, फारसी पाठ, बम्बई का मुद्रण पृ० ३१८, ३१६।

श्रद्धा पर कुछ प्रकाश डालता है। एक अवसर पर जब गायक और मदारी राजसभा का मनोरञ्जन कर रहे थे शेख नाजिर हर्षोन्मत्त हो गया और पीने के लिये उसने पानी माँगा। चमत्कार दिखाने मे शेख प्रसिद्ध था और इसी कारण दरबार मे आने का उसको निमन्त्रण मिला था। शेख ने कुछ पानी पिया और दूसरो की ओर गिलास बढा दिया। जिस किसी ने उसको पिया कहा कि उसमे शुद्ध मधु था। राजकुमार दाराशिकोह और काजी मुहम्मद इस्लाम (मृ० १६५१ ई०) ने सम्राट् से निवेदन किया कि आगरा में उनकी उपस्थिति मे एक वार शेख ने एक घडे को (कूजा) और दूसरे अवसर पर एक रुमाल को कबूतर बना दिया था। उन्होने आगे यह भी कहा कि एक अवसर पर शेख ने उनकी बन्द मुट्ठियो मे घास का एक तिनका रख दिया जो कीडा (किर्म) बन कर बाहर निकला। राजा विक्रमाजीत ने, जिसकी सत्यता की साक्षी वृद्ध अब्दुल हमीद देता है, एक अवसर पर सम्राट् को कहा कि एक बार वह शेख नाजिर को नमाज पढते देख रहा था, उसने देखा कि नमाज पढते-पढते शेख की काली मोछे (महासीन) सफेद हो गईं, उसका सिर उसके धड़ से अलग हो गया, और कुछ समय के बाद वे पुनः जुड गये।[1]

इस आरम्भिक अवस्था मे ही दारा की धार्मिकता बुद्धि-प्रधान हो गई। इस्लाम के सन्तो के चमत्कारो और उनकी जीवनियो पर एक बृहत्काय ग्रन्थ के निर्माण मे उसने अपने पर्याप्त अवकाश को लगा दिया। भक्ति-भाव से उसने यह कार्य किया, इस कार्य को उसने सन्तो की सगति का स्थान दिया, इस प्रकार के अध्ययन से उसकी कल्पना और भी उत्तेजित हो गई और उसकी मानसिक प्रवृत्ति असदिग्ध रूप से आध्यात्मिक हो गई।

मियाँ मीर की मृत्यु के बाद १२ नवम्बर, १६३० तक दारा फिर लाहौर न गया। ईरानियो के विरुद्ध एक अभियानक दल का नेतृत्व करने के लिये इसके कुछ दिन पीछे उसकी नियुक्ति हो गई, और ९ अक्तूबर, १६३९ को वह उससे वापस लौटा। चूँकि फरवरी, १६४० के प्रथम सप्ताह मे सम्राट् के साथ[2] उसको काश्मीर जाना था, अतः विश्राम के अल्पकाल ही मे ११ जनवरी, १६४० को लाहौर मे ही उसने अपने प्रथम ग्रन्थ सफीनतुल औलिया को सम्पूर्ण कर दिया। दारा सम्राट् के साथ काश्मीर मे करीब ७ मास रहा—(२२ मार्च,

---

१—अब्दुल हमीद का पादशाहनामा, I ब—३३७।

२—लाहौर में शाहजहाँ का आगमन १२ नवम्बर, १६३८ (१५ रजब १०४८ हि०—पाद० II १२३) काश्मीर को प्रस्थान—२५ शवाल, १०४९ हि० (८ फरवरी, १६४० ई०) वही, पृ० १७९, श्रीनगर में प्रवेश ९ जिल्हिज (२२ मार्च, १६४०) वही, पृ० १९०।

१६४०—१४ सितम्बर, १६४०)[1] और इस काल मे मियाँ मीर के शिष्य मौलाना शाह बदखशी की सेवा उसने पुनः आरम्भ करदी। यद्यपि दारा शिकोह को अनेक सन्तो से शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त हुई थी और वह अपने पत्रो मे उनको पीर और मुर्शिद (गुरु और पथ-प्रदर्शक) की उपाधियो से सम्बोधित करता था, परन्तु अन्त तक मौलाना शाह पर ही राजकुमार की श्रद्धा स्थिर रही। अपनी दीक्षा के बाद दाराशिकोह अपने को क़ादिरी और हनफी कहता था।

दाराशिकोह जन्म से प्रसिद्ध ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का शिष्य था। वह अकबर के वश का सरक्षक सन्त था। अजमेर मे उसकी समाधि के प्रति अकबर ने अपनी राज्योचित भक्ति प्रकट की थी। उसकी बहन जहाँनारा उसी सम्प्रदाय की मुरीदा (शिष्या) थी और उसने एक पुण्य कार्य समझकर 'मुनिसुल अर्वा' (आत्मशान्तिदायक) नाम की ख्वाजा की जीवनी लिखी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मुईनुद्दीन चिश्ती के सम्प्रदाय को छोडने के पूर्व दारा बहुत दिनो तक सशयग्रस्त रहा कि वह अब्दुल कादिर जीलानी के सम्प्रदाय की दीक्षा ले या नही। परन्तु मियाँ मीर के आकर्षक व्यक्तित्व और उसकी भक्ति ने और मौलाना शाह की प्रसिद्धि ने राजकुमार को कादरिया सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट कर लिया। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक ही था कि अकबर के प्रपौत्र की कल्पना को अब्दुल कादिर जीलानी[2] की दानशीलता और जन-सेवा की उच्च भावना प्रेरणा दे, क्योंकि वह (अब्दुल कादिर जीलानी) इस पक्ष मे था कि नरक के द्वार सर्वथा बन्द कर दिये जायँ और स्वर्ग के द्वार मुसल्मानो और काफिरो (अविश्वासियो) दोनो के लिये समान रूप से खोल दिये जायँ। जब वह कादरिया सम्प्रदाय की क्रियाओ से पूर्णतया परिचित हो गया, उसने अपनी द्वितीय पुस्तक 'सकीनतुल-औलिया' लिखी जो १६४२ ई० में पूर्ण हुई। यह मुख्यतया मियाँ मीर की जीवनी है और इसमे अपने उद्देश्य-प्राप्ति की ओर सूफी की आध्यात्मिक यात्रा की भिन्न-भिन्न मंजिलो के प्रसंगतः उल्लेख हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि दारा द्वारा कादरिया सम्प्रदाय का वरण करने मे उसको ईश्वर की स्वीकृति प्राप्त हुई। शुक्रवार, १७ रजब १०५५ हि० की रात्रि मे उसे आकाशवाणी द्वारा यह सन्देश प्राप्त हुआ कि ईश्वर की प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम मार्ग कादरिया सम्प्रदाय की दीक्षा ही थी। उसी रात्रि को उसे यह भी ईश्वरीय आज्ञा प्राप्त हुई कि नवदीक्षित सूफियो के उपयोग के लिये

१—शाहजहाँ का लाहौर को प्रस्थान ७ जमादी उस्सानी, १०५० हि० (१४ सितम्बर, १६४०), पाद० II २०८।

२—देखो इस्लाम का शब्द सागर, I ४२।

वह एक पुस्तिका का निर्माण करे। उसने अविलम्ब आज्ञा का पालन किया और एक वर्ष के भीतर ही एक पुस्तिका 'रिसालै हकनुमा' लिख डाली जिसमे उसने आध्यात्मिक आलोक की भिन्न-भिन्न भूमियो और सूफियो की क्रियाओ का साराश दिया। सम्प्रदाय के सस्थापक अब्दुल कादिर जीलानी की भाँति वह साधिकार कहता है कि ईश्वरीय आज्ञा के पालनार्थ ही वह लिख रहा है, कि यह ग्रन्थ वास्तव मे कादिर (सर्व शक्तिमान) की ओर से भेजी हुई श्रुति है—और वह एक कादिरी का साम्प्रदायिक ग्रन्थ नही है (हस्त अज कादिर, मदन अज कादिरी—कादिर के हाथ से है—कादिरी के हाथ से नही है)[1]।

दाराशिकोह की उपरिवर्णित पुस्तके, जो १६३६ और १६४६ ई० के बीच मे लिखी गई है, उसके आध्यात्मिक जीवन के विकास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थिति की द्योतक है। उसके धार्मिक दृष्टिकोण, उसके आध्यात्मिक ध्यान की विधि तथा उसके फल, और ईश्वर और विश्व के प्रति उसकी धारणा—इन सबकी क्रमशः परीक्षा करने का हमारा विचार है।

विभाग २—दारा द्वारा उद्घोषित सिद्धान्त

यदि दारा को इस्लाम मे अविश्वास न था, तो इस समय तक उसकी पुस्तको मे भी अविश्वास की कोई गन्ध न थी। शायद कुछ सिद्धान्त इस प्रकार के हैं—उदाहरणार्थ विश्वदेववाद और केवल के अवतरण (अवतार) का सिद्धान्त जो तत्कालीन कट्टर मजहबी विद्वानो को अमान्य थे, परन्तु उनको जिस रूप मे उपस्थित किया गया—वह बिलकुल सम्प्रदाय के अनुसार था। इस समय दारा पक्का मुसलमान था—पैगम्बर और उसकी शिक्षा पर उसको पूरी श्रद्धा थी। वह इस परम्परा की कुछ-कुछ वैज्ञानिक-सी व्याख्या भी करता है कि हिन्दू देवता की भाँति पैगम्बर के शरीर की छाया न पडती थी और उस पर मक्खी न बैठ सकती थी। "क्योकि आत्मा वायु से भी सूक्ष्म है और कोई भी पदार्थ इसकी गति मे बाधा नही डाल सकता है और न उसकी चेष्टा मे आवरण उपस्थित कर सकता है, तो आश्चर्य की क्या बात है कि उस जगत् के अग्रणी ने स्वर्ग के प्रति अपनी प्रसिद्ध यात्रा अपने (सूक्ष्मीकृत) जड़ शरीर से की ?" राजकुमार के लिये (जैसा कि वह अपने रिसाला मे कहता है)

१—राय बहादुर श्रीशचन्द्र वसु द्वारा रिसालै हकनुमा के इङ्गलिश अनुवाद में (इलाहाबाद, १६१२ ई०) यथार्थ तिथि का वर्णन नही है। नवलकिशोर प्रेस के लीथो सस्करण में तिथि शुक्रवार, ८ रजब, १०५५ हि० है। परन्तु इस वर्ष ८ रजब को शुक्रवार न था, बुधवार, २० अगस्त, १६४५ था। अत ८ रजब या तो गलत है, या छापे की अशुद्धि है। इसको १० या १७ रजब होना चाहिये। बाद की तारीख को मैं अधिक शुद्ध समझता हू।

समस्त नामो में उच्चतम और श्रेष्ठ नाम "अल्ला" था जो दोनो में, जिनको इस्लाम मे विश्वास है और जिनको नही है, सामान्य था (शामिले कुफ्फार ओ इस्लाम)[1]। वह यह दावा नही करता है कि उसके सिद्धान्त मौलिक है। वह कहता है कि सूफी सम्प्रदाय के प्रमाण ग्रन्थो का वह केवल साराश दे रहा है। रिसालै हकनुमा की प्रस्तावना मे वह इनका उल्लेख करता है। यद्यपि वह उन ईश्वरवादियो पर कटाक्ष करता है जो नकली इस्लाम के बाह्य अंगो के भक्त है और उनकी पुस्तकों को नकली सिक्के कहता है, परन्तु वह बलपूर्वक कहता है—"यह अवश्य ज्ञात होना चाहिये कि जो कुछ इस रिसाले मे लिखा है, उसमें और पैगम्बर द्वारा अंगीकृत क्रियाओ, ध्यानविधियो और बैठने, चलने, फिरने और कार्य करने की शैलियो मे बाल बराबर भी अन्तर नही है।"[2] यदि हम राजकुमार के शब्दो का विश्वास करे तो हमको मानना होगा कि हारा की गुफा मे पैगम्बर श्वास-नियन्त्रण (प्राणायाम) करते थे, ध्यान के समय वह अपने मन को विभिन्न केन्द्रो (हिन्दू योगियो के चक्रो) पर एकाग्र करते, उनको ज्योति के दर्शन होते और वह अनाहत ध्वनि (शून्य का महान् शब्द) सुनते थे। ये शब्द हमको भले ही निरर्थक प्रतीत हो, हम न्याय से दारा पर यह आरोप नही लगा सकते है कि उसने इन भारतीय या तिब्बतीय रहस्यो को बाहर से लेकर इस्लाम मे प्रविष्ट कर दिया। इन क्रियाओ के बिखरे हुए तथा अस्पष्ट उल्लेख[3] दारा शिकोह के जन्म से कई सौ वर्ष पहले से सूफी साहित्य मे पाये जाते है। अपने पीर से प्राप्त इन परम्परागत जन-श्रुतियों को बिना उनकी सूक्ष्म परीक्षा किये हुए उसने केवल हम तक पहुँचा दिया है।

दारा के सिद्धान्त—उदाहरणार्थ आत्मा का प्रकृति में अवतरण—निश्चय ही सूफी सम्प्रदाय की शास्त्रीय विचार-धारा को अमान्य थे। वह कहता है—"हे मित्र यह जान लो कि मनुष्य की आत्मा ने इस शरीर के बन्धन मे क्यो

१—देखो—रिसाला, पृ० १, ९–१०, एस० सी० वसु का अनुवाद-पाठ्याश १,१३। तुलना करो—'समस्त २४ हजार और एक सौ पैगम्बर केवल एक शब्द का प्रचार करने भेजे गये थे। उन्होंने लोगों को आज्ञा दी कि 'अल्ला' के नाम का जाप करें और उसकी भक्ति करें। अबुल् फज्ल का अबु सईद को पत्र (निकल्सन कृत 'इस्लामी रहस्यवाद में अध्ययन पृ० ७)।

२—सरेमुइ तफावत व तजावस न याफता बूद—रिसाला फारसी पाठ्याश पृ० ६ः अनुवाद पृ० ४।

३—श्वास-नियन्त्रण (प्राणायाम) और मन का दिले सनोवरी (कमल हृदय) पर एकाग्र करना, १७ वी शताब्दी के प्रथमार्ध में हिन्दु, पारसी और मुसलमान योगियों की सामान्य सम्पत्ति थी जैसा कि दबिस्तान-उल्-मजाहिब का लेखक कहता है, जो दारा का गुरुभाई था।

प्रवेश किया है। कारण यह है कि इसमे जो बीज गुप्त रूप से निहित है, वह पूर्णता को प्राप्त हो जाये और फिर आत्मा मे वापस मिल जाये।" (सबबे तजल्जले हकीकते इन्सानी दर ई हैकले जिस्मानी आँ अस्त के उ वादियात के दर ई पिन्हाँ अस्त ब कमाल रसीदह बाज ब अस्ले ख्वेश पैवन्दाद)।[१]

अस्तु, इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि प्रत्येक सिद्धान्त, प्रत्येक क्रिया और आध्यात्मिक उन्नति की प्रत्येक भूमिका (मजिल) का—जिसकी रिसाला मे व्याख्या की गई है—समान सिद्धान्त वेदान्त और योग दर्शनो के बहुत प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो मे वर्तमान है। परन्तु दारा स्पष्ट कहता है कि उसकी पुस्तिका सूफी सम्प्रदाय के प्रमाण ग्रन्थो का सार है—जैसे इब्न्-उल्-अरबी का फुसुल्हिकम्, उसी लेखक का अल् फुतुहतुल् मक्रिया, अबुनस्र-अल्-सर्राज का किताब-अल्-लुमा और कई अन्य ग्रन्थो का।[२]

विभाग ३—दारा और यौगिक क्रियाएँ

योग पर दारा के विचारो के सम्बन्ध मे कुछ शब्द। मुरक्का या खिर्का (थेगली या पेबन्द लगा हुआ लबादा या घागरा) का धारण करना नियमित नव-दीक्षित सूफी के लिये सामान्य नियम है। हम नही जानते है कि हिन्दुस्तान के युवराज ने इसको जन-साधारण के सम्मुख कभी धारण किया या नही, या वह इसको अपने राजकीय वस्त्रो के नीचे धारण करता था जैसा कि कार्डिनल (पोप के नीचे कैथालिक पादरी) ऊल्जे अपने प्रधान मन्त्री पद के भव्य स्वर्ण और रेशम के वस्त्र के नीचे सन का कपडा धारण करता था। उसकी पुस्तको से जहाँ तक हम अनुमान कर सकते है उसको संन्यास की अपेक्षा नैतिक त्याग अधिक पसन्द था। उसकी सम्मति मे "ईश्वर का स्मरण न करना सासारिकता है। वेश-भूषा से या पुत्रो तथा स्त्रियो के होने से कोई सम्बन्ध नही है।" प्रत्येक स्थल पर वह इसी विचार की पुष्टि करता है और स्पष्ट कहता है कि उसका मार्ग प्रसाद का मार्ग है न कि ताप और प्रयास का, कि बिना किसी प्रकार की तपश्चर्या के ही स्वभावतः उसको ईश्वर की ओर आकर्षण हो गया। इसका भी ध्यान रखना है कि यद्यपि राजकुमार अपने को कादिरिया कहता है, वह आत्मसयम तथा शारीरिक त्याग की आरम्भिक मजिल की उपेक्षा करता है, जिनको नव दीक्षित के लिये शेख अब्दुल कादिर आवश्यक मानता है। दारा कहता है—"लेखक के सम्प्रदाय के अनुशासन मे, अन्य सम्प्रदायो मे विहित

१—रिसालै हकनुमा का परिचय।

२—इङ्गलिश में एस० सी० वसु द्वारा अनूदित—'सफीनात' का परिचय। देखो परिशिष्ट रिसाला, II।

क्रियाओ के विपरीत, कोई वेदना और कष्ट नही है' : ' इसमे कोई तपश्चर्या नही है, प्रत्येक वस्तु सरल, दयापूर्ण है—वह ईश्वर का स्वतन्त्र उपहार है। यह प्रेम, स्नेह, आनन्द और सुविधा का मार्ग है।'' ईश्वर पीडक नही है, अपने उपजीवियो को वह सतोष देता है, इस मार्ग पर वह अपने निर्वाचित जनो का नेतृत्व इसलिए करता है कि अपने प्रिय पात्रो के रूप मे वह उनका स्वागत करे, न कि अपराधियो के रूप मे उनको वह दण्ड दे।[1]

इस्लाम की आत्मा त्याग की नही है, परन्तु अनासक्ति की है—मनुष्य बाह्य जगत् के व्यापारो मे संलग्न रहे, परन्तु उस पर उनका कोई प्रभाव न पडे, वह जगत के हलचल मे एकाकी भाव से रहे—यह इस्लाम मे आध्यात्मिक उन्नति का मापदण्ड है।[2]

ध्यान भग से सावधान रहने के लिये कादिरिया का साधारण अवलम्बन यह है कि ईश्वर के नाम का उच्च स्वर से उच्चारण किया जाये। इसके लिये व्यायामशील आसन और अन्य उपाय भी विहित है। परन्तु दारा इनकी सर्वथा उपेक्षा करता है। उसका पक्ष यह है कि बहुत ही मन्द गति से मन ही मन मे 'अल्ला'—नाम का जप किया जाये—जिह्वा की कोई गति न हो। इस विधि का विधान मियाँ मीर ने अपने कुछ कृपा-पात्र शिष्यो के लिये किया था। वह 'सुल्तान-उल्-अजकार' की बहुत प्रशसा करता है और उसको विहित बताता है[3]। श्वास पर अधिकार द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करने की यह विधि सर्वश. वही विधि है जो हिन्दुओ के प्राणायाम की है। अन्तर केवल यह है कि हिन्दु योगी सीधा बैठता है और सूफी प्राणायाम के समय अपनी दोनो कुहनियो को घुटनो पर टेक कर आगे की ओर झुक जाता है। दारा अपने रिसाला मे कहता

१—रिसाला—इङ्गलिश अनुवाद पृ० ५, फारसी पाठ्याश पृ० ५।

२—हमारे कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमर पक्तियो में दारा के अध्यात्मवाद की पूरी प्रतिध्वनि है—''वैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय, I असख्य बन्धन माझे महानन्दमय I लभिब मुक्तिर स्वाद।''

३—ध्यान के लिये बैठने के पूर्व कादिरिया सम्प्रदाय में नव शिष्य के लिये साधारणतया यह क्रम है कि सूरा इख्लास, सूरा फलक, सूरा नास—प्रत्येक का सात बार पाठ किया जाये। तब मुमुक्षु पल्थी मारकर बैठता है (पारिभाषिक नाम चहार जानू-सिद्धासन), शब्द 'ला' का उच्च स्वर से उच्चारण करता है और बायें घुटने पर सिर से जोर का प्रहार करता है, 'इला' कहते हुए दाहिने घुटने पर, 'हा' कहते हुए दाहिने कन्धे पर और 'इलह' को अधिक जोर से कहकर हृदय पर बल लगाता है कि लोहार के हथौडे की भाँति वह अन्दर की ओर प्रहार करे। अल्लाह के आह्वान निमित्त इस उच्च उद्घोष पर अन्य सम्प्रदायों के सूफी हँसते है क्योंकि अल्लाह न तो बहरा है, न दूर है। अल्लाह और उसकी प्रजा के बीच का अन्तर उस अन्तर से भी कम है जो सवार और ऊँट की गर्दन के बीच मे है।

है कि दृष्टान्तो और सकेतो द्वारा इस क्रिया का भेद मौलाना शाह को मियाँ मीर ने बता दिया था। मौलाना शाह इसका वास्तविक अर्थ एक वर्ष मे समझ सका, परन्तु ६ महीनो मे ही उसके योग्य शिष्य ने इसके प्रभाव का साक्षात् कर लिया। जिन लोगो ने यह क्रिया दारा से सीखी, उनको तीन या चार दिनो मे ही आत्मा का प्रकाश दीखने और अनहद शब्द सुनाई देने लगा। उस देश मे और उस काल मे यह कोई आश्चर्यकारी घटना नही है जब इस चतुराई की उक्ति का प्रचार था—"यदि मध्याह्न में राजा कहे कि अर्धरात्रि है तो यह कहना हितकर होगा—'हाँ—मुझे लाखो तारे दिखाई पड रहे है।" अपने असीम धर्मोन्माद मे, अतुलित आत्म-विश्वास मे तथा मनुष्य-प्रकृति के शोचनीय अज्ञान मे इस आध्यात्मिक निर्देशक ने भविष्य मे प्रभावहीन राजनीतिज्ञ और सैनिक सिद्ध होने का प्रमाण उपस्थित कर दिया।

विभाग ४—दाराशिकोह का अद्वैतवाद

इस्लाम मे सूफी अद्वैतवादी है और तौहीद या एकत्वप्राप्ति[1] उनका उद्देश्य है। ईश्वर के एकत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद, ईश्वर के एकत्व का साक्षात्कार करना ही तौहीद है। प्रत्येक व्यक्ति उसकी खोज अपने ढंग से करता है। इस प्रकार जितने उसकी खोज करने वाले है, उसको पहुँचने के लिये उतने ही मार्ग है। खुरासान का प्रसिद्ध सन्त अबुसईद फज्लुल्लाह कहता है—"ईश्वर को प्राप्त करने के लिये अनेक मार्ग है; परन्तु मार्ग की लम्बाई केवल एक डग है। अपने बाहर एक डग रखो और तुम ईश्वर को प्राप्त हो जाओगे।" अपनेपन से बाहर निकलजाना (फना) यह साक्षात्कार करना है कि अपनेपन का अस्तित्व नही और सिवाय ईश्वर के किसी वस्तु का अस्तित्व नही (तौहीद)। 'जो अपने को पहचानता है, वह अपने ईश्वर को पहचानता है'—इस जन-श्रुति का अर्थ है कि जो अपने को अस्तित्व-हीन जानता है (अदम), वह जानता है कि सच्चा अस्तित्व (वजूद) ईश्वर का है। बुद्धि द्वारा यह ज्ञान प्राप्त नही हो सकता है... इसको सीख नही सकते है। वह ईश्वरीय प्रकाश से ही प्राप्त होता है। वह इन्द्रिय जो इसका ग्रहण करती है—हृदय है।"[2]

१—तौहीद पर विद्वत्तामय निरूपण के लिये देखो—काश्फुल्महजूब का निकल्सनकृत अनुवाद, पृ० २७८-२८५।

२—देखो निकल्सन कृत—'इस्लामी रहस्यवाद के अध्ययन' पृ० ५०। तुलना करो कबीर की उक्ति से :—

नाँव न जानों गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलता चलता जुग भया पाव कोस पर गाँव

तौहीद का सिद्धान्त दारा के आजीवन अध्ययन का विषय बना रहा। ज्ञान और ध्यान द्वारा इसका पूर्ण साक्षात्कार उसके अध्यात्मवाद का उद्देश्य बन गया। सर्व प्रथम हम उसके भक्ति विषयक रूप का निरूपण करेंगे।

दारा की युवा अवस्था के आरम्भ मे ही ईश्वर ने उसको ईश्वरीय ज्ञान देने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय से दारा उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था जब अपनी असीम दया से ईश्वर उसको अपने निकट कर लेगा। राजकुमार कहता है—"अपने ही कर्मो और क्रियाओ द्वारा अपना उद्देश्य प्राप्त करने की मुझको कोई आशा नही है। हे ईश्वर, मेरा एकमात्र आश्रय तेरी दया है।"[1] दारा ने ईश्वरीय दया-मार्ग का अनुसरण किया। इसके कारण आध्यात्मिक प्रकाश की खोज मे उसको अनेक आप्त सन्तो की शरण मे जाना पडा। मौलाना शाह के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की सहायता से ध्यान द्वारा उसने 'एकत्व' का अनुभव किया और इसके बाद "प्रत्येक धर्म के अध्यात्म ज्ञानियो से मिलने की और एक-ईश्वर-वाद (तौहीद) के सिद्धान्त पर उनके व्याख्यानो को सुनने की उसकी उत्कण्ठा बहुत बढ गई, उसने सूफी मत पर अनेक पुस्तको का अध्ययन किया और स्वय उस पर पुस्तिकाये लिखी; एक-ईश्वर-वाद के ज्ञान के प्रति उसकी पिपासा (तिश्नगी दर तलाबे तौहीद) दिन-प्रतिदिन बढती ही गई। यह ज्ञान वास्तव मे असीम सागर है"।[2] वह अनेक सन्तो के घनिष्ठ सम्पर्क मे आया और सूफी की भाषा मे—'अनेक घाटो पर उसने छक कर पानी पिया' (मशरब) कि उसकी आध्यात्मिक पिपासा शान्त हो जाये। न बुद्धि द्वारा और न शान्त मनन द्वारा ही उसको सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हुआ। वह उसे रहस्यमय प्रेम के आवेश मे प्राप्त हुआ। यह आवेश उसको ५ वर्षों तक रहा (१६४५–१६५०)। एकत्व की उसकी धारणा के विकास का, और उसके गूढ-वाद का एक मनोरजक रूप उन पत्रो से प्रकट होता है जो दाराशिकोह ने प्रसिद्ध समकालीन सन्त शाह दिलरुबा को लिखे थे। इस विकास की अवस्थाओ की ओर हम यहाँ पर केवल सकेत देंगे क्योकि इन सम्पूर्ण पत्रो का अनुवाद अन्यत्र किया जायेगा।

जा कारण जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहि।
परदा दिया भरम् का ताते सूझे नाहि॥

अर्थात्—गाँव का नाम नही जानते हो, यह बिना जाने कहाँ जाओगे ? चलते-चलते जुग बीत गया, परन्तु गाँव पाव कोस पर ही है। जिसको तुमने सारे जग मे ढूँढा है, वह तो तुम्हारे अन्दर ही है। उसने भ्रम का परदा डाल रखा है, इससे दिखाई नही देता है।

१—एस० सी० वसु द्वारा अनूदित सफीनत्-अवलिया का परिचय-परिच्छेद।

२—सिर्रे अकबर का परिचय-परिच्छेद।

सूफ़ियो के अनुसार एकत्व (इत्तिहाद) के बोध मे तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम अवस्था है—अपनेपन का सर्वनाश और विना वास्तविक वियोग के संयोग (जम), यद्यपि वियोग का आभास अब भी बना रहता है। इस अवस्था मे मुमुक्षु को बोध होता है—'वह सब कुछ है—मै कुछ भी नही हूँ।' दिलरुबा को दारा के पत्र नं० ३ से आध्यात्मिकता की यह अवस्था प्रकट होती है। साधारण काव्यमय उद्‌गार मे वह कहता है—

'प्यारे प्रभु मै नही हूँ, नही हूँ। तू ही प्रेमी, प्रेम और तू ही प्रिय है।'

द्वितीय अवस्था, जिसका पारिभाषिक नाम है—'संयोग का उन्माद' (सकुल जम) आध्यात्मिक आरोहण (उरूज) की सर्वोच्च सीमा है, यहाँ पर पहुँचकर "मै" और "तू" के बीच मे वियोग की चेतना सर्वथा नष्ट हो जाती है। साधक ईश्वर के निर्विशेष एकत्व मे पूर्णतया विलीन हो जाता है। उपासक का मानो मस्तिष्क चकराने लगता है और उसके लिये अपनेपन मे और ईश्वर मे कोई भेद-भाव नही रह जाता है। उसको बोध होता है "मै" "मै हूँ" और ईश्वर की उपासना मे वह केवल अपनी उपासना करता है। राजकुमार द्वारा इस बोध की प्रथम अवस्था से उसकी द्वितीय अवस्था की ओर सक्रान्ति पत्र नं० ४ से प्रकट होती है जो दारा ने शाह दिलरुबा को लिखा था। परिचायक पद्यो मे हर्षोन्माद से विह्वल दारा ईश्वर को शख्से कुल (सर्वव्यापक सत्ता—विराट) के रूप मे दृष्टिगत करता और लगभग भगवद्‌गीता की भाषा मे उसकी स्तुति करता है।[1] "हमह वजह, हमह समा, हमह ऐन—अर्थात्—नाम रूप सब तू ही है, कर्ताधर्ता सब तू ही है।" सर्वेश्वरवादी दारा आश्चर्य मे कहता है—"वास्तव मे, निस्सन्देह वास्तव मे, उस आँख के लिये जो देख सकती है पूर्ण (कुल) अपने अणु भाग मे भी स्पष्टतया प्रकट है। जगत् को प्रकाश देने वाले सूर्य के दर्शन बालू के प्रत्येक उज्ज्वल कण मे हो सकते है, और सागर के दर्शन जल की प्रत्येक बूँद मे।"

आध्यात्मिक आरोहण के अपने शिखर से दारा को नीचे का धर्मान्धता और अज्ञान का जृम्भित गम्भीर गर्त नही दीख पडता है। उसी पत्र मे शाह दिलरुबा को दारा लिखता है—"इस फकीर के हृदय से इस्लाम के बाह्य अंग गायब हो गये है और सच्ची नास्तिकता (कुफ़) मुझको प्रकट हो गयी है ····· मैं यज्ञोपवीतधारी मूर्ति पूजक हो गया हूँ। नही—मै स्वयं अपना उपासक

१—तुलना करो—१३-१३—

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वामावृत्य तिष्ठति ॥

(खुद परस्त) हो गया हूँ और मै आत्मपूजको के मन्दिर का पुजारी (दैर नशी) बन गया हूँ।" एक मर्मस्पर्शी प्रतिभाशाली वाक्य लिखकर वह इस पत्र को समाप्त करता है:—

"अगर काफिर अज इस्लामे मजाजी गश्त बेजार,
केरा कुफ्रे हकीकी शुद पदीदार,
दरूँ हर बुते जाँ इस्त पिन्हाँ,
ब ज़ेरे कुफ़् ईमानिस्त पिन्हाँ।[१]

अर्थात्—"यदि अविश्वासी (काफिर) को बाह्य इस्लाम से अलग कर दिया गया है तो सच्चा अविश्वास (कुफ़्) किसको प्रकट हुआ है अर्थात् उसके वास्तविक रहस्य को कौन जानता है ?

प्रत्येक मूर्ति मे जीवन छिपा हुआ है और अविश्वास (कुफ्र) के नीचे विश्वास (ईमान) छिपा हुआ है।"

ऐसा मालूम होता है कि "अद्वैत के उन्माद" की इस अवस्था मे रिसालै-हकनुमा लिखा गया है। उसी के शब्दो को देखिये :—

(i) इस विश्व मे तुझ से कोई अपरिचित नही है; जिस किसी पर तेरी छाया पड जाती है, वह स्वय तू बनकर तेरे सम्मुख उपस्थित होता है।

(ii) हे मनुष्य ! तू प्रत्येक स्थल पर ईश्वर की खोज करता है, परन्तु वास्तव मे तू ही ईश्वर है और इस अवस्था मे उससे भिन्न है। यह तेरी खोज सागर के लिये बूँद की खोज के यथार्थतः समान है, जब वह सागर के जल मे पहिले ही से वर्तमान है।

वह "मुमुक्षु" को विश्वास दिलाता है "जब तू इस अवस्था को पूर्णता तक पहुँचा देगा, तब इसमें लेशमात्र भी सन्देह न रहेगा कि तू सत्य है।"

१—तुलना करो—दीवाने अमीर खुस्रु :—

'काफ़िरे इश्कम मुसल्मानी मरा दरकार नीस्त,
हर रगे मॉ तार गश्ता हाजते जुन्नार नीस्त,
खल्क मी गोयद के खुस्रु बुतपरस्ती मी कुनद,
आरे, आरे मी कुनम बा खल्के आलम कारे नीस्त।

अर्थात् प्रेम ने मुझे अविश्वासी (काफिर) बना दिया है। मुझको मुसलमान के धर्म की आवश्यकता नही है। मेरी प्रत्येक रग तार बन गई है। मुझे जनेऊ की आवश्यकता नही (जिसको मूर्ति पूजक ब्राह्मण अपने धर्म (अविश्वासी) के चिह्न रूप में पहनता है)।

लोग कहते है—खुस्रु मूर्ति-पूजा करता है।

हाँ, हाँ—मैं करता हूँ मुझको संसार के लोगों से कुछ काम नही है।

"मै ईश्वर हूँ, मैं सत्य हूँ" (अन अल हक) यह इसका बोध है—या जैसा कि वेदान्ती कहता है—

"मै ब्रह्म हूँ (ब्रह्मास्मि)।" यह सत्य का सत्य है जिसको वैदिक ऋषियो ने आर्यावर्त के वनो से उद्घोषित किया था और यही सत्य था जिसने हारूँ-अल-रशीद के समृद्ध काल मे मुस्लिम जगत् को आश्चर्यान्वित कर दिया, जब अमर शहीद हल्लाज के रक्त की प्रत्येक बूँद बगदाद को धूलि से चिल्ला उठी—'अन अल हक'।

अल्लाह, मुहम्मद और कुरान को छोडकर इस्लाम के समस्त बाह्य अङ्ग वास्तव मे दारा के रहस्यवाद मे विनष्ट हो गये। राजकुमार की निद्रा भंग हो गई। उसको एक नये जीवन का ज्ञान हुआ जो स्फूर्तिदायक था और जिसमे प्रेरणा थी। तौहीद के सिद्धान्त के अनुसन्धान मे वह अन्य धर्मो की प्रामाणिक पुस्तको तक पहुँच गया। उसको लोग अलकामिल अर्थात् पूर्ण की उपाधि से सम्बोधित करते थे और उसके उदार समकालीन पुरुष उसको सूफी सम्प्रदाय पर प्रमाण मानते थे। वह 'तादात्म्य की गम्भीरता' को पुनः प्राप्त हो गया जो एकत्व के बोध की तृतीय अवस्था है। "अनेकत्व मे एकत्व" के सिद्धान्त मे उसको दृढ विश्वास था जिसका वर्णन शाह दिलरुबा को पत्र न० ५ की आरम्भिक पङ्क्तियो मे है—"उसके नाम मे जो सत्ता की एकता मे अनुपम है, जिसकी वहिदत (एकत्व) को कोई अनेकत्व (कसरत) छुपा नही सकता है और इस समस्त अनेकत्व के होते हुए भी जिसकी वहिदत (अनेकत्व मे एकत्व) सख्याओ मे सख्या १ के सदृश स्थिर है।"

विभाग ५—दाराशिकोह का ईश्वरवाद

'अनेकत्व मे एकत्व' के नियमानुसार समझा हुआ कुरान का निश्चल एकेश्वर-वाद दारा के ईश्वरवाद की कुञ्जी है। मुसलमान के हृदय मे एक से अधिक के लिये कोई स्थान नही है। उसकी आत्मा की शान्ति के निमित्त प्राकृतिक और आध्यात्मिक जगत दोनो मे या तो "मै" या "वह" का सर्वनाश हो जाना चाहिये। मुसलमान का यह धर्म है कि 'जिहाद' (धर्म युद्ध) करता रहे—अन्दर की ओर अपनी नीच प्रकृति (नफ्स) के विरुद्ध और बाहर की ओर अन्यो से जो ईश्वर का एकत्व नही मानते है। अपने जन्मजात अहंभाव—"मै हूँ और कोई नही"—को साथ लेकर गर्वशील मुसलमान योद्धा दूसरो को जीतने निकलता है। तलवार के तर्क द्वारा सर्वनाश की क्रूर रीति से वह ईश्वर के एकत्व का और स्वयं अपना बोध प्राप्त करना चाहता है। इस्लाम का सन्त भी सदैव सतर्क रहता है कि 'अन्यो' से सघर्ष करे जो विपत्तियो के रूप मे (खतरात) उसके हृदय के अन्दर घुसना चाहते हैं। उनसे उसका मल्लयुद्ध होता रहता है जब तक

कि उसको बोध नही हो जाता है कि वे उसकी आत्मा की क्रीडात्मक चेष्टाये हैं। उस श्रद्धासम्पन्न हृदय के—जो पृथ्वी और आकाश से अधिक विशाल है—असीम प्रेम से वह बाह्य जगत् मे मनुष्यमात्र से सम्पर्क स्थापित करता है। इस प्रेम के अतिरिक्त उसके पास और कोई अस्त्र-शस्त्र नही रहता है। अपने हृदय मे उनका स्वागत कर वह ईश्वर और मनुष्य पर विजय प्राप्त करता है। समस्त सृष्टि और स्रष्टा से अपना एकत्व अनुभव करने के लिये वह अपना विकास कर सर्वव्यापक पुरुष हो जाता है (शख्से कुल)।

सूफी प्रेमी है—उस प्रेमी के अनुरूप जो किसी पार्थिव प्राणी के निमित्त अपने प्रेम को निन्दा की सीमा तक पहुँचा देता है। वह अपने प्रिय के द्वार पर अधीर होकर खटखटाता है और चिल्लाता है—"मै हूँ।" परन्तु कोई उत्तर नही प्राप्त होता हैं। प्रवेश नही मिलता है जब तक कि प्रेमी अपने आपको नही भूल जाता है और दीन भाव से नही कहता है—"तू है।" परन्तु जब सूफी उत्सुक होकर प्रिय का आलिंगन करने आगे बढता है, वह अपने आलिंगन मे अपनी आत्मा के अतिरिक्त और किसी को नही पाता है। यही आत्मा उससे युगो तक क्रीडात्मक चेष्टाये करती रही थी। तब भी सूफी का हर्ष उस मनुष्य के हर्ष से हजारो गुना अधिक गम्भीर होता है जिसका प्रेम रक्त और मास के एक सजीव पिण्ड से है। उसके प्रेम को जीवन मे वा मृत्यु मे किसी वियोग का अनुभव नही होता है। वह प्रलय तक ज्वार और भाटा के प्रभाव से मुक्त है और उसकी प्रेयसी के सौन्दर्य को आयु की झिर्रियो का पता नही है। "मै" और "वह" में, "एक" और "अनेक" मे भिन्नता सूफी के लिये सबसे गम्भीर समस्या है। मनुष्य को मोक्ष नही प्राप्त होता है, संसार मे शान्ति स्थापित नही होती है, जब तक इस विषय पर सामञ्जस्य नही हो जाता है। अतः आत्म-निर्दाहक प्रेम द्वारा सूफी इस संघर्ष का अन्त कर देता है। अन्त मे उसको इस सत्य का साक्षात्कार होता है 'वह मै हूँ।'

परन्तु अनेकेश्वरवादी और एकेश्वरवादी मे परस्पर मैत्रीभाव से सम्मेलन किस प्रकार हो जब कि पहले को तो एक दिखाई नही पडता और दूसरा उतना ही अधा होकर एक तथ्य को स्वीकार करने से इन्कार करता है और आत्म-वचना मे अनेकत्व की उपेक्षा करता है। परन्तु अपनी आध्यात्मिक दिव्य-दृष्टि से सूफी वह रहस्य देखता है जिसको जन साधारण नही देखते हैं और वह जगत् को घोषित करता है—"धर्म तो अनेक है, परन्तु ईश्वर एक ही है, मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु उद्देश्य एक ही है"।[१] "सच्चे अनेकेश्वरवादी" को सूफी

१—देखो निकल्सन का 'इस्लामी रहस्यवाद का अध्ययन' पृ० २३।

आशीर्वाद का आह्वान किया। उसने कहा—"उसके नाम मे जो अ-नाम है, परन्तु जो किसी अभीष्ट नाम से अपने को प्रकट करता है, उस प्रियतम की असीम स्तुति की जाये जो अनुपम सुन्दर मुख पर हिन्दु धर्म और इस्लाम को धारण किये हुए है। जो दो अभिमुखी बिन्दुओ की भाँति एक दूसरे के विपरीत है, जो परमात्मा इन दोनो मे से किसी को अपने मधुर मुख पर आवरण नही बनने देता है। हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनो उसकी खोज मे है, दोनो यह घोषित करते है—"वह एक अद्वितीय है, वह सर्वत्र विराजमान है, वह आदि है, वह अन्त है और उसके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नही है। वह पडोसी है, मित्र है, सहयात्री है। वह फकीर के फटे-पुराने चिथडो मे है और वह राजा के रेशमी वस्त्रो मे है। सभ्य जनो की सभा मे और ससार के उपेक्षित कोणो मे ऐसे लोग है जो उसको पहचानते है।[1]

अध्ययन और गूढ आध्यात्मिक अभ्यासो द्वारा दारा ने दार्शनिक कल्पना प्राप्त करली जो सूफी के विचार मे सत्य दृष्टि और दैवी क्षमता है। दैवी तत्व को और उसके विशेषणो के साथ उसके सम्बन्धो को समझाने के लिये और इससे भी आगे अपनी आत्मा को पहचानने के लिये खोजी को एकमात्र यही शक्ति समर्थ बनाती है। रिसाला मे अपने काल्पनिक शिष्य को राजकुमार कहता है—"जब यह पूर्णता को प्राप्त हो जाती है, जहाँ कही भी तू दृष्टिपात करेगा, तुझको तूही दिखाई पडेगा और सर्वत्र तू अपने ही एकत्व को पायेगा। सावधान रहो और बिना रूप और, विशेषण के उसका ध्यान न करो। उस दशा मे तुझको 'तश्बीह' अर्थात्—विश्व मे, जो उसकी मूर्ति है, उसके संदर्शन का सौभाग्य प्राप्त न होगा। इसी प्रकार सावधान रहो कि केवल प्रकटित रूपो की समानता तक तथा गुणो तक उसके सम्बन्ध की अपनी धारणा को तुम सीमित न कर दो—अन्यथा तन्जीह—अर्थात् अव्यक्तित्व की उसकी सम्पदा मे अपने भाग से तू वञ्चित रह जायेगा, परन्तु तुझको ज्ञान होना चाहिये कि शुद्ध भाव तथा अशुद्ध भाव, (अर्थात्–निर्गुण भाव तथा सगुण भाव) व्यक्तित्व तथा अव्यक्तित्व (तशबीह और तजीह) उसी के प्रकटीकृत रूपो और आत्म सीमितीकरण के अंग है। यदि तेरा विचार है कि छोटे-से-छोटा अणु भी उससे अलग है, तो अवश्य ही एकत्व और ज्ञान (तौहीद व इर्फान) का परम आशीर्वाद तेरे लिये निषिद्ध हो जायेगा।"[2] सूफी के अनुसार ईश्वर का ज्ञान अपने आपका ज्ञान है जिसको मदिरा के मद की भाँति कुछ ही लोग सहन कर सकते है। उसके मद मे उपासक अपने आपको भूल जाता

१—मज्मु-अल-बहरैन का परिचय। यह स्वतन्त्र अनुवाद है।

२—देखो, रिसालै हकनुमा पृ० २३, फारसी पाठय पृ० २३।

है और ऐसी बाते कहता है जिनमे अदीक्षित को पाषंड और अधर्म की गन्ध आती है। अपनी ओर सकेत करके प्रसिद्ध सन्त अबु सईद एक अवसर पर चिल्ला उठा––"इस वस्त्र मे अल्लाह के सिवाय और कोई नही है।"

विभाग ६—दाराशिकोह द्वारा प्राप्त वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति

आध्यात्मिक उत्कर्ष की यह ऊपर दी हुई चरम सीमा है और इसके आगे सिवाय पीछे लौटने के और कोई प्रगति शक्य नही है। एकत्व के बोध की तृतीय या अन्तिम अवस्था की प्राप्ति उस समय होती है जब सूफी पीछे लौटने लगता है और 'सयोग के गाम्भीर्य' को (सहवल्-जम) पुनः प्राप्त कर लेता है। "यह वह अवस्था है जिसमे साधक द्वितीय अवस्था के शुद्ध एकत्व से एकत्व मे बहुत्व तथा सयोग मे वियोग और सत्य मे व्यवस्था की दशा पर वापस आ जाता है। इसके परिणामस्वरूप ईश्वर के सयोग मे रहते हुए भी वह ईश्वर की उसी प्रकार से सेवा करता है जैसे दास अपने स्वामी की सेवा करता है और दैवी जीवन को उसकी पूर्णता—अर्थात् मनुष्यता – मे प्रकट करता है।"[1] आध्यात्मिक यात्रा का मार्ग वृत्त की परिधि के समान है जो आरम्भ-बिन्दु पर समाप्त होती है। सूफी अपना आरोहण (उरूज) आलमे नसूत (पार्थिव लोक वा दृष्टिगत ससार) से प्रारम्भ करता है, क्रमशः आलमे मलकूत (मनोभाव लोक वा आत्माओ का संसार), आलमे जबरूत (आनन्द, सयोग और सतोष का लोक), अन्त मे आलमे-लाहूत जिसको आलमे हव्वियात भी कहते हैं (तत्-त्व वा पूर्ण सत्य का लोक) को प्राप्त होता है। अपने रिसालए हकनुमा मे दाराशिकोह इन चारो लोको का चित्ताकर्षक वर्णन देता है जिसके द्वारा जनसाधारण को उस अनुभव की कुछ सुगन्ध आ जाती है जिससे उसको सहायता प्राप्त हुई थी "और जो उसने स्वयं उपार्जित किया था।" चूँकि आलमे लाहूत ईश्वरत्व का लोक है, वह साधक का स्थायी निवास-स्थान नही बन सकता है। उसकी यात्रा सम्पूर्ण हो जाती है जबकि आलमे नसूत मे वह फिर उतर आता है जो मनुष्य का उचित निवास-स्थान है।

ऊपर उद्धृत की गई संयोग के गाभीर्य की इस अवस्था की शास्त्रीय परिभाषा को यदि हम स्वीकृत कर ले, तो दारा कभी इसको पूर्णतया प्राप्त न हुआ क्योकि अपने अन्त समय तक वह विधि-विधान (शरीयत) के प्रति उदासीन रहा और इस स्थिति मे कट्टर पन्थियो की सम्मति मे वह इसमे सफल न हुआ कि दैवी जीवन को उसकी पूर्णता—मनुष्यता—मे वह प्रकट कर सके।

१—"एकत्व" के तीनो अवस्थानों के वर्णन के लिये देखो निकल्सन का 'इस्लामी रहस्यवाद का अध्ययन' पृ० २३०, पाद० टिप्पणी ३२६–३२७।

ऐसा मालूम होता है कि जब उसने अपना अगला पत्र (नं० ५) शाह दिलरुबा को लिखा, राकुजमार ने कुछ अंश मे सयोग के इस गाम्भीर्य को प्राप्त कर लिया था। इस पत्र की आरम्भिक पक्तियो मे ईश्वर की स्तुति वह पद्य में न करके कठोर गद्य मे करता है और बहुत्व मे एकत्व के नियम का प्रतिपादन करता है—"उस के नाम मे जो अपने अस्तित्व के एकत्व में अनुपमेय और अद्वितीय है, जिसका सम्पूर्ण एकत्व किसी बहुत्व (कसरत) को गुप्त नही रख सकता है, और इस समस्त बहुत्व के होते हुए भी जिसका एकत्व संख्याओ में सख्या एक के समान स्थिर है।" सूफी सम्प्रदाय का शास्त्रीय मत, यद्यपि वह स्वय गूढार्थक है, किसी भी व्यक्ति को पूर्ण एकत्ववादी मानने से इन्कार कर देगा यदि वह 'सयोग की मादकता' के बाद शरीयत (स्मृति) के मार्ग पर वापस नही आ जाता है। परन्तु दाराशिकोह उन भक्त विद्रोहियो मे था जो इसको आवश्यक न मानते थे कि सत्य के साक्षात्कार के बाद विधि-निषेध का अक्षरशः पालन कर्तव्य है। जब सत्य (हकीकत) का उदय होता है, तो इन साहसी विधि-भजको के अनुसार सूफी सम्पूर्ण मनुष्य (कामिल) हो जाता है, जिसका अस्तित्व आशिक रूप से बढ कर व्यापक रूप मे प्रसृत हो जाता है और जिस पर कोई सम्प्रदाय या जाति पूर्णतया अपना स्वत्व नही स्थापित कर सकती।[1] उनका धर्म का आधिक्य अधर्म हो जाता है और उनका पूर्व धर्मोन्माद और उत्साह शान्त होकर उदासीनता का रूप धारण कर लेता है। अतः कोई आश्चर्य की बात नही है कि मुसलमान ईश्वरवादियो ने दारा शिकोह पर अनेकेश्वरवादी होने का सन्देह किया और उसका उत्साही विदेशी पक्षपोषक मनुची भी किसी विशेष धर्मावलम्बी होने का श्रेय उसको न दे सका। यह बात अवश्य है, कि उसके समकालीन सन्त शायद पारस्परिक प्रशंसा मे उसको सम्पूर्ण मनुष्य (अल् कामिल) कहते थे। तौहीद अथवा एकत्ववाद के सिद्धान्त को उसने एक धर्म का रूप दे दिया और अपनी जिज्ञासा को अविश्वास (कुफ्र) की सीमा तक पहुँचा दिया।

१—तुलना करो—यह तथ्य तुमको आंशिक से व्यापक बना देगा, बिन्दु से सागर, रेत के एक चमकीले कण से सूर्य और तुमको असत् से सत् बना देगा।" (अज जुस्त तुरा कुल सूजद, अज क़तरा दरिया, अज जर्रा आफ्ताब, अजनीस्त हस्त) देखो रिसाला, पाठ्य, पृ० २७।

अध्याय ६

दाराशिकोह का साहित्यिक कर्तृत्व

इसमे सन्देह नही है कि दाराशिकोह अपने देश और काल का महत्तम विद्वान् था और तैमूर के वंश का सर्वोपरि विद्वान् राजकुमार था। विद्या के क्षेत्र मे वह नव-दीक्षित न था, किन्तु ब्रह्मविद्या का वह उत्साही विद्यार्थी था। ईश्वर प्रेरित धर्मों मे बहुत्व मे एकत्व के सिद्धान्त का अन्वेषरण करने का उसको अनुराग था। उसकी साहित्यिक कार्यशीलता का इतिहास उसकी आध्यात्मिकता के विकास का भी इतिहास है। उसके विचारानुसार दार्शनिक अन्वेषरण धार्मिक उपासना का अंग था। ईश्वर—मनुष्यता मे साकार दैवत्व—के प्रति उसके ग्रन्थ उसकी सर्वोत्तम प्रार्थनाये थी। उसको विश्वास था कि तौहीद—अर्थात् अद्वैतवाद—ने शुद्ध जल की भाँति विभिन्न पात्रो मे विभिन्न रंग धारण कर लिये है (अर्थात्-विविध धर्मो में—जो केवल बाहर से भिन्न है, परन्तु जो सार रूप से पूर्णतया एक है)। शहीद की लगन और उसके साहस से उसने अपनी तेजस्वी और सुसाध्य लेखनी का उपयोग किया। उसका उद्देश्य था कि यह महान् सत्य जन-विख्यात हो जाये। उसको बिश्वास था कि इस सिद्धान्त से धार्मिक कलह का घाव जो मनुष्य जाति के मर्म-स्थलो का नाश कर रहा था, भर जायगा। मुहम्मद के धर्म को ठुकरा कर नही, परन्तु उसमें मौलिक अर्थ को ग्रहण करके, इस्लाम के विशाल मस्तिष्क से संकीर्णता का कलंक हटाकर, उसने अपना कार्य सम्पादित किया। उसने सिद्ध किया कि इस्लाम का वक्षस्थल मुसलमान के हृदय से कम विस्तृत नही है। केवल हृदय ही—स्वय ईश्वर के शब्दो मे—उस परमात्मा को स्थान दे सकता है जिसको स्वर्ग और पृथ्वी स्थान नही दे सकते है।

दाराशिकोह के साहित्यिक प्रयास के इतिहास मे दो पृथक्-पृथक् काल है। १६४७ ई० तक अर्थात् रिसालै हकनुमा के सम्पादन तक सर्वेश्वरवाद के सूफी सिद्धान्त मे दारा मुख्यतया व्यस्त रहा। १६४७ से १६५७ तक यहूदी, ईसाई और हिन्दूधर्मो के अध्ययन मे वह व्यस्त रहा। इस समय मे उसका उद्देश्य यह था कि इन धर्मो के अन्तर्निहत सिद्धान्तो का वह अन्वेषरण करे और इस्लाम के विश्वासो से वह उनका सामञ्जस्य करे। सम्भवतया इसी समय मे सुप्रसिद्ध यहूदी सन्त सरमद के पास वह उसका शिष्य बनकर गया कि यहूदी धर्म का अध्ययन करे। अपने प्रिय शिष्य अभयचन्द के साथ सरमद इस समय शाहजहाँ की नई दिल्ली में रह रहा था। अभयचन्द ने मूसा की पुस्तक के एक भाग का अनुवाद फ़ारसी मे किया

था जिसका सशोधन उसके गुरु सरमद ने किया था।[1] यही ग्रन्थ पेन्टाटियूश के सम्बन्ध मे दाराशिकोह के ज्ञान का सामान्य स्रोत था। उसके मित्र और भक्त दबिस्तान के लेखक के लिये भी यही ग्रन्थ यहूदी धर्म के ज्ञान का आधार था। ईसाई धर्म-ग्रन्थो और गीतो के अध्ययन मे इतना कष्ट न उठाना पडा क्योकि भारत मे लोग पहले से ही उन ग्रन्थो से परिचित थे—विशेष कर आगरा मे जो जसुइट पादरियो के प्रचार का प्रसिद्ध केन्द्र-स्थान था। मनुची कहता है कि दारा को हर्ष होता जब वह सुनता कि ईसाई पादरियो ने अपनी युक्तियो द्वारा अन्य धर्मो के वीरो को परास्त कर दिया है। चार जसुइट प्रचारको को दारा की घनिष्ठता प्राप्त थी—ये थे साधु इस्टेनिलास मलपिका (नेपिल्स निवासी), पेड्रोजुजारटे (पुर्त्तगाली) साधु हेन्री बुज्यो (फ्लेमिग) और हेन्रिक रोथा (जर्मन)। मनुची के अनुसार राजकुमार को उनके साथ कभी-कभी मदिरापान करने का शौक था।

भारत मे इस्लाम के आगमन के पहले ही गूढ इस्लामी अध्यात्म मे हिन्दू दर्शन-शास्त्र का प्रवेश हो चुका था। ११वी शताब्दी मे अल्बेरूनी ने और १६वी शताब्दी मे अबुल्फज्ल ने हिन्दुओ के षट्दर्शन को मुसलमानो के लिये सुलभ बना दिया था। अकबर के काल के साहित्यिक पुनरुज्जीवन से मुसलमानो को संस्कृत साहित्य में और हिन्दूधर्म मे अधिक रुचि होने लगी थी। महाभारत, रामायण तथा अथर्ववेद का फारसी मे अनुवाद कराकर अकबर ने साधारण हिन्दूधर्म को मुसलमानो के सम्मुख उपस्थित कर दिया था, परन्तु इन अनुवादो से फारसी से सुपरिचित, अर्ध-मुसलिम, हिन्दु राजकीय सामन्त-वर्ग की भविष्यत् संतति को अपेक्षाकृत अधिक लाभ हुआ क्योकि उनके स्वदेशोत्पन्न मुसलमान इन पुस्तको की सहायता से हिन्दुधर्म के विषय मे कोई उच्च धारणा न बना सके। इन संस्कृत ग्रन्थों की आख्यायिकाओं और दृष्टान्तों में सुनिहित उच्च दार्शनिक सत्यों और धार्मिक तत्वों को मुसलमान प्राप्त न कर सके। बदायूंनी उस समय का आदर्श मुल्ला था जो मुसलिम जनता की दृष्टि में प्रमाण-पुरुष और उच्चतम भक्त था। उसकी सम्मति मे काफिरो की धर्म-पुस्तको के अनुवाद मे व्यस्त होना पाप था। उसको हिन्दुओं के सम्बन्ध मे तीन बाते मालूम हुई—अर्थात् प्राचीन समय मे वे गोमास खाते थे और अपनी लाशो को गाडते थे तथा अथर्ववेद मे एक मन्त्र था जो अर्थ और ध्वनि मे मुसलिम कलमा के सदृश था क्योकि उसमे अनेक 'ल' थे।

दाराशिकोह ने हिन्दु दर्शन-शास्त्र के मूल स्रोत पर अधिकार प्राप्त कर लिया

१—देखो शिआ का दबिस्तान, II २९९-३००।

तथा उसके प्रमाणिक दार्शनिक ग्रन्थो का फारसी मे अनुवाद कर उसने हिन्दु-धर्म के उच्चतम और महत्तम सिद्धान्तो को आकर्षक रूप देकर उनको मुसलमानो के सम्मुख उपस्थित कर दिया। 'अर्जुन और दुर्योधन के बीच युद्ध'—यह भ्रामक नाम देकर उसने (स्पष्टतया पण्डितों की सहायता से) भगवद्गीता[१] का अनुवाद किया। उसने इसको १८ अध्यायो मे विभाजित किया जैसा कि हमको इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति से मालूम होता है, जो इण्डिया आफिस लायब्रेरी (भारतीय कार्यालय पुस्तकागार) मे विद्यमान है और जिसमे इस आशय की एक पाद-टिप्पणी है। प्रसिद्ध दार्शनिक नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का 'गुल्जारेहाल' नाम से फारसी मे अनुवाद किया गया[२]। यह दाराशिकोह के उपयोग के लिये तैयार किया गया था और इसका अनुवादक था उसी का मुन्शी बनवालीदास जिसने राजकुमार के कृपा-पात्र ज्योतिषी भवानीदास की सहायता से इस ग्रन्थ का अनुवाद किया था। स्वामी नन्ददास कृत इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद इस फारसी अनुवाद का मूल था। बोडलेअन पुस्तकालय मे "तर्जुमे जोगवासिष्ठ" (योग-वासिष्ठ का अनुवाद)[३] नामक एक फारसी पुस्तक है जो दारा के लिये तैयार की गयी थी।

उपरिवर्णित पुस्तको को छोडकर जो दारा के आश्रय मे लिखी गई थी, दारा स्वय फारसी मे निम्नलिखित पुस्तको का लेखक था.—

१—सफीनतुल्-औलिया—मुसलमान सन्तो की जीवनियाँ—को दारा ने लिखा जब वह सूफी-वाद के मार्ग मे कष्टपूर्ण खोज कर रहा था। १६३६ ई० मे यह ग्रन्थ पूर्णता को प्राप्त हुआ जब राजकुमार की आयु लगभग २४ वर्ष की थी।

१—इथे कृत इण्डिया आफिस लायब्रेरी की पुस्तक सूची (पृ० ११११), हस्त लिखित-न० १९४९—"इस ग्रन्थ की ब्रिटिश म्यूजियम की प्रति में गलती से यह अबुलफज़्ल के नाम से लिख दी गई है। वास्तविक अनुवादक था दाराशिकोह जैसा कि वर्तमान् प्रति के पृ० १३ पर एक टिप्पणी से सिद्ध होता है।"

२—इण्डिया आफिस लायब्रेरी की पुस्तक सूची पृ० ११११ हस्तलिखित न० १९९५। मनुची का वर्णन है कि दारा का सर्वोपरि कृपापात्र ज्योतिषी भगवानदास था (कहावतें, I २२३)।

३—इथे और सचाऊ कृत बोडलेअन पुस्तकालय की पुस्तक सूची–जिल्द VIII पृ० ८१८। दबिस्तान के लेखक का वर्णन है कि एक सूफी मुल्ला मुहम्मद ने 'जोग वासिष्ठ' के कुछ भागों का अनुवाद किया था। मिश्रबन्धु विनोद (हिन्दी में हिन्दी साहित्य का इतिहास) से हमको पता चलता है कि कवीन्द्राचार्य सरस्वती ने हिन्दी में इस ग्रन्थ का सार लिखा था और इसका नाम जोगवासिष्ठसार था (म० ब० वि० II ४५३)। शायद यह ग्रन्थ उसके आश्रय-दाता दाराशिकोह के लिये लिखा गया था।

यह समस्त ग्रन्थ उत्तम भावनाओ से भरपूर है जो उसके विस्तृत अध्ययन की—विशेषकर सूफी साहित्य की—साक्षी है। उसकी प्रथम साहित्यिक कृति मे दारा के आध्यात्मिक जीवन के विकास की प्रथम स्थिति का अध्ययन बहुत रोचक है।

२—उसकी द्वितीय पुस्तक सकीनतुल-औलिया—उसके धार्मिक जीवन की अधिक परिपक्व अवस्था को सूचित करती है। वह कहता है—"जब मै मार्ग की विभिन्न मजिलो से तथा अनुशासन के नियमो से अधिक सुपरिचित हो गया मैने अपने ही शेखो के (उसका अभिप्राय कादिरिया सम्प्रदाय के सन्तो से है) विभिन्न चिह्नो, आचरणो, अवस्थाओ और चमत्कारो पर एक पुस्तक का सम्पादन किया और 'सफीनतुल-अवलिया' इसका नाम रखा।" इसमे मुख्यतया लाहौर के प्रसिद्ध सन्त मियाँ मीर के जीवन का वर्णन है।

३—उसकी तृतीय साहित्यिक कृति "रिसालै हकनुमा"—अर्थात् सत्यार्थ दर्शन—है जिसका निर्माण सूफीवाद के मार्ग मे नवदीक्षितो के शिक्षण के लिये किया गया था। इसमें मुरीद (शिष्य) को पीर (गुरु) की भाँति दारा सम्बोधित करता है, यद्यपि वह इन शब्दो के उपयोग की निन्दा करता है। वह मुरीद को मित्र की भाँति सम्बोधित करता है और वह अपना उल्लेख प्रथम पुरुष मे करता है—जुलियस के गर्व से नही, परन्तु फकीर की मूलभूत दीनता से। कहा जाता है कि अगस्त, १६४५ और जनवरी, १६४७ के बीच मे दैवी प्रेरणा से इस पुस्तिका का निर्माण हुआ। चूँकि अप्रैल से १५ अगस्त, १६४५ तक दारा काश्मीर मे सम्राट् के साथ था, उसको यह प्रेरणा काश्मीर में शुक्रवार १७ रजब (१६ अगस्त, १६४५) को अवश्य प्राप्त हुई होगी।[1] यह १६४६ का वर्ष रिसाला जिसमे लिखा गया दारा के लिये चिन्ताकुल और विपत्तिजनक था क्योकि उसकी प्रिय पत्नी नादिरा बेगम दीर्घकालीन रुग्णता से ११ मास तक पीडित रही और फरवरी, १६४७ मे उसको स्वास्थ्य लाभ हुआ।[2] 'परिचय' मे दारा कहता है—"यह ध्यान रखो कि इस पुस्तिका में चार अध्याय (चहाय फस्ल) है और प्रत्येक अध्याय मे एक आलम—अर्थात् जीवन लोक का वर्णन है।" (फारसी पाठ्य, पृ० ८)। परन्तु रिसालै हकनुमा मे, जो हस्तलिखित रूप मे और छापे मे भी विद्यमान है, ६ अध्याय है। इससे यह

१—नवलकिशोर प्रेस के लिथो पाठ्य में ८ 'रजब' है, जो शुक्रवार न होकर बुधवार है। स्पष्ट है कि सम्भवतया १७ रजब के स्थान पर यह चूक से छप गया है। देखो पाठ्य, पृ० ४।

२—दारा सम्राट् के साथ काश्मीर जाता है—पाद० II ४१३; लाहौर को वापस आता है—वही, पृ० ४६७–६; शाहजहाँ नादिरा बेगम को उसके स्वास्थ्य-लाभ के बाद देखने जाता है—वही, पृ० ६३४।

अनुमान लगाना युक्तिसंगत है कि रिसाला में पहले चार अध्याय थे और इसके अन्त मे चतुर्थ तथा उच्चतम लोक—अर्थात् आलमे लाहूत का वर्णन था। सत्य के स्वभाव पर अन्तिम दो अध्याय निःस्सन्देह दारा के लिखे हुए हैं; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि बाद मे परिशिष्ट रूप से उनकी अभिवृद्धि कर दी गई है।

प्रत्येक विद्वान् ब्रह्मविद्या-प्रिय मुसलमान की भाँति दारा पर नव प्लेटो-वाद का गहरा प्रभाव पडा।[1] वह कहता है कि वह केवल उन बातो का उल्लेख करेगा जिनको उसने अपने आध्यात्मिक गुरुओ से सुना था या जिनको उसने सूफीवाद के प्रामाणिक ग्रन्थों में पढा था। यह अनुचित होगा कि हम विवेचनात्मक और वैज्ञानिक भाव की ऐसे लेखक से अपेक्षा करें जो भक्त हो और गूढवाद का वर्णन कर रहा हो। अपने समस्त अवगुणो और शुभगुणो सहित रिसालै हकनुमा दारा के व्यक्तित्व और चरित्र का सच्चा दर्पण है। उसके प्रति पूर्णरूप से न्यायशील होने पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि लेखक के प्रति पूर्ण न्याय केवल वह लोग कर सकते है जिनके पास आध्यात्मिक दृष्टि हैं। इतने अल्प विस्तार में इससे अधिक आकर्षक और सुगम रूप मे किसी अन्य लेखक ने किसी समय मे सूफीवाद के मूल तत्वो का वर्णन नही किया था।

४—मज्मुअ-उल-बहरैन (दो सागरो का सम्मिलन)—दाराशिकोह द्वारा हिन्दु-धर्म और इस्लाम-धर्म के तुलनात्मक अध्ययन का प्रथम फल यह पुस्तिका है। इसकी रचना की तिथि निश्चित नही है, परन्तु इसमें बहुत कम सन्देह है कि यह १६५०–१६५६ के बीच मे लिखी गई। इसका परिचय राजकुमार विशुद्ध शास्त्रीय शैली मे लिखता है। आरम्भ मे ईश्वर की स्तुति है जो इस्लाम और हिन्दु-धर्म की सम्मिलन भूमि हैं। इसके बाद मुस्तफा (पैगम्बर), उसके परिवार और उसके मुख्य साथियो के कल्याण और शान्ति के निमित्त आशीर्वचन है। ये वचन यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि दारा ने ईश्वर और उसके रसूल के प्रति अपनी निष्ठा का त्याग नही कर दिया था। राजकुमार कहता है कि हिन्दुओं की निरन्तर संगति से और उनके साथ नित्यप्रति वार्ता-लाप से उसको पता लगा कि ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध मे उपायो और साधनो के विषय मे हिन्दुओ और मुसलमानो मे केवल शब्दमात्र का भेद था। भाषा और अभिव्यक्ति का ही झगडा था (इख्तलाफे लफ्जी—शाब्दिक भेद)। इस ग्रन्थ मे सृष्टिवाद के उन मूल सिद्धान्तो का उसने सकलन किया है जो ब्राह्मणधर्म और इस्लाम में समान है। रचयिता के गर्व मे राजकुमार

१—"जब प्लेटो ने यह सुना, उसको मूसा में विश्वास हो गया और उसने स्वीकार कर लिया कि वह ईश्वर का सन्देशवाहक था (रिसाला—पाठ्य, पृ० १८, रिसालैहक़नुमा, पृ० १८)।

कहता है कि वह दोनो जातियो के चुनीदा लोगो के लिये उस पुस्तक को लिख रहा है, केवल जिनको उसके परिश्रम और अनुसन्धान से लाभ हो सकता है। दोनो धर्मो के जन-साधारण—ज्योतिहीन मूर्खो—(कुन्द फहमॉने ग़ैरबीन) के प्रति घृणा के अतिरिक्त और कोई भावना उसके पास नही है।

इसमे सन्देह नही है कि राजकुमार ने अनुसन्धान का एक मौलिक मार्ग ढूँढ निकाला जिसका अनुसरण यदि इस उपेक्षित जन-साधारण के कल्याण के लिये सच्चाई से किया जावे, तो वर्तमान शताब्दी मे उच्च परिणाम प्राप्त किये जा सकते है। भारत के दोनो आध्यात्मिक तत्वो का पारस्परिक बोध और उनकी दोनो स्पष्टतया विरोधी सस्कृतियो के विवेचनात्मक अध्ययन के निमित्त नवीन प्रयास आवश्यक है क्योकि भारत का भाग्य इस पर निर्भर है। —दाराशिकोह का यह ग्रन्थ इस दिशा मे प्रथम गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण प्रयास है और इस दशा मे भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए इसमे अद्भुत आकर्षण है। अल्बेरूनी की भॉति दारा कोई महान् सस्कृतज्ञ न था और न उस प्रसिद्ध विद्वान् की प्रशान्त निर्णायक शक्ति और विवेचनात्मक योग्यता दारा मे थी। अधिकतर उसको पण्डितो का सहारा लेना पडता था जो अपने साहित्य और दर्शन का अर्थ करने मे कभी-कभी ही एक मत हो सकते है। इन कमियो के कारण राजकुमार के निर्णय आधुनिक समय के विशेषज्ञो को सर्वथा स्वीकार्य नही हो सकते है। इस पुस्तक मे राजकुमार का मुख्य मन्तव्य यह सिद्ध करना था कि सृष्टि-रचना के विषय मे हिन्दुओ के विचार उन विचारो के सदृश है जो कि कुरान में पाये जाते है। राजकुमार का कार्य अत्यन्त कष्टसाध्य था। अतः इसमे आश्चर्य न होना चाहिये यदि कभी-कभी उसकी उपमाये तथा समानताएँ असगत और ऊपरी हो।[1]

विभाग ४—सिर्रे अकबर या सिर्रुल् अकबर

सिर्रे अकबर (गुह्यतम) या जैसा कि कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे पाया जाता है सिर्रुल् अकबर (गुह्याद्गुह्यतम) नामक ५२ उपनिषदो का उनकी मूल सस्कृत से सुन्दर सर्वाङ्गपूर्ण फारसी गद्य मे अनुवाद दारा की अन्तिम तथा महत्तम साहित्यिक निष्पत्ति है। उपनिषदो के फारसी चोले में इस सिर्रे अकबर या सिर्रुल् अकबर नाम से अधिक उपयुक्त नाम की कल्पना नही की जा सकती है क्योकि दोनो ही उनके अन्तर्गत विषयो के अत्यन्त सूचक है जिनको आर्य ऋषियो

१—चूँकि हाल में ए० एस० बी० के मन्त्री ने घोषित किया है कि अनुवाद सहित मजमुअ-अल्-बहरैन के सम्पूर्ण पाठ्यांश का प्रकाशन हो जायेगा, यह अनावश्यक हो जाता है कि इस स्थान पर स्पष्टीकरण के निमित्त इस ग्रन्थ के किसी भाग का अनुवाद दिया जाये। —लेखक

ने सदैव 'गुह्यादगुह्यतम' स्वीकार किया। अपने ग्रन्थ-परिचय को दारा समान रूप से उपयुक्त ईश्वर की स्तुति से प्रारम्भ करता है जिसके 'सार' की तुलना वह बिन्दु या शून्य से करता है, जिसका अस्तित्व है, परन्तु जिसमे लम्बाई, चौडाई या गहराई नही है, जो अविभाज्य तथा सर्वव्यापक है। दारा के आध्यात्मिक अनुभव का यह वास्तव मे निःश्रेयस है तथा ईश्वर के प्रत्येक खोजी के अनुभव का भी—ईश्वर जिसकी सत्ता लोग मानते है, परन्तु जिसकी सत्ता का वर्णन केवल नकारात्मक—नेतिनेति—शब्दो में ही हो सकता है। यद्यपि उसकी विद्यमानता सदैव स्वतः स्पष्ट है। ईश्वर के एकत्व या तौहीद के सिद्धान्त के पूर्णतम स्पष्टीकरण के प्रति उसकी यह अतृप्य पिपासा ही थी जिसने अन्त मे उसको अपने इस मूल-भूत स्रोत उपनिषदों तक पहुँचा दिया। राजकुमार को कुरान से इसका सकेत प्राप्त हुआ, जो कहती है—"वास्तव मे यह सम्मानित कुरान एक पुस्तक में है जो गुप्त है। विशुद्ध आत्माओ के अतिरिक्त कोई इसका स्पर्श नही कर सकता है। यह स्वय भूमण्डल के स्वामी की ओर से प्रेरणा है" (सूरा ५६)। और इस उद्धरण पर टीका करते हुए दारा कहता है कि यह (गुप्त पुस्तक) न तो जबूर (गीति-संग्रह) हो सकती है, न तौरीत (मूसा की पुस्तकें), न इञ्जील (धर्मोपदेश), और न इसका अभिप्राय लौहे महफ़ूज से है जो ईश्वर के सिंहासन के नीचे सुरक्षित पट्टिका है—क्योकि शब्द तञ्जील का अर्थ है कोई वस्तु जो प्रेरित की गई हो और 'सुरक्षित पट्टिका' यह वस्तु नही है। उसके अनुसार कुरान की गुप्त पुस्तक उपनिषद् के अतिरिक्त और कोई वस्तु नही हो सकती है, क्योंकि निरुक्तानुसार उपनिषद् का अर्थ होता है—वह वस्तु जिसका उपदेश गुप्त अवस्था मे हो। ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुसार दारा ठीक कहता है, क्योकि उपर्युक्त तीनो धर्म-ग्रन्थो से उपनिषद् प्राचीन है। परन्तु कुरान के इस पद के दारा द्वारा किये गये अर्थ से कोई भी सहमत न होगा, और न उसकी इस धारणा से कि रसूल को, जिनके द्वारा कुरान प्रकट हुआ, उपनिषदो के अस्तित्व का पता था। कुछ भी हो—शान्ति और सामञ्जस्य के इस महान् प्रचारक के उद्देश्यानुकूल यह अर्थ था जिसका उसके साहित्यिक आध्यात्मिक प्रयासो मे अन्तिम उद्देश्य था—भारत के दोनो स्पष्टतया परस्पर विरोधी संस्कृतियों और धर्मो के बीच में स्नेहभाव की स्थापना।[1] अपने ग्रन्थ-परिचय

१—शायद एक स्थानीय जन-श्रुति के प्रमाण पर नेविल यह लिखता है कि दाराशिकोह ने अपने जीवन के कई वर्ष बनारस में व्यतीत किये जहाँ पर उसका नाम अब तक मुहल्ला दारानगर के नाम में सुरक्षित है। वह कहता है कि यहाँ पर ही दारा ने १५० पण्डितों की सहायता से उपनिषदों का फारसी अनुवाद तैयार किया। (बनारस ज़िला गजेटियर, पृ० १९६)। तदनुसार इस पुस्तक के पृ० १७ पर मैंने लिखा—"दारा यहाँ पर (इलाहाबाद) केवल एक

मे दारा कहता है कि उसने कुछ संन्यासियो और पण्डितो को एकत्र किया जो हिन्दु विद्या के केन्द्र वाराणसी के निवासी थे और जो वेदो और उपनिषदो के विद्वान थे और उनकी सहायता से छह मास मे उपनिषदो के अनुवाद को पूरा कर दिया। यह कार्य सोमवार, २६ रमजान, १०६७ हि० (२८ जून, १६५७ ई०) को दिल्ली मे उसके महल मञ्जिले निगमबोध मे सम्पादित हुआ। दारा के जीवन मे साहित्यिक कार्य के प्रति उसके अनुराग ने केवल एक बार उसकी पितृ-भक्ति को परास्त कर दिया, क्योकि जब १६५७ की ग्रीष्म ऋतु में उष्णता और रोग राजधानी में जन-सहार कर रहे थे और रुग्ण शाहजहाँ को नगर छोडकर वायु-परिवर्तन के लिए मुख्लिसपुर जाना पडा था, दारा ने इस कार्य को पूरा करने के लिए पीछे ठहर जाना ही पसन्द किया।

फारसी अनुवाद के गुण-दोष के विषय मे दारा कहता है कि 'उसने स्वय फारसी मे अनुवाद किया (उपनिषदो का जो तौहीद के सिद्धान्त का आगार-गञ्जेतौहीद—है), उसमे कोई वृद्धि व न्यूनता उसने नही की है, उसमे उसका

बार आया (१६५६-१६५७) और अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, ५० उपनिषदों के अनुवाद को १ जुलाई, १६५७ को बनारस में सम्पूर्ण किया।" अब इस समस्त वाक्य का निराकरण होना चाहिये क्योकि इलाहाबाद के श्री महेशप्रसाद ने एक हस्तलिखित ग्रन्थ की खोज करली है। इस ग्रन्थ में अनुवाद के पूर्ण होने के स्थान और उसकी तिथि का असदिग्ध वर्णन है। श्री महेशप्रसाद के हस्तलिखित ग्रन्थ में उद्धरण की यथार्थता की परीक्षा लेने के लिये मैने पादशाहनामा में दी हुई दारा की गतिविधि का अनुसरण किया है। यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि १६५७ में दारा न तो वाराणसी में, और न इलाहाबाद में हो सकता था। दारा सदैव शाहजहाँ के साथ उसकी यात्राओं में उपस्थित रहता था, परन्तु इस अवसर पर वह अपने रुग्ण पिता के साथ न गया था, जब शाहजहाँ को दिल्ली छोड्कर मुख्लिसपुर में जाना पडा था। कोई अत्यावश्यक कार्य ही दारा की इस अनुपस्थिति का कारण हो सकता है और यह कारण शायद उपनिषदों के प्रति उसकी व्यस्तता थी। पंचाग के अनुसार २६ रमजान, १०६७ को रविवार था, परन्तु इसका कोई महत्व नही है क्योंकि एक दिन का अन्तर हमको सदैव मिलता ही है। श्री महेशप्रसाद के लेख—"राजकुमार दाराशिकोह द्वारा उपनिषदों का अप्रकाशित अनुवाद"—(डा० मोदी स्मारक ग्रन्थ, बम्बई १९३०, पृ० ६२२-६३८ में प्रकाशित)—का मैंने विस्तारपूर्वक उपयोग किया है। अनुवाद के पाठ्य के अधिक निकट अध्ययन से श्री महेशप्रसाद की कुछ अशुद्धियो को शुद्ध करने में मैं सफल हो गया हूँ। इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में इस पर विचार होगा जहां पर मैने ग्रन्थ-परिचय का पूर्ण पाठ्य और शब्द-अर्थ सूची मुद्रित की है और जहां पर छान्दोग्य, बृहदारण्यक, केन और छुटिक उपनिषदों के अनुवादों से उद्धरण भी दिये हुए है (फारसी पाठ्य-पृ० १४१-१७६)। उदाहरण के रूप में उनके साथ उनके अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिये गये है।

कोई स्वार्थी उद्देश्य नही है, उस मे वाक्य के स्थान पर वाक्य और शब्द के स्थान पर शब्द दिया गया है[१]।

अपने ग्रथ के गुण-दोष के विषय मे जो कुछ दारा कहता है, उसकी सत्यता का विश्वास पाठक को तुरन्त हो जायेगा जब वह प्रकाशित सस्कृत पाठ के किसी स्थल के किसी फारसी वाक्य समूह से तुलना करेगा। दारा पर अधिक-से-अधिक व्यतिक्रम का यह दोष आरोपित किया जा सकता है कि कही-कही पर उपनिषदो के मूलपाठ के गूढ वाक्यो का सीधा अनुवाद देने के स्थान पर उसने उन स्थलो पर शकर के भाष्य का फारसी मे अनुवाद कर दिया है[२]। सन्देह रहित शुद्ध अर्थ के लिए उसने ऐसा किया है। कुछ स्थलो के सुविधाजनक अल्प परिवर्तनो को देखना भी रुचिकर होगा। उसने ऐसा इस कारण से किया है कि मुसलमानो को वे स्थल सुगम हो जाये, जिनके लिये विशेषकर यह अनुवाद किया गया था। उन-साधारण बुद्धि के पुरुषो के लिये, जिनको हिन्दु पुराणो और दर्शनो से कोई परिचय न था, उसने यह विशेष कष्ट किया कि उनको भी सरलता से यह ग्रथ बोधगम्य हो जाये। हमको यह अवश्य कहना है कि इस प्रयास मे दारा को उत्कृष्ट सफलता प्राप्त हुई है। दाराशिकोह के सिर्रे-अकबर मे अच्छे अनुवाद के समस्त गुण ही विद्यमान नही है, इसमे एक मूल ग्रन्थ की मनोरमता और सघनता भी है।

मध्यकालीन भारत मे न केवल तुलनात्मक धर्म का, परन्तु तुलनात्मक पुराण का भी, दारा सर्व-प्रथम गम्भीर विद्वान् था। हिन्दु विचारो, हिन्दु देवताओ और हिन्दु पुराणो मे आये हुए प्राणियो की चकरा देने वाली अनेकरूपता को मुस्लिम वस्त्रो में सजा कर उपस्थित करने के लिये उनका इस्लामी नामकरण उसके ग्रन्थ का सर्वापेक्षा स्थायी भाग है। उपनिषदो के सर्वोपरि प्रामाणिक अग्रेजी अनुवाद से अपनी जातीय भाषाओ मे उनके अनुवाद की अपेक्षा ईरानी ही क्या प्रत्येक देश का मुसलमान, शायद चीनी मुसलमानो को छोडकर, दारा के सिर्रे-अकबर

१—फारसी पाठ्य, पृ० १४४।

२—उदाहरणार्थ—बृहदारण्यक उपनिषद् में चार प्रकार के घोडों का वर्णन है—हय, वाजि, अर्वा तथा अश्व, जो क्रमश देवो, गन्धर्वों, असुरों और मनुष्यों की सवारी के लिये है। दारा इस प्रकार इस स्थल का अनुवाद करता है—"और अरबी घोडा, जो अपने तीव्र वेग के कारण हय कहा जाता है, फरिश्तों (देवों) को अपने यथेष्ट स्थान पर ले जाता है। वाजि पर जो इराकी जाति का घोडा है, गन्धर्व सवारी करते है, अर्वा पर जो कच्छी जाति का घोडा है, असुर सवार होते है, और अश्व पर जो तुर्की जाति का घोडा है, मनुष्य सवार होते है।" वास्तविक अर्थ पर विना कोई कुप्रभाव डाले दारा ने बहुत उपयुक्तता से घोडों की चार जातियों का परिचय दे दिया है। यद्यपि मूल पाठ में या इस पर शकर के भाष्य में कोई इसका प्रमाण नही है।

का उसकी मूल फारसी मे या अपनी भाषा मे उसके अनुवाद का अधिक उत्साह से स्वागत करेगा। महादेव की कितनी ही व्याख्या क्यो न की जाये, इससे उस का बोध मुसलमान को इतना स्पष्ट न होगा जितना इस देवता का इसराफील से सामञ्जस्य करने पर होगा जो दारा ने किया है[1]। मुस्लिम विश्वास के अनुसार यह फरिश्ता (देव) ईश्वर के आसन के नीचे खड़ा रहता है, उसके हाथ मे एक शृङ्गाकार तुरही रहती है, और वह इसको कयामते-कुबरा (महाप्रलय) के आगमन की सूचना देने के लिये बजायेगा जब ऊपर के सातो लोक और नीचे के सातो लोक मिलकर एक हो जायेगे और आदिभूत कुहरे मे लीन हो जायेंगे।

विभाग ५—दाराशिकोह के छोटे ग्रन्थ

दाराशिकोह अश्रान्त प्रचारक था तथा एक प्रकार के धर्मोत्साह की प्रेरणा से अपने १५ वर्ष से कुछ ही अधिक के साहित्यिक जीवन मे उसने सूफीवाद के विभिन्न अगो पर अनेक पुस्तको और पुस्तिकाओ का निर्माण किया। परन्तु हमको कही पर दाराशिकोह के ग्रन्थो की पूर्ण सूची प्राप्त नही होती है, यद्यपि विकीर्ण वाक्यो मे अपने द्वारा लिखित 'अनेक पुस्तिकाओ' का वर्णन वह स्वयं करता है, परन्तु उसने इन पुस्तको के नाम कही पर नही दिये है। यह हो सकता है कि भविष्य मे दारा की कुछ और पुस्तके प्रकाश मे आजाये।

दाराशिकोह की छोटी पुस्तको मे 'हसनतुल आरिफ़ीन' (१०६२ हि०—१६५२ ई० मे सम्पूर्ण) दारा के धार्मिक विचारो और आध्यात्मिक उन्नति के विकास मे एक बहुत ही महत्वशाली अवस्था को सूचित करती है। तौहीद के सिद्धान्त के आदि स्रोत की खोज मे इस्लाम के क्षेत्र के बाहर यद्यपि दारा अब तक न गया था, उसके विचार और शरीयत (इस्लामी स्मृति) के प्रति उसकी वृत्ति इस समय मन्सूर बिन हल्लाज की ओर परिवर्तित हो रहे थे। अपने सर्वेश्वरवादी विचारो की सार्वजनिक आलोचना के उत्तर मे दारा ने हसनतुलआरिफीन को लिखा था। ये विचार मुस्लिम शास्त्रीय सम्प्रदाय के अनुसार सर्वथा अन-इस्लामी थे।

इस पुस्तक के परिचय मे दारा कहता है—"कभी-कभी अति हर्ष और उत्साह की अवस्था मे मै ऐसे शब्द बोल जाता हूँ जिनकी अनुमति केवल उच्चतम सत्य और ज्ञान से मिलती है। कुछ नीच तथा दुष्ट व्यक्ति तथा निस्सार भक्त जन, अपनी सकीर्णता के कारण, मेरी निन्दा करते है और मुझ पर अधर्म और नास्तिकता (इन्कार) का दोष आरोपित करते है। यह इस कारण कि मुझे विचार हुआ कि एकत्व मे परम-विश्वासियो के, सन्तो के, और उन सज्जनो

१—फ़ारसी पाठ्य, पृ० १४७।

के जिन्होने तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, शब्दो मे समन्वय स्थापित कर दूँ''''कि यह उन लोगो के लिये (उनको चुप कर देने के लिये) समाधान-कारक युक्ति बन जायें जो ईसा के वेश मे दज्जाल है, जो ऊपर से मूसा के गुणो से सम्पन्न फैरोग्रा है, जो अपने को मुहम्मद का शिष्य कहने वाले अबुजहल हैं।[१]

अपने आध्यात्मिक जीवन के आरम्भ मे ही महान् सन्त मियाँ मीर और उसकी मण्डली से सगति के कारण दारा को यह विश्वास हो गया कि इस्लाम की साधारण व्याख्या से उसकी आध्यात्मिक व्याख्या वास्तव में उत्तम है। और इसी प्रकार 'हम उ अस्त' (सब कुछ वह ही है.) का सिद्धान्त 'हम अज़ उ अस्त' (सब कुछ उससे ही है) के सिद्धान्त से उत्तम है। दूसरे सूफियो के व्यवहार से भिन्न वह सूफीवाद पर अपने द्वारा लिखित अनेक पुस्तको और पुस्तिकाओ की सहायता से अपने विचारो का प्रचार करने लगा। प्रथम वह कुछ सावधानता और नियन्त्रण से लिखता और बोलता था—उदाहरणार्थ अपनी प्रथम पुस्तक—सफीनतुल-अवलिया—मे दारा कहता है—"२७ रमजान, १०४६ हि० की रात्रि मे यह पुस्तक सम्पूर्ण हुई जब लेखक की आयु २५ वर्ष की थी · मैंने महान् और गूढ सत्यो का उल्लेख नही किया है जो प्राचीन ज्ञानी लोग कह गये है और जिनको साधारण जनता नही समझ सकती है। जब शेख अबुसईदखर्राज मिस्र देश पहुँचा, कुछ लोगो ने उससे कहा—'आप पवित्र आसन से क्यो भाषण नही देते है। शेख ने उत्तर दिया—'अदीक्षित जनता के सम्मुख सत्य पर भाषण लगभग निन्दा होता है।"[२] परन्तु १३ वर्षों मे (१६३९-१६५२ ई०) जो उसकी प्रथम पुस्तक के प्रकाशन से अब तक बीत चुके थे, दारा अधिक उन्नत मतावलम्बी कुछ सूफियो से मिल चुका था और उनके अतिवादी विचारो को अपना चुका था—उदाहरणार्थ—मुल्ला शाह, मीर सुलेमान मिस्री, शाह दिलरुबा।[३] वह विश्वास जो उसके हृदय मे इस समय व्याप्त हो रहा था इतना प्रबल था कि सावधानता और परिणाम के भय की प्रत्येक बाधा को हटाकर वह बाहर प्रकट हो गया। इसी कारण से शायद शास्त्रीय सम्प्रदाय के एक मुसलमान समालोचक ने कहा है कि दाराशिकोह ने इस पुस्तक को लिखकर अपने आपको धोखा दिया है, और अपनी लेखनी द्वारा आत्म-रक्षा के प्रयत्न मे उसका आचरण इतना वीरतामय और सम्मानमय

१—हसनतुल् आरिफीन (मुज्तबई प्रेस, दिल्ली), डा० युसुफ हुसैन की पुस्तक ल इन्दे मिस्टीक अ मोयें एज (पृ० १७९-१८०) से उद्धरित।

२—देखो सफीनतुल-अवलिया का खातिमा (अन्त), पृ० २१६, (नवलकिशोर प्रेस)।

३—हसनतुल आरिफीन, पृ० २६-३६ (मुज्तबई प्रेस, दिल्ली)।

नही रहा है जितना कि मन्सूर बिन हल्लाज का, शहाबउद्दीन सोहरावर्दी का या सरमद का रहा जिन्होने अपने विश्वास के कारण मृत्यु का आलिंगन कर लिया, परन्तु आत्मरक्षा मे अपने ओष्ठ भी न खोले। एक दूसरे स्थल पर वही समालोचक दारा के 'हसनतुल आरिफीन' पर अपनी समालोचना इस प्रकार संक्षेप मे देता है—इस पुस्तक को पढने का प्रबल आग्रह वह उन लोगो से करेगा जो सूफीवाद की विकृति (अक्षरशः विनाश) का अध्ययन करना चाहते है।[1]

दारा के सर्वेश्वरवाद की अधिक वाक्य-पटुता से व्यञ्जना उसकी पुस्तक 'तरीकतुल-हकीकत मे हुई है[2]। दारा के जन्म के कई शताब्दी पहले से ईरान के सूफी कवियो का यह चित्ताकर्षक विषय बना हुआ था। ऐसे ही भाव से दारा लिखता है—

"तू काबा मे है और तू सोमनाथ के मन्दिर मे है।

तू चैत्यालय मे है और तू सराय मे है।

तूही एक ही समय पर प्रकाश भी है और पतिंगा भी है।

तूही हाला और प्याला, तूही ऋषि और मूर्ख, मित्र और अपरिचित व्यक्ति भी है।"

× × × ×

"तू ही गुलाब और उसकी प्रेम करने वाली बुलबुल है।

तू ही स्वय अपने सौन्दर्य के प्रकाश के पास का पतिंगा है।"

ऊपर वर्णन किये हुए ग्रन्थो के अतिरिक्त दारा ने योगवासिष्ठ रामायण के एक सक्षिप्त सस्करण के फारसी अनुवाद की एक रोचक भूमिका भी लिखी। १६५६ ई० में 'तर्जुमे (अनुवाद) योगवासिष्ठ' नामक यह ग्रन्थ उसी की देख-रेख में तैयार किया गया था। वह इस प्रकार है—"जब मैंने इस पुस्तक (योगवासिष्ठ) के फारसी अनुवाद को पढा, जिसका श्रेय शेख सूफी को दिया जाता है, मैंने शान्त आकृति के दो भव्य पुरुषो को स्वप्न मे देखा। उनमे एक दूसरे की अपेक्षा कुछ ऊँचे स्थान पर खडा हुआ था। बिना अपनी इच्छा के मैं उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया गया · और वसिष्ठ ने बडे प्रेम और कृपा से अपना हाथ मेरी पीठ पर रखा और कहा—'राम! यह व्यक्ति ज्ञान का उत्सुक अन्वेषक है और सार की सच्ची खोज मे आपका साथी (अर्थात् भाई) है। उसका आलिगन करो।' उत्साह और प्रेम से राम ने मेरा आलिंगन किया। तब वसिष्ठ

१—सैयद नजीब अशरफ नदवी का रुक्काते आलमगीर का उर्दू मे परिचय; पृ० ३६१-३६३; पाद-टिप्पणी पृ० ३६२ (दार उल् मुसन्नफीन, आजमगढ—उ० प्र० द्वारा प्रकाशित)।

२—देखो—'ल इन्दे मिस्टीक ओ मोयें एज'—पृ० १७८।

ने रामचन्द्र को कुछ मिष्टान्न दिया जिसको उन्होंने अपने हाथ से मुझको खिलाया। इस स्वप्न को देखकर इस ग्रन्थ को अनुवाद कराने की मेरी इच्छा पहले से बहुत अधिक हो गई और मेरे अनुचारी वर्ग मे से एक व्यक्ति को यह अनुवाद करने के लिये नियुक्त किया गया। हिन्दुस्तान के पण्डितो की देख-रेख मे यह अनुवाद तैयार किया गया है।" 'मिन्हाज-उस्-सलीकीन' नामक मौल्वी अबुलहसन कृत 'तर्जुमे योगवासिष्ठ' का उर्दू अनुवाद उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध और जन-प्रिय है।

अनुवादार्थ संस्कृत ग्रन्थो के निर्वाचन से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि दारा के दार्शनिक विचार वेग से अद्वैत-वेदान्तवाद की ओर परिवर्तित हो रहे थे। भगवद्गीता, योगवासिष्ठ तथा प्रबोध-चन्द्रोदय इस कार्य के लिये चुने गये थे। १०६५ ई० के लगभग कृष्ण मिश्र नामक एक सन्यासी द्वारा लिखित यह अन्तिम ग्रन्थ प्रबोध-चन्द्रोदय अद्भुत रूप से रोचक नाटक है। ऐसा माना जाता है कि हिन्दुदर्शन की विभिन्न पद्धतियो की आन्तरिक एकता को प्रकट करने के लिये संस्कृत साहित्य मे यह सर्वप्रथम प्रयास है। "संसार के प्रलोभन और माया से मानव की आत्मा के मुक्त होने का यह नाटक (प्रबोध-चन्द्रोदय) एक दृष्टान्त है। विश्व-भक्ति विवेक को प्रेरणा देती है तथा उपनिषदो, श्रद्धा, सद्बुद्धि और उनके अनेक मित्रो की सहायता से माया, मोह और लोभ को उनके अनेक अनुचरो सहित पूर्णतया पराजित कर देती है। ज्ञान का उदय स्वभावतः प्रबोध होने पर हो जाता है और मानुषी आत्मा ईश्वर से अपने पूर्ण एकत्व का साक्षात्कार कर लेती है, कर्म का त्याग कर देती है और जीवन के एकमात्र सन्मार्ग के रूप मे अनासक्ति प्रधान संन्यास-मार्ग का अवलम्बन ग्रहण कर लेती है।[१]" ईश्वर से मानुषी आत्मा के पूर्ण एकत्व के इस साक्षात्कार का परिणाम दारा की खुद परस्ती (अपनी ही आत्मा की, जो विश्वात्मा है, उपासना) तथा उसके धर्म और धार्मिक जीवन के विकास की अन्तिम अवस्था अनासक्ति-प्रधान संन्यास-मार्ग की भाँति कुछ-कुछ थी। यह मार्ग साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का और धार्मिक कर्मकाण्ड का उनको अनावश्यक समझकर त्याग कर देता है।

१—फ़ाकुहर का—'भारत के धार्मिक साहित्य की रूप-रेखा' पृ० २२१।

अध्याय ७

विष्कंभक

(१६५४-१६५७)

दो स्पष्ट असफलताओ के बीच मे—अर्थात् कन्धार के असफल अवरोध और विनाशक उत्तराधिकार युद्ध के बीच मे तीन घटनापूर्ण वर्ष दाराशिकोह के जीवन मे एक सुखद विष्कभक की भाँति अवश्य है। इस समय मे उसने अपनी महत्तम सफलताये प्राप्त की—साहित्यिक, राजनैतिक तथा कूटनैतिक, इस समय मे राजमुकुट उसके मस्तक पर लगभग विराजमान हो गया था, उसका स्वर्ण का सिंहासन शाहजहाँ के तख्ते ताऊस (मयूर सिंहासन) के समीप शोभायमान था। ऐसा प्रतीत होता था कि शाहजहाँ के साथ वह हिन्दुस्तान का युक्त शासक है। वरन् ये तीन वर्ष जिनमें औरगजेब दूसरी बार दक्षिण का सूबेदार रहा, उद्विग्न और धोखे की शान्ति के वर्ष थे—वे उत्तराधिकार-युद्ध के उपक्रम थे। सुदूर राजनैतिक क्षितिज पर भावी सघर्ष के बादल एकत्र हो रहे थे जिनके कारण प्रत्येक व्यक्ति शाहजहाँ के साम्राज्य के भविष्य के सम्बन्ध मे चिन्ता करने लगा। यद्यपि इस विपत्ति का ज्ञान दारा को था, उसने कभी अपने आशा-वाद का त्याग नही किया और दुर्दिन का विचार स्थगित करके वह अपने दार्शनिक चिन्तन मे कभी तो ऋषि वसिष्ठ के सम्मुख घूम जाता और उनसे वार्तालाप करता, और कभी पवित्र कुरान मे सूचित गुप्त पुस्तक के उत्साही अन्वेषण में उपनिषदो के जागल प्रदेश को आर-पार करता। उसके मित्र तथा शुभचिन्तक कभी-कभी उसकी राजनैतिक निद्रा को भग करके उसको जाग्रत करते, उसके भाइयो के शत्रुवत् उपायो के उसको नम्र संकेत देते जो सतत् रूप से उसके चारो ओर कूटनैतिक जाल बिछा रहे थे। इस समय मे दारा शिकोह के उन कार्यो का हम सक्षेपतः पर्यवेक्षण करेगे जिनका सम्बन्ध उत्तराधिकार-युद्ध से है।

विभाग १—सुलेमानशिकोह के विवाह

१६४६ ई० मे ही जब सुलेमानशिकोह ६ वर्ष का बालक था दारा मिर्जा राजा जयसिह से इस विषय पर पत्र-व्यवहार कर रहा था कि मिर्जा राजा की बहन से उत्पन्न राव अमरसिंह राठौड की पुत्री और उसके (दारा के) पुत्र मे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाये। इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का मुख्य उद्देश्य शुद्ध राजनैतिक था जैसा कि मिर्जा राजा को दारा के निम्नाङ्कित पत्र

से हमको मालूम होता है—"चूँकि आपकी बहन से (राव अमरसिंह राठौड की) यह कन्या[1] उत्पन्न हुई है, यह अच्छा ही होगा यदि उसकी सगाई वहाँ पर न की जाये। यदि यह कन्या कोई और कन्या (आपकी बहन की कन्या से भिन्न) होती, तो आप जहाँ चाहते उसका विवाह कर देते। मेरी इच्छा है कि आप और आपके नातेदार मेरे पुत्र सुलेमानशिकोह के इस विवाह सम्बन्ध से जुड जाएँ। मैने आपको यह बात प्रकट करदी है क्योकि मै आपको अपना सर्वोपरि सच्चा हितैषी और विशिष्ट मित्र मानता हूँ और आपको अपने उच्चतम अनुग्रह का पात्र समझता हूँ।"

यह कहकर कि उसकी दृष्टि मे इस कन्या का महत्तम आदर-हेतु यह था कि वह मिर्जा राजा की नातेदार थी, दारा ने सच्चाई से अपने मन की बात प्रकट करदी क्योकि वह यह नही देखना चाहता था कि इस कन्या का वैवाहिक सम्बन्ध किसी अन्य व्यक्ति से—स्पष्टतया शाहजहाँ के किसी और पौत्र से—स्थापित हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रस्ताव का शीघ्र ही यह फल हुआ कि मिर्जा राजा की भाजी और सुलेमानशिकोह की सगाई हो गई। विवाह, जो ८ वर्ष के लिये स्थगित कर दिया गया था, वास्तव मे १६५४ ई० मे हुआ। ऐसा मालूम होता है कि आवश्यक राजनैतिक विचारो के कारण इस विवाह का अनुष्ठान अकस्मात शीघ्रता से कर दिया गया। शक्तिशाली मिर्जा राजा के साथ यह पुनर्मिलन का प्रयास था जिसके साथ कन्धार के तृतीय अवरोध मे उसका भयंकर मनोमालिन्य हो गया था जो लगभग सम्बन्ध-विच्छेद तक पहुँच गया था। इसके अतिरिक्त यह समाचार प्रकट हो गया कि दिसम्बर १६५२ मे आगरा के स्थान पर औरगजेब और शुजा में परस्पर गुप्त पारिवारिक सन्धि हो गई है जब कि शुजा की पुत्री गुलरुखबानू की सगाई औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मुहम्मद से हो गई थी। अपने भाइयो के शत्रुवत् आशय के विरुद्ध चाल के रूप मे दारा ने कन्धार से वापसी के तुरन्त पश्चात् सुलेमान के विवाहानुष्ठान की तैयारी कर दी।

४ अप्रेल (१६५४ ई०) को पूर्णतया शरीयत के आदेशानुसार विवाह

१—शायद यह इन्द्रकुमारी थी जिसका उल्लेख अख्बारात में पृ० २०-२४ पर सुलेमान-शिकोह की विधवा के रूप में है।

२—दारा का पत्र जयसिंह को औरंगाबाद (?) में २४ सफर, १०५६ हि० को प्राप्त हुआ—देखो फारसी पाठ्य पृ० १२२। किसी और स्थान के बदले औरंगाबाद भूल से लिखा हुआ है, क्योंकि उस वर्ष १०५६ हि० (१६४६ ई०) में मिर्जा राजा मुराद के अधीन बलख में युद्ध कर रहा था। (डा० बेनीप्रसाद कृत 'शाहजहाँ का इतिहास', पृ० १९५)।

सम्पादित हुआ।[1] १५ दिन बाद (१८ अप्रेल, १६५४) अपने अनुचारी वर्ग के साथ सम्राट् आशीर्वाद देने दारा के महल को गया और यथापूर्व वैभव तथा आमोद-प्रमोद के साथ सस्कार समाप्त हुआ।

राव अमरसिह की पुत्री से विवाह के दो वर्ष बाद सुलेमान शिकोह का दूसरा विवाह जाफरखॉ के छोटे भाई की पुत्री से हुआ। मालूम होता है कि इसका आरम्भ स्वयं शाहजहाँ की ओर से हुआ। यह विवाह कुछ अंश मे जाकर जाफरखॉ के परिवार के प्रति अभिनन्दन था (जिसने मुमताजमहल की एक छोटी बहन से विवाह किया था) और कुछ अंश मे साधारण मुस्लिम सामन्त वर्ग की भावनाओ के प्रति आदरभाव था। कन्या[2] पटना से लाई गई और २६ अक्तूबर, १६५६ ई० की रात्रि मे विवाह हो गया।

विभाग २—दाराशिकोह और महाराणा राजसिह सिसौदिया

राजसिह के पिता मेवाड के महाराणा जगत्सिंह ने चित्तौड के गढ की मरम्मत एक बडे पैमाने पर आरम्भ करदी थी। सम्राट् जहाँगीर और महाराणा अमरसिंह के वर्तमान सन्धिपत्र की एक विशिष्ट प्रतिज्ञा का इससे उल्लघन होता था। उसके पुत्र राजसिंह ने अधिक उत्साह से उद्धार के कार्य को अग्रसर किया। राजसिंह १० अक्तूबर, १६५२ को मेवाड की गद्दी पर बैठा था। साम्राज्य की सीमा तक अपनी सेना सहित प्रयाण द्वारा नवीन महाराणा ने अशोभनीय प्रदर्शन किया था और दबाव पडने पर बहुत विलम्ब से भूपत[3] (महाराणा प्रतापसिह के पुत्र साहस का पुत्र) के अधीन कन्धार के तृतीत अवरोध मे उसने अपना एक सैन्य-दल भेजा था। इतने पर भी सम्राट् ने कन्धार के विषय की समाप्ति तक मेवाड के शासको के इन राजभक्ति-विरोधी कार्यो को सहन कर लिया था।

२१ मई, १६५४ को सम्राट् ने अपने दण्डभृत् अब्दलबेग को महाराणा के पास भेजा। उसके साथ महाराणा के लिये पुरस्कार रूप मे दो घोड़े थे और एक फरमान था जिसमे उसको आदेश था कि औरगजेब के अधीन दक्षिण मे सेवाकार्य पर वह तुरन्त अपना सेवा-दल भेज दे। शायद अब्दलबेग का वास्तव मे यह कार्य था कि वह राणा की सैनिक शक्ति का और चित्तौड की मरम्मत के विस्तार

१—सुलेमान का विवाह—वारिस, ८६ अ, आशीर्वादार्थ सम्राट् का अभ्यागमन—वही, ८७ अ०।

२—अख्बारात में उल्लेख है कि सुलेमानशिकोह के एक और पत्नी थी—मुनव्वरबाई।

३—भूपत सेवा से वापस आता है, खिलअत पाता है और साथ में २१ मई, १६५४ को घर वापस होने की आज्ञा भी उसको मिलती है—वारिस, ८७ अ०।

का गुप्त रूप से पता लगा ले। यह वृत्तान्त भेजा गया कि चित्तौड के प्रायः समस्त पुराने फाटको का उद्धार हो गया है, कुछ नये फाटक भी बना लिये गये है और दुर्गम स्थलो पर भी प्राकारो का निर्माण हो रहा है। वजीर सादुल्ला खॉ को ३० हजार सैनिको के एक अभियानक दल का नेता नियुक्त किया गया और ४ सितम्बर, १६५४ को उसको आज्ञा मिली कि मेवाड पर आक्रमण करे तथा चित्तौड की गढ-पक्तियो को नष्ट कर दे। २० दिन पीछे दारा को अपने साथ लेकर सम्राट् ने आमेर के मार्ग से अजमेर के लिये प्रस्थान कर दिया। उसका स्पष्ट उद्देश्य था शेख मुईनुद्दीन चिश्ती[1] की समाधि का दर्शन। सम्राट् के प्रस्थान के दिन का लिखा हुआ मिर्जा राजा जयसिंह को दारा का एक पत्र महाराणा की अवश्यम्भावी दशा के प्रति राजकुमार की गम्भीर चिन्ता को प्रकट करता है। "आज सम्राट् अजमेर के लिये प्रस्थान कर रहे है और मै आपके घर के पास होकर निकलूँगा और आपका अतिथि हूँगा। चूँकि एक अलग सेना राणा के प्रदेश के विरुद्ध भेज दी गई है और चूँकि मैने कृपा और उदारता के कारण सदैव राणा के हितो को अपने ध्यान मे रखा है, मेरी इच्छा हे कि उसकी निष्ठा और भक्ति के विषय मे सत्य को सम्राट् के सम्मुख प्रकट कर दूँ कि वह और उसका प्रदेश विजयी सेना के आघात (आसिब) से बच जाये"[2]। महाराणा राजसिंह ने चित्तौड मे एक सेना एकत्र कर ली थी, परन्तु ठीक समय पर उसकी बुद्धि ने उस पर अपना प्रभाव डाला और यह देखकर कि क्षमा की याचना करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही है, उसने दारा के पास एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा।

४ अक्तूबर, १६५४ को राव रामचन्द्र चौहान, राघवदास झाला, सावलदास राठौड तथा पुरोहित गरीबदास का यह शिष्ट-मण्डल राजकुमार से खलीलपुर के पडाव पर मिला। दारा ने बहुत परिश्रम किया कि उस पर ऐसा प्रभाव डाले कि वह दयार्द्र हो जाये और अन्त मे शाहजहॉ ने दारा के विश्वस्त सेवक चन्द्रभान ब्राह्मण को आज्ञा दी कि इस झगडे को शान्त करने के लिये वह उदयपुर जाये। चन्द्रभान के आगमन के पूर्व ही महाराणा ने मधुसूदन भट्ट और रार्यसिंह झाला को शान्ति-प्रस्ताव सहित सादुल्लाखॉ के पास भेज दिया था। सादुल्लाखॉ राणा को युद्ध के निमित्त विवश करने पर तुला हुआ था, वह राणा के प्रदेश को साम्राज्य के अन्तर्गत करना चाहता था। अतः स्वभावतः उसने दारा के इस हस्त-क्षेप का विरोध किया। शाही दरबार की सख्त शर्तो को स्वीकार करने के अति-

---

१—चित्तौड अभियान—वारिस, ९० ब ; सम्राट का प्रस्थान—वही, ९१ ब०।

२—जयपुर-पत्र, देखो फ़ारसी पाठ्य पृ० १२६।

रिक्त राणा के पास और कोई उपाय न था—अर्थात् पुर, मण्डल[1] आदि परगनों का प्रदान, और वह अपने पुत्र को दारा के दीवान शेख अब्दुलकरीम के साथ शाही दरबार को भेजने के प्रति सहमत हो गया। अतः २ नवम्बर को शेख अब्दुलकरीम शिशोदिया राजकुमार को लाने के लिये उदयपुर को चल पडा। ४ नवम्बर को सम्राट् ने रूपसिंह राठौड को माण्डलगढ दे दिया और उसी मास की २६ तारीख को उसने विट्ठलदास गौड के पुत्र अर्जुन को आज्ञा दी कि बेदनोर पर सक्रिय अधिकार करे जो इसके पहले राणा के अधिकार मे था[2]। २१ नवम्बर, १६५४ को राणा का ज्येष्ठ पुत्र, जो ७ वा ८ वर्ष का बालक था शाही शिविर मे पहुंच गया और सम्राट् को मुजरा किया। चूँकि राणा ने अभी तक राजकुमार का नामकरण न किया था, सम्राट् ने उसका नाम सोभागसिह रख दिया जो शुभ और प्राचीन नाम था, परन्तु उसका पिता इस नाम से प्रसन्न न हुआ और उसने इस नाम को बदल कर उसका नाम सुल्तानसिंह रख दिया। वजीर को आज्ञा हुई थी कि चित्तौड को खाली करदे क्योकि 'युवराज की मध्यस्थता के कारण राणा का अपराध क्षमा कर दिया गया था[3]।' चित्तौड के प्राकारो और रक्षा-पङ्क्तियो को १५ दिनों मे नष्ट करके, और राणा के अधिकृत प्रदेश की जो कुछ हानि वह कर सकता था, उसको करके सादुल्लाखाँ २२ नवम्बर को शाही शिविर मे वापस आ गया। सिसोदिया राजकुमार को स्वय उसके लिये और उसके पिता के लिये उपहार देकर और उसको जाने की आज्ञा देकर सम्राट् १७ दिसम्बर १६५४ को आगरा वापस आगया।

इस प्रकार महाराणा राजसिंह का प्रकरण समात हो गया। वास्तव में दाराशिकोह के कष्टसाध्य प्रयासो द्वारा वह महान् विपत्ति से बच गया। मिर्जा राजा जयसिंह को एक पत्र मे राजकुमार लिखता है—"विशेष स्नेह और प्रेम जो मुझको राजपूत जाति से है, वह प्रकट हो गया है। राणा का प्रदेश और सम्मान यथा पूर्व सम्पूर्ण है। यह सम्पूर्ण राजपूत जाति को ज्ञात हो जाना चाहिये कि मै उनका कितना हितैषी हूँ"[4]। परन्तु दारा की राजनैतिक कल्पना स्वय सम्राट् के कार्य से पर्यस्त हो गई जिसने महाराणा को उसके विद्रोह का दण्ड देने के लिये उसके कुछ परगनो पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। साधारण मनुष्य की भाँति मेवाड के शासक ने उसकी ओर कम ध्यान दिया जो सुरक्षित था और

१—अधिक वृत्तान्त के लिये देखो–ओझा कृत, राजपूताना का इतिहास—पृ० ८४५ :

२—वारिस, ८८ ब० ।

३—वारिस, ८८ ब० ।

४—देखो फारसी पाठ्य पृ० १२१-१२२। मुद्रित पाठ्य में वर्ष १०५५ अशुद्ध है। शुद्ध वर्ष है १०६४ हि०।

उसकी ओर अधिक ध्यान दिया जो हाथ से निकल गया था, यद्यपि एक मित्र और हितैषी ने यथाशक्ति अपना प्रयास किया था। अपने को भयकर विपत्ति से मुक्त करने के निमित्त महाराणा ने दारा की उदार भावना से अपना स्वार्थ सिद्ध किया था और अब वह बिना उचित, अनुचित का विचार किए हुए उसके शत्रु औरगजेब का घनिष्ट मित्र बन गया। मेवाड से शाही फौज के वापस होने के तुरन्त पश्चात् उसने उदयकरण चौहान तथा शकर भट्ट को दक्षिण की ओर औरगजेब के पास एक गुप्त कूटनैतिक कार्य पर भेज दिया। बदले मे औरगजेब ने अपने दो विश्वस्त प्रतिनिधियो—इन्द्रभट्ट तथा फिदाईख्वाजा को उदयपुर भेजा। वे महाराणा के लिये उपहार मे एक खिलअत, एक हीरे की अँगूठी और एक हाथी लाये[१]। दारा के प्रति शिशोदिया सामन्त की वृत्ति से ससार को प्रकट हो गया कि भावनाओ पर आशा बाँधना निरर्थक है क्योकि राजनीति मे सर्वोपरि भावुक जाति भी उनको वह महत्त्व नही देती है जो अपने स्वार्थ को देती है।

विभाग ३—दाराशिकोह को शाह-बुलन्द-इकबाल की उपाधि मिलती है (३ फ़रवरी, १६५५ ई०)

राजपूताना से दिल्ली को अपने प्रत्यागमन पर सम्राट् ने अपनी ६६ वी चान्द्र जन्म-गाँठ पर (शनिवार ३ फरवरी, १६५५) युवराज को लगभग राजकीय सम्मान सर्वसाधारण के सम्मुख भेट कर दिया। दरबार के समय से पहिले राजकीय वस्त्रागार से ढाई लाख रुपये की लागत का हीरो और मोतियो से चमकता हुआ एक सम्मान वस्त्र सम्राट् ने दारा के महल को भेजा। इस वस्त्र को धारण कर युवराज तुलादान के समय पर उपस्थित हुआ। उसके समाप्त होने पर सम्राट् ने अपने सिर से साढे चार लाख रु० की लागत का एक सरबन्द (पछेवडी-पगडी को कसने के लिये) जिसमे गुलाबी रग का एक माणिक्य जडा हुआ था, और दो सच्चे मोतियो की लडियाँ उतारी और अपने ही हाथ से उनको राजकुमार के सिर पर बाँध दिया। इस सम्मान-वस्त्र और सरबन्द (पछेवडी) के अतिरिक्त ३० लाख नकद रुपये का एक पुरस्कार भी उसको दिया गया। सम्राट् ने राजकुमार को एक नवीन उपाधि शाह बुलन्द इक्बाल से सम्बोधन किया और उसको एक स्वर्ण के सिहासन पर बैठने की आज्ञा दी जो राजकीय सिंहासन के निकट ही लगा हुआ था। पहले तो दारा ने आगा-पीछा किया परन्तु पिता के द्वारा विवश किये जाने पर वह उस पर बैठ गया।

१—राजसिह को भेजे हुए औरगजेब के ये दो निशान उनमें पारस्परिक दूतो और उपहारों की अदला-बदली को सविस्तार बतलाते है। देखो ओझा कृत, राजपूताना का इतिहास, पृ० ८४४–पद टिप्पणी।

अपने धर्म गुरु (पीर) मुल्ला शाह बदख़शी को एक पत्र मे दारा लिखता है—"(ख़िलअतो और पद-वृद्धियो के वितरण के बाद)· सम्राट् ने कहा—'हे, मेरे पुत्र, मैने निश्चय कर लिया है कि विना तुम्हारे ज्ञान के और विना तुम से प्रथम विमर्श किये हुए मै कोई महत्वशाली कार्य न करूँगा और न अब से किसी व्यवसाय का निर्णय ही करूँगा. मै ईश्वर को इस कृपा का पर्याप्त रूप से धन्यवाद नही दे सकता हूँ कि तुम्हारे ऐसा पुत्र मुझको देकर उसने मुझे महाभाग बना दिया है "[1]। वारिस कहता है—"सम्राट् ने आज्ञा दी कि सामन्तगण और अन्य दरबारी दारा के महल को जाये और उसको मुबारकबाद दें। २३ फरवरी, १६५५ को दारा के महल मे सम्राट् का राजकीय अभ्यागमन हुआ कि शाह की उपाधि प्राप्त करने पर वह उसको मुबारकबाद दे। शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम दो वर्षो के इतिहास से यह सिद्ध होता है कि प्रशासन से सम्बन्धित विषयो मे युवराज को अधिकाधिक भाग मिलने लगा और विदेश-नीति को छोडकर उसके पिता के मन्त्रि-मण्डल मे उसका प्रभाव निर्णायिक अथवा लगभग निर्णायिक था।"

विभाग ४—दाराशिकोह और दरबारी राजनीति

प्रत्येक स्वच्छन्द राजा की भाँति शाहजहाँ अपने राज्य का मूर्तिमान रूप था, और उसका दरबार, चाहे वह राजधानियो मे निश्चल हो—चाहे शिविरो मे कूच पर हो, साम्राज्य के प्रशासनीय यन्त्र का प्रचालक और प्रेरक था। सम्राट् पर व्यक्तिगत प्रभाव पण्य-वस्तु (बिक्री का सौदा) था। साम्राज्य के प्रत्येक कोने से कृपाकाक्षियो का विशाल दल उत्सुकतापूर्वक इस की खोज मे रहता था। कोई भी व्यक्ति चाहे वह सर टामस रो सदृश शक्तिशाली राजदूत हो या कोई दीन विद्वान् हो जो विना लगानी कुछ बीघा जमीन की आशा से आया हो, दरबार मे अपने कार्य को सिद्ध नही कर सकता था यदि उसके पास कोई दरबारी आश्रयदाता न था और यदि वह उपहारो द्वारा उसकी कृपा प्राप्त न कर लेता था। तब भी महान् सामन्तगण और अधीनस्थ राजा-महाराजा जिनके अपने वकील दरबार मे रहते थे, सदैव सहायक की खोज मे रहते थे कि उनकी इच्छाये सन्तुष्ट हो सके। सम्राट् पर सहायक का गौरव तथा प्रभाव उसके कृपाकाक्षियो की संख्या तथा उनकी पदवी पर निर्भर था। परस्पर शत्रुवत सामन्तगण, अपने पडोसियो के साथ कलह-ग्रस्त अधीनस्थ राजा-महाराजा, अपनी सीमाओ के सम्बन्ध मे परस्पर झगडती हुई निकटवर्ती रियासते और एक

१—दारा का पत्र मुल्ला शाह को—देखो फारसी पाठ्य, पृ० २१–२३। पादशाहनामा में इस घटना के सक्षिप्त उल्लेख का पूरक यह पत्र है। (वारिस, ९६ अ०) तारीख और अन्य विवरणों के विषय में यह पत्र राजकीय इतिहास के वर्णन से सर्वथा सहमत है।

दूसरे को बाहर निकाल फेकने के प्रयास मे व्यस्त विदेशी व्यापारी-संघ भी, अपने को अपने सहायक के नेतृत्व मे विरोधी दलो मे विभाजित किये हुए थे। ये सहायक स्वय दरबार मे प्रभाव प्राप्त करने के लिये सघर्षशील रहते थे और इस कारण से दलो का निर्माण अवश्यम्भावी था।

दरबार मे दो मुख्य दल थे जिनके दो नेता थे, अयोग्य परन्तु महत्वाकाक्षी युवराज तथा सच्चा और योग्य वजीर सादुल्लाखाँ, और इन दोनो के बीच मे लटकन के सदृश सम्राट् भावुकता या स्वार्थ से प्रभावित होकर न्यून या अधिक बल से परस्पर विरोधी दिशाओ मे हिलता रहता था। अपने सर्वाधिक प्रिय पुत्र और अपने सर्वाधिक सम्मानित मन्त्री और मित्र की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण शाहजहाँ उतना ही दुखी हो गया था जितना कि राजकुमार सलीम और शेख अबुलफज्ल की शत्रुता ने अकबर के अन्तिम दिनो को कष्टकारक बना दिया था। राजकुमार को सादुल्ला की योग्यता से उतनी ही घृणा थी जितनी कि उसकी सुन्नी कट्टरता से। ईर्ष्या और मद के कारण दारा सादुल्ला और उसके प्रशसक शिष्य औरगजेब के सम्बन्ध मे अपमान से बातचीत करता। जब वजीर और युवराज दोनो अपनी मृत्यु के बाद साधारण मिट्टी मे लीन हो गये थे—उसके बहुत दिनो पीछे तक उनकी पारस्परिक ईर्ष्या और प्रत्युत्पन्नमति सादुल्ला के क्षिप्रप्रत्युत्तरो के विषय मे कथाये प्रचलित रही और एक अत्यन्त विद्वेषपूर्ण और असत्य आरोपण भी किया गया कि दारा ने वजीर को विष दे दिया था। शायद सादुल्ला के प्रति दारा की शत्रुता के सम्बन्ध मे और सम्राट् के रोषान्तर्गत दण्डित अपराधियो और सामन्तो की ओर से उसकी याचनाओं के सम्बन्ध मे—(जैसा कि बाद को हम देखेंगे)—कहा जाता है कि एक बार शाहजहाँ ने टिप्पणी की—"इसमे सन्देह नही कि युवराज एक राजा के साधनो, प्रताप और वैभव से सम्पन्न है, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि वह ईमानदार लोगो का दुश्मन है क्योकि वह बुरे लोगो के प्रति भला है और भले लोगो के प्रति बुरा है"[1]। औरगजेब एक दूसरी कथा कहता है—"दाराशिकोह सादुल्लाखाँ से प्रसन्न नही था, वह उसको कष्ट देता और चिढाता, एक बार उसने कहा—'आप पर सम्राट् की बहुत कृपा है, कितने नीचे स्तर से उठाकर सम्राट् ने आप को कितना ऊँचा चढा दिया है।' खाँ बहुत ही प्रत्युत्पन्नमति था। उसने तुरन्त ही उत्तर दिया—'वास्तव मे ऐसी ही बात है। परन्तु 'कयामत के दिन' पहले तो मेरा स्थान विद्वानो मे होना चाहिये था, परन्तु अब सम्राट् के मन्त्रियो मे है। जो समझ सकता है यह उसके समझने की बात है"[2]।

१—औरगजेब के पत्र, ब० ५४, अ० ३७।

२—औरंगजेब की कथायें—फ़ २१२, क ३३४।

खफीखॉ भी सादुल्ला के प्रति दारा की शत्रुता का वर्णन करता है। कहा जाता है कि सम्राट् के सम्मुख राजकुमार ने उस पर इस आशय का आरोप लगाया कि वजीर ने उसको नष्ट प्रायः परगने दिये थे जिनकी आय बहुत कम थी, और उसने स्वय अच्छे-अच्छे परगने अपने पास रख लिये थे। यह सुनकर सादुल्ला ने युवराज के वकील को बुला भेजा और उन परगनो को, जिनको दारा के आततायी आमिलो (अधिकारियो) ने नष्ट कर दिया था, अपनी जागीर मे लेकर बदले मे उसको अपनी जागीर से दारा के कर्मचारी के अनुमान अनुसार अच्छे-अच्छे परगने दे दिये। एक या दो वर्षो मे यह पता चल गया कि इन्ही परगनो मे खेती कम होने लगी है और लगान से उनकी आय भी घट गई है।[1] एक और कथा है कि सादुल्ला के प्रति युवराज के आचरण पर एक बार उसको शाहजहॉ से कटु भर्त्सना मिली। एक दिन दाराशिकोह के दीवान बहरमल ने सम्राट् के सम्मुख एक लेखा-पट (फर्द) उपस्थित किया जिसमे बताया गया था कि राजकोष से १० लाख रुपये का शेष राजकुमार को मिलना चाहिये। सम्राट् ने इसको सादुल्ला को दे दिया कि बडे दीवान के कार्यालय मे इसका निरीक्षण करवा कर उस पर वृत्तान्त भेजे। सादुल्ला ने तुरन्त टीका की कि प्रथम तो इतनी बडी धन-राशि राज-कोष से नही चुकाई जा सकती थी, और द्वितीय बात—वह दातव्य पत्र (बिल) ठीक नही था क्योकि पूर्व आय और व्यय का और चालूखाते का शेष नही दिखाया गया था। जब सम्राट् दरबार से चला गया, दारा ने सादुल्ला को कुछ कटु शब्द कहे और ये सम्राट् को अन्तःपुर मे दैनिक घटनाओ के समाचार पत्रक से मालूम हो गये जो दीवान खास (व्यक्तिगत भेंट के कमरे) का निरीक्षक (मुशरिफ) नित्य भेजता था। उसके आचरण की निन्दा करते हुए, शाहजहॉ ने तुरन्त राजकुमार को एक पत्र लिखा—"बहरमल तुम्हारे गृहस्थ का हित चाहता है तथा सादुल्ला मेरे धन की रक्षार्थ नियुक्त हुआ है। तुम्हारे कार्यालय को निस्सन्देह यह उचित था कि इस कागज को वह शुद्ध तैयार करता, और तुमको यह उचित था कि देख लेते कि यह पत्र सादुल्ला के हाथो मे जाने वाला है या नही राज्य के कर्मचारियो से दुर्व्यवहार करना निश्चय ही बहुत बुरा है—उनके हृदयो को जीत लेना प्रशसनीय बात है।" तीसरे पहर सम्राट् ने सादुल्लाखॉ को सुनहरी काम के महमूदी कपडे के कुछ थान भेजे।[2]

१—खफीखॉ, पृ० ७३८।

२—औरगजेब की कथायें—ब-५३ मे यह और है :—

"३,००० दीनार के नकद पुरस्कार सहित"—अ० ४६।

फ १६०—वास्तव में सर्वथा समान।

सादुल्ला भला आदमी था—केवल उन लोगो के साथ जो उसके मार्ग के रोडे न थे। सादुल्ला के प्रति दारा की शत्रुता शायद सच्ची बात है (यद्यपि उसके शत्रुओ की साक्षी द्वारा ही मुख्यतया यह प्रमाणित हो सकता है)। परन्तु राजकुमार के हृदय मे किसी प्रकार की कलुषता इसका कारण न थी। दो महत्वाकाक्षी पुरुषो के बीच मे अवश्यम्भावी सघर्ष का यह परिणाम था जो सम्राट् के चित्त पर और दरबार मे सर्वोपरि सत्ता पर अधिकार-प्राप्ति के निमित्त प्रयत्नशील थे। युवराज यह समझता था कि सादुल्ला जिस प्रकार उसके पिता का सेवक है, उसी प्रकार वह उसका भी सेवक है, और सादुल्ला जो योग्यता मे दारा से तुलनातीत बढा-चढा था, जो अपनी ईमानदारी के कारण निर्भीक था, जो अपनी पदवी की अपेक्षा अधिक गर्वशील था, दारा की ऐंठ को सहन न कर सकता था।

यह सब होते हुए अपने पिता पर अपने असीम प्रभाव का उपयोग दारा ने कभी किसी को हानि पहुंचाने के निमित्त नही किया, यद्यपि अनेक कुपात्रो को लाभ पहुँचाने के लिये उसने प्रायः इस प्रभाव का दुरुपयोग किया। दारा को उच्चतम आनन्द उस समय प्राप्त होता था जब वह दुखित हृदय के दुःख को दूर करता या किसी प्राणी के प्राण की रक्षा करता चाहे कितने ही न्यायपूर्वक आधार पर उसको प्राण-दण्ड दिया गया हो। वह अश्रुओ के, छद्मअश्रुओ के भी, प्रभाव का प्रतिरोध न कर सकता था, तथा चतुरता से गढी हुई किसी कष्ट की हृदय विदारक कहानी का वह अविश्वास न कर सकता था। अतः युवराज के कृपाकाक्षियो मे हमको चम्पतराय बुन्देला सदृश निराश विद्रोही, फ़कीरखॉ और शेख फरीद सदृश पदच्युत सामन्त,[1] तथा मलिक जीवन

१—कुछ उल्लेखनीय उदाहरण —

(i) बाकरखॉ नजुम्सानी के पुत्र फकीरखॉ को २ हजार जात और १ हजार सवार का उसका पुराना पद पुन. प्राप्त हो गया। किसी दुराचार के कारण दरबार में उसका आना बन्द कर दिया गया था और वह अपने मन्सब (पद) से पदच्युत कर दिया गया था (६ जनवरी, १६५४, वारिस, ६३ ब.)।

(ii) कुतुबुद्दीनखॉ का पुत्र शेख फरीद, जो किसी भयकर अपराध के कारण अपने मन्सब से पदच्युत हो गया था, दारा की मध्यस्थता द्वारा पुन कृपा-पात्र बन गया और उसको ३ हजार जात और २ हजार सवार का पद दिया गया (४ जून, १६५४; वारिस, ८७ ब.)।

(iii) एक बहुत प्राचीन वशोत्पन्न, उच्च पदस्थ मुसलमान सामन्त, जो दरबार में विशेष सम्मान का पात्र था, अपने मन्सब से पदच्युत कर दिया गया था और गत ६ वर्षों तथा २ मास से उसको दरबार में प्रवेश न प्राप्त हुआ था। ११ मार्च, १६५५ को दारा की मध्यस्थता द्वारा इस वृद्ध पुरुष को ५ हजार (?) जात और ४ हजार सवार का उसका पुराना पद वापस मिल गया, वह मुकर्रमखॉ के स्थान पर जवनपुर सरकार का हाकिम नियुक्त हो गया और उपहार

सदृश निकृष्ट खल मिलते हैं। इनमें से शेख फरीद का, अक्षम्य अपराधों के कारण, दरबार मे प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया था और मलिक जीवन को दिल्ली की कोतवाली के चबूतरे पर फाँसी के लिये चढा दिया गया था।

विभाग ५—दाराशिकोह और श्रीनगर का राजा पृथ्वीचन्द

हिमालय के अभेद्य आंचल में सुरक्षित गढवाल के राज्य, पागल सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासन-काल मे किये गये विनाशक अभियान के समय से प्राय॰ मुस्लिम आक्रमण से मुक्त रहे थे। १६३६ मे सम्राट् शाहजहाँ ने इस उद्योग को पुन॰ आरम्भ किया। श्रीनगर मे तथाकथित स्वर्ण की खानों का आकर्षण उसको उत्पन्न हो गया। वहाँ पर उस समय कुख्यात नक्कटी (नाक काटने वाली) रानी का राज्य था। नजाबतखाँ (शाहरुख मिर्जा का पुत्र मिर्जा शुजा), जो उस समय सहारनपुर का फौजदार था, इस अभियानक दल का नेता नियुक्त हुआ। रानी के युद्ध-कौशल से वह दूर देश के मध्यभाग तक चला गया, जहाँ पर उसके अधिकाश सैनिक ज्वर से नष्ट हो गये। नजाबतखाँ अपने थोडे से बचे हुए सिपाहियो को लेकर, जिनकी दशा दयनीय थी, रानी के प्रदेश से भाग निकला। उनकी नाके तो सम्पूर्ण थी, परन्तु उनका सम्मान नष्ट हो गया था। १६५४ मे महाराणा राजसिंह पर विजय से प्रफुल्लित होकर शाहजहाँ ने अपनी सेना के एक भाग को श्रीनगर पर नवीन आक्रमण करने के लिये भेज दिया। १४ नवम्बर, १६५४ को अजमेर के निकट से खलीलुल्ला खाँ को आज्ञा मिली कि श्रीनगर के राजा पृथ्वीचन्द के विरुद्ध ९ हजार की सेना लेकर प्रयाण करे (वारिस, ९२ ब.) सिरमोर पहाडियो के राजा सौभाग्यप्रकाश की तथा कुमाऊँ के राजा बहादुरचन्द्र की सहायता से मुसलमान सेना श्रीनगर-प्रदेश मे दूर तक घुस गई, और आगामी वर्ष हरद्वार के ऊपर दून पर उसने काम चलाऊ अधिकार कर लिया। यहाँ पर साम्राज्यवादियो का दुर्गाकार आधार-शिविर निर्मित किया गया और उस समय से जनसाधारण

में उसको सोने की जीन सहित एक इराकी घोडा और एक हाथी मिला। सर य० ना० सरकार के पास वारिस के ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति में, जिसका उपयोग मैने किया है, इस वृद्ध पुरुष का नाम नही है। इस हस्तलिखित प्रति के अन्त मे दी हुई मन्सबदारों की सूची से मालूम होता है कि यह व्यक्ति मुतक्दिखाँ था जिसका पद ४ हजार जात और ४ हजार सवार का था। राज्यारोहण के २९ वें वर्ष में १२ जिलकाद को जवनपुर में इसका देहान्त हुआ (वारिस, ९७ ब, १२४ अ) अर्थात् पद की पुन प्राप्ति के लगभग एक वर्ष बाद।

(IV) मलिक जीवन को विद्रोह के कारण शाहजहाँ ने प्राणदण्ड दिया था। उसने बाद को अत्यन्त विश्वासघातपूर्वक, भागे हुए दारा को धोखा दिया, यद्यपि दारा ने उसके निमित्त हस्तक्षेप किया था और उसके लिये क्षमा प्राप्त कर ली थी।

की बोल-चाल मे इस स्थान का नाम देहरादून पड गया है। खलीलुल्लाखाँ अपनी अयोग्यता के लिये प्रसिद्ध था, अतः वह नाममात्र का मुख्य सेनापति बना रहा। परन्तु व्यावहारिक रूप से आज्ञापक का पद चतुर्भुज चौहान को दे दिया गया। युद्ध दो वर्ष तक मन्द गति से चालू रहा और २० जनवरी, १६५४ को कासिमखाँ मीर आतिश ४ हजार सवार लेकर दिल्ली से चला कि दून की मुगल सेना को सहायता पहुँचाये। अन्तिम सफलता के प्रति निराश होकर राजा पृथ्वीचन्द ने जहाँनारा बेगम के साथ लम्बा पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। अपनी राज-निष्ठा और दोषहीनता का उसने विश्वास दिलाया और अधीनता स्वीकार करने की अपनी इच्छा को प्रकट किया कि राजकुमार दारा उसके हित मे अपना हस्तक्षेप करे। उसने अपने पुत्र मेदिनीसिंह को युवराज के पास भेजा। युवराज ने ३० जुलाई को उसको दरबार मे उपस्थित किया और उसका परिचय दिया। अपने पिता की ओर से मेदिनीसिह ने सम्राट् को १ हजार अशर्फियो (मौहरो) की नजर (भेट) पेश की। सम्राट् ने उदारता-पूर्वक उसके पिता के समस्त अपराधो को क्षमा कर दिया और उसको एक बहुमूल्य खिलअत, रत्नजटित दस्तबन्द और सोने की जीन सहित एक किपचक घोडा दिया।

विभाग ६—दक्षिण की राजनीति

१६५४ से १६५७ के वर्षों मे गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्यो के विरुद्ध औरंगजेब के षड्यन्त्रो और आक्रामक योजनाओ मे शाही दरबार का समस्त ध्यान लगा रहा। दक्षिण के प्रश्न पर सादुल्ला और औरंगज़ेब का युद्ध-प्रिय दल दारा और जहाँनारा का शान्तिप्रिय दल एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध हो गये। दरबार मे यह दलीय युद्ध, जिसका अन्तिम परिणाम उत्तराधिकार युद्ध हुआ, उस युद्ध के पूर्व प्रवर्त्तक कारणो में से था। शाहजहाँ द्वारा अपने प्रति किए हुए व्यवहार से बहुत दुखित होकर औरंगजेब १६५२ मे दक्षिण को चला गया था, क्योकि शाहजहाँ ने अन्यायपूर्वक उसको दूसरा अवसर देने से इन्कार कर दिया था कि वह कन्धार जाकर अपना पूर्व गौरव पुनः प्राप्त कर लें। अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति की भाँति दक्षिण मे उसकी प्रवृत्तियो की एक अन्तर्निहित प्रेरणा और एक सतत् उद्देश्य था कि अपने ज्येष्ठ भाई से अवश्यम्भावी सघर्ष के दिन के लिये वह सुसज्जित हो जाये और उस युद्ध के निमित्त अपना साधन सञ्चय करले। यह स्पष्ट था कि गोलकुण्डा और बीजापुर के निर्बल तथा समृद्ध राज्यो को वह युद्ध के लिए विवश कर देना चाहता था क्योकि युद्ध के द्वारा विशाल सेनाओ का अधिकार उसको प्राप्त हो जायेगा, उसके अधिकारी रणकुशल हो जायँगे, उसके सैनिक उत्साहित

रहेंगे और आगामी उत्तराधिकार-युद्ध के प्रति उसको सामर्थ्य प्राप्त हो जायेगा।

औरंगजेब के लोलुप नेत्र सर्वप्रथम गोलकुण्डा के अब्दुल्ला कुत्बशाह के समृद्ध प्रदेश पर तथा उसकी नितान्त विवशावस्था पर आ टिके। उसकी पहली मॉग यह हुई कि हुन और रुपये मे विनिमय-दर की वृद्धि के कारण गत १६ वर्षों मे (१६३७-१६५३ ।) (गोलकुण्डा के कर के कारण) जो २० लाख रुपये का अन्तर हो गया था वह तुरन्त दे दिया जाये, उसने गोलकुण्डा के शासक को मना कर दिया कि कर्णाटक के हिन्दु राजा के विरुद्ध वह अपना युद्ध चालू रखे (जब तक कि उसका हस्तक्षेप, जैसा कि निर्लज्ज होकर राजकुमार ने सुझाव दिया, धन द्वारा मोल न ले लिया जाये), और गोलकुण्डा के वजीर मीर जुम्ला से षड्यन्त्र किया कि अपने स्वामी के हित को त्याग दे तथा मुगल सेवा मे सम्मिलित हो जाये। उसके लोभ को प्रेरित कर उसके (औरगजेब के) मित्र सादुल्लाखॉ ने सम्राट् को राजी कर लिया कि इस अन्यायपूर्ण नीति का समर्थन वह कर दे। गोलकुण्डा का सर्वनाश करने के लिये अन्त मे औरगजेब ने धूर्तता तथा अत्यन्त निन्दनीय चातुर्य का आश्रय लिया। उसने अब्दुल्ला कुत्बशाह को लिखे गये शाहजहॉ के एक महत्वशाली पत्र को दबा दिया और अकस्मात् गोलकुण्डा के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। औरगजेब के इतिहासकार के कथनानुसार शाहजहॉ ने 'औरगजेब को प्रसन्न करने के लिये' दल के केवल प्रदर्शन की आज्ञा दी थी कि मीर जुम्ला के परिवार को मुक्ति प्राप्त हो जाये। अद्भुत तर्क द्वारा यह स्वत्व स्थापित किया गया था कि मीर जुम्ला शाही नौकर है। परन्तु औरगजेब का उद्देश्य तो अब्दुल्ला कुत्बशाह का प्राण हरण करना तथा समस्त गोलकुण्डा राज्य का मिला लेना था। तदनुसार उसने अपने पुत्र सुल्तान मुहम्मद को आज्ञा दी कि गोलकुण्डा के शासक को अपने जाल मे फँसा ले तथा फुर्ती, चतुराई और हाथ की सफाई दिखाकर मित्रवत् सम्मिलन मे उसकी हत्या कर दे। मुगल सेना ने हैदराबाद पर अधिकार कर लिया और शाह को गोलकुण्डा के गढ मे बन्द कर दिया। इस सकट-वेला पर दारा और जहॉनारा ने अपने कृपाकाक्षी कुत्ब शाह की रक्षार्थ सक्रिय हस्तक्षेप किया।

उस समय से जबकि गोलकुण्डा और बीजापुर के शासक कर्णाटक की लूट के धन पर अपने झगडे को शाही दरबार मे ले गये थे, दारा तथा औरगजेब विरोधी दलो का समर्थन कर रहे थे। स्वभावतः अब्दुल्ला कुत्बशाह ने युवराज की मध्यस्थता की शरण ली कि औरगजेब के षड्यन्त्रो से उसके प्राण और धन की रक्षा हो सके। शाहजहाँ इस समय तक औरंगजेब और सादुल्ला के हाथों में कठपुतली बना हुआ था। उन्होंने उसके लोभ, भूमिक्षुधा और सुन्नी पक्ष-पात को

दुष्ट-प्रेरणा देकर दया और न्याय के विरुद्ध उसके हृदय को पत्थर कर दिया था। दारा का कार्य सम्राट् की सद्बुद्धि को केवल जाग्रत करना था और गोलकुण्डा के शासक की स्थिति को उसके शुद्ध रूप मे सम्राट् के सम्मुख उपस्थित करना था। घडी का लटकन अब शान्ति-प्रिय दल की ओर झुक गया। इसका कारण कुछ अश तक सम्राट् की अपनी जन्मजात न्याय-बुद्धि थी और कुछ अश तक यह बात थी कि उसके महत्वाकाक्षी तथा नि.शंक पुत्र की गुप्त योजनाये शायद प्रकाश मे आगई थी। अब्दुल्ला कुत्बशाह को लिखा हुआ दारा का निम्नाकित पत्र इस काण्ड पर बहुत प्रकाश डालता है—"२६ जमादी उल्-अव्वल को (मार्च १५, १६५६) मुल्ला अब्दुस्समद आया और आपके द्वारा लिखित, सम्राट्, मेरी प्रसिद्ध बहेन जहाँनारा, और मेरे नाम के तीन पत्र (अर्जदाश्त) लाया। मैंने तीनो पत्र सम्राट् के सम्मुख उपस्थित कर दिये उसने दयालुतापूर्वक कृपा का एक फर्मान आपको लिखा और उसको शाइस्ताखाँ के पास भेज दिया (आपको देने के लिये)। इसका अभिप्राय यह था कि आपको स्पष्ट हो जाये कि सम्राट् ने गोलकुण्डा के अवरोध की और आपके देश को अधिकृत करने की आज्ञा वास्तव मे नही दी है। इसके विपरीत इच्छा यह थी कि मीर मुहम्मद सईद के पुत्रो और उसके परिवार के अन्य सदस्यो को अपने साथ लेकर वे वापस आजाये[1]।

यह कोई नीच षड्यन्त्र न था और न विद्वेषी दारा की ओर से पीठ पर यह आघात था जैसा कि औरगजेब और उसके अन्ध समर्थक बिना कोई कारण बताये कहते हैं। फरवरी के आरम्भ मे क्षमा का एक शाही पत्र, अब्दुल्ला क़ुत्बशाह के लिये एक सम्मान-वस्त्र के साथ औरगजेब के माध्यम द्वारा भेजा गया था। औरगजेब ने स्वच्छन्दतापूर्वक इस को रोक लिया। इसका दिखावटी सच्चा कारण उसने यह दिया कि उसके कारण शान्ति की शर्तो को निश्चित करने मे कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायेगी। परन्तु वास्तव मे औरगजेब ने ही शान्ति वार्तालाप को जानबूझ कर बढा दिया कि चतुर मच्छीमार की भाँति वह अन्त तक अपने शिकार मे व्यस्त रह सके। औरगजेब सम्राट् को धोखा दे रहा था। वह अपने ही शब्दो द्वारा अपराधी घोषित हो जाता है। औरगज़ेब मीर जुम्ला को (मार्च के आरभ मे) लिखता है—"कुत्ब उल्मुल्क अब क्षमा की याचना कर रहा है। उसका प्रस्ताव हैं कि उसकी माता मेरी सेवा में उपस्थित हो जायेगी और उसकी पुत्री

१—२ जमादी उस्सानी, १०६६ हि० (१८ मार्च, १६५६) का पत्र; देखो फ़ारसी पाठ्य पृ० १३३। प्रत्यच है कि पत्र में दी हुई जमादी-उस्सानी पत्र-लिपिकार की चूक से जमादी-उल्-अव्वल के स्थान पर लिख गया है। अब्दुल्ला कुत्बशाह के दारा को पत्र—फ़ारसी पाठ्य पूर्ववत्—पृ० ३४–५२।

मेरे पुत्र को विवाह दी जायेगी। परन्तु मेरी इच्छा है कि मै उसको सर्वनाश के मुख मे दे दूँ[1]। संक्षेपतः, अपने ही मुख से औरगजेब अपने पर यह दोष आरोपित कर देता है कि गोलकुण्डा का नाश करने के लिये उसने नीच चातुर्य और निर्दयी अन्याय का व्यवहार किया। राजनीति मे हानिकारक प्रभाव का प्रतिकार करने के लिये, घूस के रूप मे भी (जैसा कि उसके शत्रु अकारण ही कहते है), यदि दारा ने हस्तक्षेप किया, उस पर यह अपराध आरोपित नही किया जा सकता कि साम्राज्य के उत्तम हितो का उसने विश्वासघात किया। ये हित औरगजेब के हितो से प्रायः भिन्न थे। औरगजेब के राजद्रोही आचरण का दूसरा प्रमाण यह तथ्य है कि उसने अब्दुल्ला कुत्बशाह को इस आशय का अहदनामा (प्रतिज्ञा-पत्र) लिखने पर विवश कर दिया कि उसकी मृत्यु के बाद औरगजेब के ज्येष्ठ पुत्र को व्याही हुई, उसकी कन्या की सन्तान को, गोलकुण्डा का समस्त राज्य मिलेगा जिस पर उसके किसी अन्य वारिस को कोई अधिकार न होगा। यह समस्त कार्यवाही विना सम्राट् के ज्ञान के की गई[2]। उसने इसको मंजूर करने से इन्कार कर दिया जब यह सम्पुष्टि के लिये उसके सामने पेश किया गया। आगे चलकर गोलकुण्डा की लूट के धन के अधिकाश भाग से औरंगजेब ने राज्य को वञ्चित कर दिया जिस पर पिता और पुत्र मे अशोभनीय तर्क-वितर्क प्रारम्भ हो गया। ऐसा मालूम होता है कि औरंगजेब के महान् इतिहासकार को भी, एक बार और केवल एक बार औरंगजेब के सुलिखित पत्रो से धोखा हो गया। इसका कारण यह भी हुआ कि औरंगजेब ने अपनी ईमानदारी और आर्थिक लाभ के प्रति अपने तिरस्कार का सरोष प्रदर्शन किया और उसने बहाना किया कि प्रत्येक वस्तु को, जो उसको तथा उसके पुत्र को गोलकुण्डा से उपहारो के रूप मे प्राप्त हुई थी, अपने पिता को वापस कर देगा।

गोलकुण्डा मे अपने शिकार से वञ्चित हो जाने पर औरगजेब की दृष्टि बीजापुर पर पडी। यहाँ के धार्मिक और योग्य शासक मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु ३० वर्ष के सफल शासन काल के बाद (१६२६-१६५६) इस समय पर हुई थी। इस सुजन शासक की मृत्यु पर औरंगजेब का हर्ष उसके पत्रो मे प्रवाहित है जो उसने मिर्जा राजा जयसिंह सदृश अपने मित्रो को लिखे थे। यद्यपि बीजा-पुर स्वतन्त्र राज्य था और मुगल साम्राज्य से शान्ति की शर्तो का उसने पूर्ण

१—अदब, ८१ अ०। सरकार कृत—'औरगजेब के इतिहास में उद्धरित—खण्ड I तथा II पृ० २१३, ५२।

२—दरबार के इतिहास में इस अहदनामा का लेशमात्र भी अनुषग नही है। इस तथ्य से औरगजेब के आचरण पर स्पष्ट सन्देह होता है। औरगजेब के पुत्र के विवाह के लिये देखो वारिस, ११० अ०।

रूप से पालन किया था, औरंगजेब ने इसके विनाश के निमित्त षड्यन्त्र की रचना की। निःशंक और स्पष्ट साम्राज्यवाद हमारी नैतिक भावनाओ को इतना राक्षसी प्रतीत नही होता है जितना कि वाक्छल और दभ का चोगा जिससे मनुष्यमात्र को धोखा देने के लिये राजनैतिक पुरुष उसको सुसज्जित कर देते है। औरंगजेब ने भी यही वस्त्र धारण कर लिया कि इसके द्वारा वह अपने पिता को इस पर राजी करले कि बीजापुर को मिला लेने के लिए युद्ध की आज्ञा वह दे दे। उसने अली आदिलशाह द्वितीय की अनौरसता का सुखद मत उपस्थित किया और सम्राट् से प्रार्थना की कि ऐसे राज्य को एक जारज के अधिकार मे न छोड दिया जाये, परन्तु जनता के हित के कारण उसको साम्राज्य मे मिला लिया जाये। बीजापुर पर आक्रमण की आज्ञा सम्राट् द्वारा प्राप्त होने की पूर्वाशा से औरंगजेब ने अपनी सेना को उसकी सीमा पर एकत्र कर दिया, बीजापुर के वजीर को मिला लेने के लिये उसने षड्यन्त्र आरम्भ कर दिया और अपने कोष को खोल दिया कि बीजापुर के सरदारो को अपनी तरफ फोड सके। अस्थिर सम्राट् कुछ समय तक डॉवाडोल रहा, परन्तु अन्त मे वह युद्धप्रिय दल की ओर झुक गया। इस दल का नेता इस समय मीर जुम्ला था। वह नया प्रधानमन्त्री था और दक्षिण की राजनीति मे वह सर्वसम्मत प्रमाण था और सम्राट् की सेवा मे उसने जो अद्वितीय हीरे, माणिक्य और पन्ने उपहार रूप मे उपस्थित किये, उन्होने दारा के शान्ति-प्रिय दल को परास्त कर दिया।[1]

२६ नवम्बर, १६५६ को बीजापुर के विरुद्ध शाहजहाँ ने सर्वथा अन्यायपूर्ण युद्ध की आज्ञा दे दी और औरंगजेब को स्वतन्त्र अधिकार दे दिया 'कि बीजा-पुर के काण्ड का जैसा वह उचित समझे वैसा निपटारा कर दे।' केवल २३ दिन घेरने के बाद (२९ मार्च, १६५७ को) उसने बीदर के सबल गढ पर अधिकार कर लिया और इसके बाद कल्याणी पर घेरा डाल दिया जिसने भी १ अगस्त, १६५७ को आत्मसमर्पण कर दिया।[2] मुगल सूबेदार को शाही सेना के विशाल दलो की सहायता प्राप्त हो गई और ऐसा मालूम होने लगा कि कुछ महीनो मे स्वयं बीजापुर का पतन हो जायगा। युद्ध आरम्भ होने के ६ महीनो बाद जब औरंगजेब पूर्ण सफलता प्राप्त कर रहा था सम्राट् ने अकस्मात् उसको रोक दिया और विना औरंगजेब से परामर्श किये हुए उसने बीजापुर से शान्ति स्थापित करली और महावतखाँ तथा राव छत्रसाल हाडा को उसने आज्ञाये भेज दी कि अविलम्ब उसकी सेवा मे उपस्थित हो जाये, औरंगजेब से विधिपूर्वक आज्ञा प्राप्त करने को प्रतीक्षा न करें और अपने साथ समस्त मुगल और राजपूत

१—औरंगजेब का इतिहास, II २३३।
२—वही, पृ० २३६, २३७, २५०।

सैनिको को लेते आये जो दक्षिण मे युद्ध-सेवा पर उपस्थित थे। सम्पूर्ण काण्ड अशुभ रूप से रहस्यमय प्रतीत होता था और सदा की भाँति इसका कारण दारा का षड्यन्त्र बताया गया। दुर्भाग्यवश वारिस का अधिकृत इतिहास यही पर समाप्त हो जाता है तथा युवराज और बीजापुर का कोई मौलिक पत्र-व्यवहार अभी तक प्रकाश मे नही आया है। मुहम्मद सलिह कम्बू, जिसने औरंगजेब के शासन-काल मे अपना ग्रन्थ अमले-सलिह लिखा, कहता है कि अली आदिल शाह ने औरजेब का सामना करने मे अपने को असमर्थ देखकर अपने वकील इब्राहीम बिचित्तरखाँ को राजकुमार दाराशिकोह के पास भेजा और उसके द्वारा शान्ति की प्रार्थना की। औरगजेब का एक आश्रित व्यक्ति आकिलखाँ रजी कहता है कि दाराशिकोह की प्रार्थना पर महावतखाँ और राव छत्रसाल हाडा को दो आज्ञा पत्र (फर्मान) लिखे गये[1]। परन्तु शाहजहाँ की ओर से नीति का यह परिवर्तन इतना निर्णायक और स्थिर है और इसका अर्थ इतना गम्भीर है कि चाहे जितना दारा का प्रभाव क्यो न हो वह इसका पूर्ण कारण नही हो सकता है। ऐसा मालूम होता है कि दारा के प्रति उसके प्रेम की अपेक्षा औरगजेब की ओर से उसके भय ने उस पर अधिक प्रभाव डाला। औरंगजेब की ओर से शाहजहाँ परेशान था। उसमे उसको अपनी ही पापी आत्मा का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता—नवयुवक, साहसी, कार्यदक्ष, निःशक खुर्रम का जो अपने पिता के प्रति विद्रोही था और अपने ज्येष्ठ भ्राता का हत्यारा था। औरगजेब के प्रति उसको स्वाभाविक अविश्वास था और यही कारण था कि औरगजेब के प्रति उसकी वृत्ति अस्थिर और कभी-कभी अकारण ही चिन्ताकुल रहती थी। उसके हृदय में यह भ्राति थी कि दक्षिण मे अपने सूबेदारी पद को औरगजेब दिल्ली के राजसिंहासन पर अधिकार प्राप्त करने का साधन बनाले जैसा कि स्वय उसने जहाँगीर के शासन-काल मे किया था। राजकुमार शुजा को लिखा हुआ शाहजहाँ का एक पत्र प्रकट करता है कि दक्षिण से औरगजेब को स्थानान्तर करने पर सम्राट् इस समय गम्भीरता-पूर्वक विचार कर रहा था। पहले इसके कि औरगजेब के विरुद्ध अपनी योजना को शाहजहाँ परिपक्व कर सके वह ६ सितम्बर, १६५७ को रोग-ग्रस्त हो गया। उसकी रुग्णता का यह समाचार, जो प्रवाद द्वारा मृत्यु के समाचार मे परिवर्तित हो गया था, उत्तराधिकार-युद्ध के प्रारम्भ का सकेत बन गया।

१—कम्बू ५ ब; आकिल १६।

अध्याय ८

उत्तराधिकार-युद्ध के कारण

विभाग १—दारा की नास्तिकता और गृह-युद्ध

इस्लाम ने अपनी राज-व्यवस्था के अन्तर्गत वशानुगत राजत्व के उदय पर कभी विचार न किया था। अतः मुसलमानी राज्य मे उत्तराधिकार का कोई विशेष नियम न था। इसके विपरीत, ज्येष्ठत्व के सर्वव्यापी नियम को अस्वीकृत करके, तलवार के निर्णय के विरुद्ध एक मात्र रक्षा-साधन को, चाहे जितना अपर्याप्त वह क्यो न हो, उसने निर्बल बना दिया। इसके अतिरिक्त तैमूर के वश मे विद्रोह की निन्दनीयता और उसकी अपमानजनकता नष्ट हो गयी थी। इस परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपने को मिर्जा मानता था—अर्थात् ऐसा राजकुमार जिसको शासन करने का तथा प्रत्येक अन्य सदस्य की पैतृक सम्पत्ति के अपहरण करने का अधिकार था। मुगल साम्राज्य मे प्रत्येक अन्य मुस्लिम राज्य की भाँति राजकुमारो और अपहरणकारियो की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था।

कुछ लोगो का विचार है कि गृह-युद्ध टल सकता था यदि शाहजहाँ ने अपने पुत्रो की शिक्षा के सम्बन्ध मे शिथिल नीति का अनुसरण न किया होता। इसके कारण उसके प्रत्येक पुत्र का ऐसा चरित्र बन गया और उसमे ऐसी प्रवृत्तियो का विकास हो गया जो सर्वथा एक दूसरे के विरोधी थीं। इस प्रकार दारा का प्रवेश अविश्वास के क्षेत्र मे हो गया, शुजा ने शिया सम्प्रदाय की ओर अपनी प्रवृत्ति प्रकट की, औरगजेब क्रूर होकर कट्टर सुन्नी बन गया और मुराद धर्म के प्रत्येक रूप की हँसी उडाता और केवल मदिरा और माँस मे आनन्द प्राप्त करता। परन्तु राजकुमारो के व्यक्तिगत चरित्र और उनके धार्मिक विचार उनके पारस्परिक गृह-युद्ध के बिल्कुल ही उत्तरदायी न थे। यह मानना अनर्थक है कि यदि शाहजहाँ के चारो पुत्र समान रूप से इस्लाम पर निष्ठा रखते तो सर्वसाधारण मुसलमानी जनता उसके भाइयो के स्वत्व-प्रतिपादन के विरुद्ध दारा के स्वत्व का साथ देती। यदि दारा अली की भाँति भी सज्जन और भक्तात्मा होता, तब भी उसके भाइयो को निश्चय था कि रसूल के दामाद के विरुद्ध लडने के लिये मुवैय्या को जितने सैनिक प्राप्त हो सके थे उनसे कही अधिक सिपाही उनको भारतीय मुसलमानो मे से मिल जायँगे। दारा और औरंगजेब का संघर्ष वास्तव मे हिन्दू और मुसल्मानो की पारस्परिक बल परीक्षा न थी यद्यपि दारा की ओर से अधिक हिन्दुओ ने तथा औरगजेब की ओर से अधिक

मुसलमानो ने इस सघर्ष मे भाग लिया। यदि इस सघर्ष का परिणाम हिन्दु-धर्म या इस्लाम की विजय होता, तो बारहा के सैयद दारा के अत्यन्त श्रद्धालु अनुचर न हो सकते थे और न महाराणा राजसिंह औरगजेब के पक्ष का समर्थन करता। अन्यत्र हम यह विवाद उपस्थित करेगे कि दारा धर्म-भ्रष्ट विधर्मी था जैसा कि उसके शत्रु कहते है या वह ऐसा न था। यहाँ पर इतना कहना पर्याप्त होगा कि रसूल के सम्प्रदाय की वास्तविक आत्मा की व्याख्या करने मे मुल्लाओ से चाहे जितना ज्यादा उसका मत भेद क्यो न हो, वह इस्लाम के अनेक प्रसिद्ध पुत्रो की भाँति जीवनपर्यन्त मुसलमान रहा और मुसलमान ही मरा।[1] दारा के विधर्म के कारण नही, परन्तु उसकी लौकिक बुद्धि और चातुर्य के अभाव के कारण उसके अधिकाश कृपाकाक्षी—हिन्दु और मुसलमान दोनो—उसका पक्ष त्याग कर उसके प्रतिद्वन्द्वी के समर्थक बन गये।

विभाग २—शाहजहाँ का दाराशिकोह के प्रति पक्षपात

दारा के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल देशी तथा विदेशी लेखको का सामान्य विषय है शाहजहाँ का उसके प्रति पक्षपात। और प्रायः यह कहा जाता है कि अपने पिता के विरुद्ध छोटे राजकुमारो के विद्रोह का यह एक सहायक कारण है। उसके छोटे भाई युवराज को परिवार पर भारस्वरूप समझते थे जिसका अनायास ही पालन-पोषण होता, जो सम्मान वस्त्रो मे लदा रहता और जो सम्राट् के परिजनो मे राजसी ठाठ से भ्रमण करता रहता था। शाहजहाँ के तीस वर्षों के शासनकाल में दारा को कभी भी १५ महीनो तक दरबार से दूर ठहरने की आज्ञा न मिली थी। यद्यपि रण कौशल मे किसी कर्त्तव्य का भी श्रेय उसको प्राप्त न था, उसका सैनिक पद अन्त मे ६० हजार जात का हो गया था; और यह पद समस्त छोटे भाइयो के पद से अधिक था। दारा के पुत्रो के प्रति भी वह पक्षपात प्रकट था। सुलेमानशिकोह काबुल का अनुपस्थित सूबेदार था और उसका पद १२ हजारी का था। सिपिहरशिकोह ठट्टा का अनुपस्थित राज्यपाल था और उसका पद ९ हजारी का था[2] जो शुजा तथा औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्रो के पदो से ऊँचा था। शाहजहाँ ने राजकीय रत्न, घोड़े

१—दारा का एक प्रतिकूल समालोचक बर्नियर कहता है—"चूँकि जन्म से वह मुसलमान था, वह उस धर्म के व्यावहारिक आचरण में सतत भाग लेता रहा, परन्तु यद्यपि वह जन-साधारण के समक्ष इस प्रकार अपने को उस धर्म का अवलम्बी प्रकट करता, दारा व्यक्तिगत रूप से हिन्दुओ में हिन्दु और ईसाइयों में ईसाई था (कास्टेबल कृत—'बर्नियर और उसकी यात्रायें, पृ० ६)।

२—शुजा और औरगजेब दोनों २० हजारी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान जैनउद्दीन तथा सुल्तान मुहम्मद दोनों ७ हजारी थे। राजकुमारों के मन्सब के लिये देखो वारिस, १२३ ब.।

और हाथी दारा को दे दिये थे। उसने दारा के सेवकों में से अपेक्षाकृत अधिक सामन्त बना दिये थे, और दारा के धर्म-गुरुओं, साहित्यिक पार्श्वचरों तथा संगीतकारों को उदारतापूर्वक आर्थिक तथा अन्य सहायताएँ दीं।[1]

दारा के प्रति शाहजहाँ के पक्षपात के विषय में इस प्रकार बहुत कुछ कहा गया है। परन्तु क्या शाहजहाँ का निष्पक्षपात रक्तपात को रोक सकता था? क्या यह सम्भव था कि पिता के प्रेम में और पैतृक सम्पत्ति में समान भाग राजकुमारों को राजगद्दी के निमित्त संघर्ष से रोक सकता था? शाहजहाँ ने उस मार्ग का अनुसरण किया जो विधाता द्वारा उसके लिये सुनिश्चित प्रतीत होता था—अर्थात् ज्येष्ठ पुत्र को उसका उचित भाग देना और शुभ दैव-योग से उसके समस्त बच्चों में युवराज सर्वाधिक उत्तम प्रेम का पात्र था। अतः अपने समस्त जीवन में सम्राट् ने दारा के सर्वाधिक प्रिय और उत्साही मित्र तथा शिक्षक का कार्य किया। ऐसा प्रतीत होता था कि दारा के हित में हिन्दुस्तान के साम्राज्य की, पवित्र तथा अभेद्य निक्षेप के रूप में, वह रक्षा कर रहा है। यदि दारा की यह स्थिति अच्छी तरह समझ ली जाये—तो यह आरोप कि शाहजहाँ ने दारा के प्रति पक्षपात किया—तुरन्त ही भूमिसात् हो जाता है। अपने विधिविहित उत्तराधिकारी के प्रति न्यायार्थ प्रत्येक कार्य उसने

१—कवीन्द्राचार्य को लाहौर में १५००) रु० मिले। (७ अक्तूबर, १६५१—वारिस)। दारा तथा जहाँनारा के पीर मुल्ला शाह बदख़शी को रमजान के उपवास की समाप्ति पर ५ हज़ार रु० मिले (१२ जुलाई, १६५६—वारिस, ११४ अ)। चन्द्रभान ब्राह्मण को राय की उपाधि से सम्मानित किया गया (९ अप्रैल, १६५६—वारिस, १०८ ब) दारा के कवि को, जो उसके दीवान मुल्ला सलिह का भाई था, १ हजार रु० मिले 'क्योंकि उसने परिश्रमपूर्वक हिन्दवी (हिन्दी) में ईश्वर के नामों का एक संग्रह तैयार किया था' (२ मई, १६५५—वारिस ९८ ब.) दारा के संगीतकारों को २ हजार रु० मिले (३१ मार्च, १६५५—वारिस, ९८ अ) दारा के सेवकों की पद-वृद्धि के विषय में वारिस कहता है—"शाह बुलन्द इक़बाल मुहम्मद दाराशिकोह के अनुचरों में से ५ व्यक्ति पहिले ही खाँ बनाये जा चुके थे—वे ये थे—क़ाबुल के सूबे का नायब नाज़िमबहादुरखाँ (यह व्यक्ति इज्जतखाँ था जिसको ११ मार्च, १६५५ को बहादुर खाँ का उच्च पद (?) मिला था। इलाहाबाद के सूबे का नायब नाजिम (सैयद हाशिम बारहा का पुत्र) सैयद सलाबतखाँ। युवराज का दीवान मुतमिदखाँ। ठट्टा (सिन्ध) का नायब नाजिम मुहम्मद अलीखाँ। तथा राजकुमार के तोपखाने का नेता बर्कन्दाजखाँ (बदनाम जाफर)। उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त ५ अन्य सज्जन इस दिन (१४ जुलाई, १६५६) सामन्त बना दिये गये—अब्दुल्ला बेग नजुम्सानी को अस्करखाँ की उपाधि मिली; लाहौर के नगर कोतवाल ख्वाजा मुईन को मुईनखाँ की उपाधि दी गई; मुल्तान का नायब नाजिम सैयद अब्दुर्रज्जाक इज्जतखाँ हो गया, आगरा तथा दिल्ली के बीच के प्रदेश का (दारा की ओर से) फौजदार शेखदाऊद—दाऊदखाँ बनाया गया, और एक अन्य अधिकारी नाहर तम्बूरी नामक नाहरखाँ बनाया गया।" (वारिस, १६६ अ०)।

हुआ और उसने अपने पक्ष को इतने प्रभावशाली ढग से उपस्थित किया कि दारा और शाहजहाँ की आँखो से आँसू टपक पडे। हिन्दु दर्शन-शास्त्र के अध्ययन मे उन्नति से और हिन्दु संन्यासियो और योगियो की संगत से हिन्दुओ के प्रति उसकी मानसिक सहानुभूति उनके हितार्थ सक्रिय रुचि के रूप मे विकसित हुई।

औरंगज़ेब ने अपने को इस्लाम का युद्ध-शील प्रचारक प्रकट किया जो वास्तव मे अन्य धर्मों का तिरस्कार करता हो। उसकी आयु के साथ-साथ इस तिरस्कार की तीव्रता भी बढती गयी। जब वह गुजरात का राज्यपाल था, उसने चिन्तामणि के प्राचीन मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया और वहाँ पर गायो का वध करके उसने अपने धर्मान्ध क्रोध का परिचय दिया। उसने गुजरात से योरुप को शोरे का निकास बन्द कर दिया क्योकि इस अल्पव्यस्क कल्पनाशील सर्वइस्लामवादी को भय था कि ईसाई लोग इससे उस्मानी तुर्को के समान भक्त सुन्नियो को मारने के लिये युद्ध-सामग्री तैयार करेंगे। परन्तु शाहजहाँ ने इन कार्यों के लिए अपनी अनुमति न दी, मन्दिर, कहा जाता है, पुनः हिन्दुओ को वापस दे दिया गया। जब वह द्वितीय बार दक्षिण का महाराज्यपाल हुआ उसने सतारा की पहाडी पर (औरंगाबाद के समीप) स्थित खाण्डेराव के मन्दिर को नष्ट कर दिया।

अपने मित्रो को सहायता पहुँचाने की इच्छा के कारण औरगज़ेब दरबार में अपने प्रभाव का उपयोग करने मे सकोच न करता, और उसका अभिप्राय यह होता कि उन हिन्दुओ के प्रति जो अपने दुःखो का प्रतिकार चाहते थे, न्याय का द्वार बन्द कर दिया जाये। उसके आरम्भिक हिन्दु-विरोधी भाव का एक अनुरूप उदाहरण निम्नाकित है। यह एक पत्र मे प्रकट है जो उसने अपने मित्र सादुल्लाखाँ को लिखा था—"बिहार नगर के सम्पत्ति-कर के कानूनगो छबीला नामक ब्राह्मण ने रसूल के विषय मे कुछ अनुचित शब्द कहे थे। सम्राट् की आज्ञा से आरोप की जाँच करके प्रमाणित करने के बाद ज़ुल्फिकारखाँ और अन्य स्थानीय अधिकारियो ने उसको प्राण-दण्ड देकर नरक को भेज दिया जैसा कि न्याय की माँग थी तथा अपने अशुद्ध जीवन से जिस स्थान को वह बहुत समय से अपवित्र बनाये हुए था उस स्थान को उन्होंने शुद्ध कर दिया। मुझे आशा है कि इन तथ्यो से आप परिचित है।"

"अभी मुल्ला मोहन[1] ने जिसके साथ मेरे सम्बन्ध को आप नही जानते हैं,

---

१—वास्तविक नाम मुहिउद्दीन है, उसका जन्म बिहार में हुआ था, ६ वर्ष की आयु में उसने क़ुरान् को कण्ठस्थ कर लिया था सम्राट् शाहजहा की सेवा में भरती हो गया तथा राजकुमार औरगजेब का शिक्षक नियुक्त हुआ शेख़ वाजउद्दीन गुजराती के पौत्र शाह हैदर

और मुराद के बीच मे वह जोडने वाली कडी था। दिसम्बर, १६५२ मे शुजा और औरंगजेब अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आगरा में आकर परस्पर मिले और तीन दिनो तक उन्होने एक दूसरे का आदर-सत्कार किया और उनकी मैत्री शुजा की कन्या गुलुखबानू की औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मुहम्मद के साथ सगाई से और भी पुष्ट हो गई। जब औरगजेब मालवा के प्रान्त से होकर जा रहा था, दोराहा के स्थान पर मुरादबख्श आकर उससे मिला (२३ दिसम्बर, १६५२)। उस समय से औरगजेब के प्रान्त से होकर सघातियो मे अविलम्बित पत्र-व्यवहार होता रहा और औरगजेब इस संघ का एक प्रकार का सचिव हो गया। शाहजहाँ ने अपने कनिष्ठ पुत्र मुरादबख्श[1] की ओर कभी अधिक ध्यान न दिया था, परन्तु शुजा और औरगजेब मे इस वैवाहिक सम्बन्ध को वह सन्देह की दृष्टि से देखता था। सुल्तान मुहम्मद की सगाई पर शाहजहाँ तथा औरगजेब मे कटु पत्र-व्यवहार से हमारे मन मे कोई सन्देह नही रह जाता है कि शाहजहाँ ने औरंगजेब को इस बात का शीलपूर्वक स्पष्ट और सबल संकेत दिया कि इस सगाई को छोड देने पर वह प्रसन्न होगा। औरगजेब के विरुद्ध अपनी कृपा और विश्वास मे शुजा को लेकर शाहजहाँ ने यह भी प्रयत्न किया कि वह उसको अपने पक्ष मे मिला ले। उसने शुजा से शिकायत की कि दक्षिण मे औरगजेब का प्रशासन असफल हो गया है और उसको दक्षिण के पाँच सूबो की सूबेदारी का पद देने को कहा यदि राजकुमार बगाल और उडीसा के बदले में उनको लेना चाहे।

दिसम्बर, १६५७ के मध्य में मुराद ने औरगजेब को एक पत्र लिखा जिसकी सम्पूर्ति अधिक गुप्त प्रकृति के एक मौखिक सन्देश द्वारा की गई, और यह सन्देश उसके एक विश्वासपात्र प्रतिनिधि द्वारा भेजा गया। विचित्र सयोग-वश उसी समय पर उसी आशय का एक पत्र औरगजेब ने मुराद को लिखा था और उसकी सम्पूर्ति भी उसी आशय के एक मौखिक सन्देश द्वारा की गई थी और यह भी एक विश्वासपात्र सन्देशवाहक द्वारा भेजा गया था। करीब एक मास पहले (१६ अक्तूबर, १६५७) मुराद ने औरगजेब के प्रान्त से होकर

१—कहा जाता है कि शाहजहाँ ने एक बार टिप्पणी की थी कि मुरादबख्श को केवल 'अपने शरीर को पुष्ट करने की' (तनपरवरी) चिन्ता थी। यह बात मुरादबख्श के सम्बन्ध में पूरी तरह सत्य न थी। अपने चरित्र में वह मध्य एशिया का अनुरूप तुर्क था—निर्णायक बुद्धि और शिष्टाचार में अकुशल, परन्तु पाशविक साहस तथा शारीरिक बल में सम्पन्न। और वह सदैव यह डींग हाँकता था 'अजमन कसे बहादुर निस्त'—अर्थात मुझसे अधिक साहसी और कोई नहीं है। मुरादबख्श राजकीय परिवार का 'कपटी पुरुष' समझा जाता था। प्रत्येक कार्य में जो उसको दिया गया वह असफल रहा।

एक पत्र शुजा को भेजा था। इस गुप्त पत्र-व्यवहार का उद्देश्य यह था कि उनके समस्त उद्योग केन्द्रीभूत कर दिये जाये कि वे उस संकटपूर्ण परिस्थिति का सामना कर सके जो उनके पिता की रुग्णता के कारण तथा दारा के द्वारा तथाकथित अधिकार अपहरण के कारण उत्पन्न हो गई थी। इस प्रकार अधीर मुराद के उपक्रम से रक्षात्मक मैत्री आक्रमणात्मक सन्धि मे परिवर्तित हो गई। यह स्पष्ट था कि यह सन्धि उनके राज्यापहारक ज्येष्ठ भ्राता के विरोध मे की गई थी। संघातियो का पहला कार्य सहायक सेवको द्वारा डाक की एक शृङ्खला स्थापित करना था जो अहमदाबाद, औरगाबाद तथा राजमहल को सम्बन्धित कर दे जिससे समाचार शीघ्र ही पहुंच जाया करे। जैसे ही शाहजहाँ की रुग्णता का समाचार औरगजेब को प्राप्त हुआ, उसने अत्यन्त प्रबल उद्योग किया कि नर्मदा के दक्षिण मे उसके मित्रो और पक्षपातियो से दारा का सम्बन्ध विच्छेद हो जाये। औरगजेब ने अपनी योजनाओ तथा प्रगतियो के विषय मे शाही दरबार को सफलता पूर्वक अज्ञान मे रखा, उसको अपनी बहन रोशनआरा बेगम से राजधानी मे राजकीय रहस्यो के और दारा के उपायो के वृत्तान्त प्राप्त होते रहते थे। शाहजहाँ की अन्तिम सन्तान गौहर-आरा की भी अपनी महत्वाकाक्षायें थी तथा दरबार की गति-विधि से वह मुराद को नियत रूप से सूचित कर देती थी। इसके अतिरिक्त औरगजेब ने उत्तरी भारत के प्रत्येक भाग मे अपने विश्वस्त गुप्तचर छोड रखे थे जो आवश्यक समाचार को नर्मदा पार उसको किसी न किसी प्रकार भेज देते थे।

तीनो छोटे भाइयो मे सामान्य सहमति के अतिरिक्त मुराद और औरंगजेब के बीच मे एक और निकट की सन्धि थी। वे दोनो शुजा को अपना भावी शत्रु समझते थे। इसके पहिले ही २३ अक्तूबर, १६५७ को औरगजेब ने मुराद को एक गुप्त लिपि की कुजी भेजी जिसका उपयोग उनके भावी पत्र-व्यवहार मे होने को था। दारा को विधर्मी और मूर्तिपूजक कहकर औरगजेब उसकी खुले रूप से निन्दा करता था, वह गुप्त रूप से अपने मूर्ख सहकारी मुराद को यह कह कर शुजा की निन्दा करता कि वह 'फीजी' अर्थात् विधर्मी शिया है। मुराद की यह कहकर वह चाटुकारी करता कि वह शासन के लिये अत्यन्त योग्य है। वह कहता कि उसी के निमित्त वह प्रयत्नशील था। परन्तु राजगद्दी का पात्र समझा जाने के लिये मुराद को, जो अपने अधर्म के लिये कुख्यात था, उसने यह उपदेश दिया कि जनता के समक्ष वह अपने को कट्टर सुन्नी और इस्लाम का रक्षक प्रकट करे। "वास्तव मे अपने व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा के युद्ध को धार्मिक रूप देने की औरगजेब की नीति मे मुराद इतना फँस गया कि उसके पत्रो में धार्मिक दभ का स्वर प्रवेश कर गया जिस पर हँसी आ सकती है।" 'औरंगजेब से संकेत

लेकर अहमदाबाद का प्रसन्नचित्त विलासी अपने को इस्लाम का रक्षक प्रकट करता है, वह दारा को धमकी देता है कि पवित्र धर्म का शत्रु होने के कारण वह उसका उन्मूलन कर देगा, वह अपने ज्येष्ठ भ्राता को मुल्हिद (अनेकेश्वर-वादी) कहता है—यह वही शब्द है जिनका उपयोग औरंगजेब और उसके दरबारी इतिहासकार दारा के सम्बन्ध मे करते थे।" (औरंगजेब का इतिहास, I पृ० ३०२) तो भी मुराद को कुछ सन्देह हो गया कि राजनीति मे उसका पीर (मार्ग-दर्शक) कही ईश्वर और मनुष्य के प्रति अपने "छल" के सिद्धान्त के अनुसार उससे भी छल का आचरण न कर रहा हो। उसने औरंगजेब को विवश किया कि सहमति का पवित्र व्यवहार-पत्र लिख कर उसको भेजे, जिसमे वह पारस्परिक सहकारिता की शर्तो का स्पष्ट उल्लेख करदे। उत्तर-भारत को अपने प्रयाण के ठीक पहले औरंगजेब ने मुराद की बढती हुई शंका को शान्त करने के लिये उसके पास एक अहदनामा (प्रतिज्ञा-पत्र) भेजा जिसका आशय था कि काफिर (अविश्वासी) दारा के परास्त हो जाने पर मुराद को पंजाब, सिन्ध, कशमीर तथा अफगानिस्तान के प्रान्त मिलेंगे। यह प्रतिज्ञा-पत्र इन पवित्र शब्दो मे समाप्त हुआ—" बिना लेशमात्र के विलम्ब के मै आपको इस प्रदेश मे जाने की आज्ञा दे दूँगा। इस इच्छा के सत्य के प्रमाण मे मै ईश्वर और रसूल की साक्षी देता हूं।"

विभाग ५—शाहजहाँ की रुग्णता (सितम्बर, १६५७)

शाहजहाँ के स्वास्थ्य मे १६५७ की ग्रीष्म ऋतु मे ह्रास के चिह्न प्रकट हो गये। वह ६ सितम्बर को सख्त बीमार हो गया और सात दिनो तक दारा और थोडे से उच्च अधिकारियो के अतिरिक्त, जो उसके विश्वासपात्र थे, कोई अन्य व्यक्ति उससे मिलने न पाया।' दारा के कुछ हितैषियो को छोड़कर सबने उसके जीवन की आशा छोड़ दी। बहुत लोगो ने तो यह विश्वास करने से इन्कार कर दिया कि वह अब भी जीवित है और यह उस समय की बात है कि जब १४ सितम्बर को उसने अपने शयनागार के नीचे एकत्र आशामय जन-समूह को अपना दर्शन दिया। जनता को पुनः विश्वास दिलाने के लिये एक दरबार किया गया और दारा को, जिसने शक्यता की चरम सीमा तक अपने पिता की सेवा की थी (जो ईश्वर की उपासना का उत्तम प्रकार है) १० हजार जात, १० हजार सवार, दो अस्पाह, सेह (तीन) अस्पाह, कुल मिलाकर ५० हजार जात की अपने मन्सब मे वृद्धि पुरस्कार रूप मे दी गई तथा ढाई लाख रुपये का और भी इनाम उसको प्राप्त हुआ। अपनी उपस्थिति मे कुछ विश्वासपात्र दरबारियो और राज्य के मुख्य अधिकारियो को बुलाकर उनके समक्ष उसने अपना अन्तिम इच्छा-पत्र लिखा और उनको आज्ञा दी कि उस समय से दारा के आज्ञा-वश रहे—"प्रत्येक

व्यवहार मे सर्वदा और सर्वत्र वह उनका राजा था''— (कामबुह ८ ब०) । १८ अक्तूबर को अपने स्वास्थ्य का पुन. लाभ करने के लिये सम्राट् आगरा से चल दिया । इस बीच मे दुष्टता अपना कार्य पूरा कर चुकी थी । अपने पिता के स्वास्थ्य-लाभ के समाचार पर छोटे राजकुमार अपने हृदय मे हताश हो गये, जनसाधारण के समक्ष उन्होने इस प्रतिकूल सत्य का विश्वास करने से इन्कार कर दिया कि वास्तव मे शाहजहाँ जीवित है । दरबार से आये हुए प्रत्येक पत्र पर उनको सन्देह होता कि या तो वह कपट-पत्र है या दारा के दबाव से लिखा गया है । उन्होने छद्मरूप से कहा कि उस द्वेषपूर्ण जन-प्रवाद मे उनको विश्वास है कि वह निर्बलकाय व्यक्ति, जो प्रतिदिन राजमहल के झरोखे मे जनता का प्रणाम ग्रहण करने उपस्थित होता था, कोई बूढा खोजा था जो राजसी वस्त्र धारण कर लेता था और जिसको राज्यापहारक दारा मृत्यु-प्राप्त शाहजहाँ बनाये हुए था । उन्होने दारा[1] के विरुद्ध असत्य तथा अत्यन्त हानिकारक प्रचार प्रारभ कर दिया । वे कहते कि दारा ने सर्वोपरि सत्ता का अपहरण कर लिया है तथा उनके पिता को परवश बन्दी बना लिया है । जहाँनारा के पत्र भी उनका निवारण न कर सके, जिसने यह प्रयत्न किया था कि अपने भाइयो मे शान्ति स्थापित कर दे । चूँकि वे युद्ध के लिये तैयार थे और दारा तैयार न था, वे इस अवसर को छोडना न चाहते थे कि अपने घृणा-पात्र प्रतिद्वन्द्वी को सदा-सर्वदा के लिये पद-दलित कर दें । दुखी सम्राट् ने इस भयावह जल-प्लावन को आश्चर्य-सहित आते देखा—अपनी मृत्यु के बाद नही, परन्तु अपनी आँखो के मूँदने के पहले ही ।

१—दारा के विरुद्ध निकृष्ट तथा अत्यन्त निरर्थक मिथ्या वचन बर्नियर के पत्रों में देखे जा सकते है (कॉन्स्टेबल कृत 'बर्नियर और उसकी यात्रायें'—पृ० २५-२६) । उसको अपनी जानकारी अपने आगा—दानिश्मन्दखाँ—से प्राप्त हुई थी जो औरंगजेब का बदनाम पक्षपाती था । उसके द्वारा उपस्थित किया हुआ वृत्तान्त मिथ्या वचनो तथा द्वेष-पूर्ण निन्दाओं से भरा पड़ा है जो खण्डन के भी योग्य नही है ।

अध्याय ६

राजगद्दी के निमित्त संघर्ष

विभाग १—शाहशुजा के विरुद्ध सुलेमानशिकोह का अभियान

(दिसम्बर, १६५७—मई, १६५८)

राजकुमार मुहम्मद शुजा, दारा से केवल १३ मास छोटा था। वह अपने प्रिय पितामह जहाँगीर का पूरा प्रतिरूप था। वह उसके साथ १२ वर्ष की आयु तक रहा था। बुद्धि से तीक्ष्ण, प्रकृति से आलसी तथा स्वभाव से भोगी-विलासी शुजा बाह्य और आन्तरिक गुणो मे पूरा राजकुमार था और अपनी समस्त त्रुटियो के होते हुए भी अपने पितामह की भाँति वह विशिष्ट रूप से प्रेम का पात्र था। शाहजहाँ के पुत्रो मे मानसिक और नैतिक गुणो तथा रुचियो और अनुरागो के सम्बन्ध मे दारा तथा औरगजेब के बीच मे उसकी स्थिति मध्य की थी, क्योकि वह चतुर सैनिक तथा सन्तुलित राजनीतिज्ञ था और उसमे सुन्दर मानुषी सहानुभूति का पुट भी था जिसका इतना शोचनीय अभाव औरगजेब के चरित्र मे था। परन्तु उसकी योग्यता और क्षमता कभी-कभी ही थोडे समय के लिये प्रकट होती जब कि उसकी निर्बलता प्रायः सदैव उसको घेरे रहती। विश्राम के प्रति शुजा के प्रेम ने तथा जीवन के सुसस्कृत आनन्दो के उपभोग ने निस्सन्देह कुछ अश तक उसकी सुन्दर क्षमता को नष्ट कर दिया था। परन्तु औरगजेब के प्रमाण पर कोई भी व्यक्ति शाहजहाँ की तथाकथित टिप्पणी पर विश्वास नही कर सकता है कि शुजा मे जीवन के उपभोग के अतिरिक्त और कोई गुण नही था (जुज सयारचश्मी सिफ्ते न-दारद)[१]। शुजा की महत्वाकाक्षा की जन्मदात्री बगाल की भूमि उसकी शक्ति की समाधि भी बन गई। वहाँ पर अपने १७ वर्ष के निर्विघ्न शासन-काल में शुजा और उसके साथी बंगाल के नरम साँचे मे ढलकर अपने शरीर तथा मस्तिष्क मे बदल गये थे। शान्ति, समृद्धि तथा रोग की उस भूमि मे उद्योग तथा कर्म के अभाव के कारण उनकी तलवारे अपनी मियानो मे पड़ी-पडी मोरचा खा गई थी। वहाँ पर राजकुमार ने मन खोलकर और जी भर कर आनन्द का उपभोग किया और परिणाम स्वरूप ४१ वर्ष की ही आयु मे 'चमेली के फूल ऐसी छोटी-छोटी चीजे उसको न दिखाई पड़ती थी।'[२]

१—औरगजेब का पत्र-फ़—३८ अ०।

२—शुजा के चरित्र के विषय में बर्नियर का अनुमान सार रूप से यथार्थ है—"सुल्तान शुजा अपने चरित्र के अनेक स्वाभाविक गुणों में अपने भाई दारा के सदृश था। परन्तु वह अधिक चतुर था, अपने कार्य में अधिक सुदृढ़ और आचरण तथा व्यवहार में अधिक निपुण।

शुजा अपनी प्रान्तीय राजधानी राजमहल मे था जब कि प्रवाद द्वारा वास्तविक मृत्यु मे परिवर्धित होकर शाहजहाँ की बीमारी का समाचार उसको प्राप्त हुआ। उसने तुरन्त ताज धारण कर लिया और चूँकि उसकी तैयारी पहले से ही प्रायः पूरी हो चुकी थी, बगाल की सेना शीघ्र ही बिहार के प्रान्त मे प्रवेश कर गई। गगा नदी पर तैरती हुई युद्ध-नौकाये उनकी युद्ध-यात्रा का साथ दे रही थी। दारा के द्वारा बहुत दबाव डालने पर वृद्ध सम्राट् बहुत अनिच्छा से इस पर सहमत हो गया कि शुजा के विरुद्ध एक सेना भेजी जाये। वह इस भ्रम मे था कि विद्रोही राजकुमारो को भयभीत करने के लिये उसके फरमान (आज्ञाये) ही पर्याप्त है। दिसम्बर, १६५७ के अन्तिम सप्ताह मे राजकुमार सुलेमानशिकोह को २२ हजार सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और मिर्जा राजा जयसिंह को उसका सरक्षक और मुख्य परामर्शक नियुक्त किया गया। सम्राट् को आशा थी कि यह अभियान सुलेमान के लिये केवल एक आनन्दमय प्रदर्शन होगा, परन्तु दारा के हृदय मे उसकी अपनी शकाएँ थी। अतः इस सुदूर अभियान पर अपने पुत्र के अधीन सेवा करने के लिये उसने सर्वोपरि निष्ठावान् तथा योग्य निजी सैनिको को भेजा, परन्तु यह अदूरदर्शी, आवेशपूर्ण तथा अविचार पूर्ण कार्य सिद्ध हुआ।

बहुत हर्ष तथा उत्साह से सुलेमानशिकोह सतत् प्रयाणो द्वारा वाराणसी की ओर बढा और अपने वृद्ध सरक्षक को प्रेरित करता रहा कि अविलम्ब आकर उसके साथ हो जाये।[१] परन्तु राजकीय दल के अधिकारियो का उत्साह इतना तीक्ष्ण न था क्योकि उनके प्रस्थान समय सम्राट् ने उनसे प्रार्थना की थी कि रक्त-पात से विमुख रहे, यदि शुजा बिहार से शान्तिपूर्वक वापस होने पर तैयार किया जा सके। दारा तो तीव्र तथा निर्णायक युद्ध का उत्सुक था; परन्तु सम्राट् की इच्छा से यह दूर की बात थी, क्योकि सम्राट् को अपने विद्रोही पुत्र के प्राण नष्ट होने का भय था। इस प्रकार उन सैनिको को जो लडने गये यह पता न था कि किस को प्रसन्न करें। अतः उनमे उद्देश्य का ऐक्य न था। मिर्जा राजा सावधान राजनीतिज्ञ था। उसको सन्देह था कि सम्राट् के नाम

षडयन्त्र के प्रबन्ध में वह पर्याप्त रूप से सिद्ध-हस्त था तथा बारम्बार के गुप्त दानों द्वारा उसको पता था कि बडे-बडे सामन्तों की मित्रता कैसे प्राप्त की जाती है जैसे जसूमसिंग (अशुद्ध-जसबन्तसिंह नहीं, परन्तु मिर्जा राजा जयसिंह)। तब भी वह भोग-विलास का दास था और यदि उसकी स्त्रियाँ एक बार उस के पास आ जायें, तो वह अनेक दिन और रातें नृत्य, सगीत तथा मदिरापान में व्यतीत कर देता। इन स्त्रियों की सख्या भी विशाल थी।'' (कान्सटेबल कृत 'बर्नियर की यात्रायें'—पृ० ८)

१—जयपुर के पत्र—देखो फारसी पाठ्य, पृ० ५३।

पर, बिना उसके अनुमोदन के और उसके पीठ पीछे, कही दारा, शुजा के विरुद्ध सेवा-कार्य पर नियुक्त अधिकारियो को ऐसी कार्यप्रणाली की आज्ञा न दे दे जो उसके स्वामी की निगाह मे उसकी स्थिति को सशयस्थ कर दे। अत. उसने अपने पुत्र रामसिह को अपना वकील बनाकर दरबार मे छोड दिया। उसका कर्तव्य था कि सम्राट् के आदेशो की सूचना वह सीधे उसके पास भेजे। शाही सेना के प्रयाण के ठीक बाद शुजा ने अपने पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता को पत्र लिखा जिसमे उसने अपने कार्य के समर्थन के लिए निःसार कारण बताये और मुँगेर के अनुदान की प्रार्थना की जो दारा के बिहार के प्रान्त का भाग था। दारा 'तैयार था कि अपने भाई शुजा को मुँगेर का गढ दे दे। परन्तु इस शर्त पर कि मुँगेर के गढ को तोड देने पर वह सहमत हो जाये और इस बात पर कि वह तथा उसके पुत्र वहाँ पर न रहेगे।[1] युवराज के इस उचित प्रस्ताव पर भी और सम्राट् द्वारा उसके अपराधो की प्रेमपूर्ण क्षमा पर भी शुजा ने अपनी शत्रुतुल्य प्रगति जारी रखी तथा इलाहाबाद के प्रान्त पर आक्रमण कर दिया। अपने छोटे पुत्रो के वास्तविक उद्देश्यो के प्रति अब बहुत दुखपूर्वक शाहजहाँ का भ्रम दूर हुआ। अब उसको पता चला कि दारा को पद-दलित करने के लिये वे परस्पर मिल गये थे तथा उसके जीवनकाल ही मे राजसिंहासन के निमित्त वे युद्ध पर कटिबद्ध थे। वृद्ध सम्राट् का क्रोध भभक उठा और उसकी कटु भावनाओ की सूचना मिर्जा राजा को एक पत्र मे दे दी गई। दारा उसमे लिखता है—"सम्राट् की बहुत इच्छा है कि उस धृष्ट (बे अदब) दुष्ट का सिर काट कर उसके पास लाया जाये "। दारा द्वारा रचित असन्दिग्ध असत्य समझकर हम इस पर कुछ भी विश्वास न करते यदि जन-साधारण के समक्ष रामसिंह को ये शब्द न कहे गये होते, जैसा कि हमको एक बाद के पत्र से मालूम हुआ है, कि—"अपनी ही पवित्र जिह्वा से सम्राट ने कुँवर रामसिंह को कहा—'अपने पिता को लिख दो कि मै उस असभ्य तथा अयोग्य दुष्ट का सिर चाहता हूँ ' ' मुझको आशा है कि ये शब्द कुँवर ने आप को अवश्य लिख भेजे है।"[2]

मिर्जा राजा जयसिंह को प्रसन्न करने मे दारा ने अपने प्रशंसा-वाक्यो तथा प्रबोधक शक्तियो के कोष को नि.शेष कर दिया जिनकी पूर्ति स्वप्नो के शुभ शकुनो, आकाशवाणियो तथा ज्योतिष की भविष्यवाणियो द्वारा की गई थी। राजकुमार लिखता है—"दैवी प्रेरणा की भाषा मे सम्राट् ने कहा जिस प्रकार राजा मानसिंह ने मिर्जा हकीम को विजित तथा पद-दलित किया

१—जयपुर के पत्र—देखो फारसी पाठ्य, पृ० ५४।

२—जयपुर के पत्र—देखो फारसी पाठ्य, पृ० ६६, ७१।

था, ईश्वर की इच्छा से मिर्जा राजा इस असभ्य तथा मन्द भाग्य दुष्ट को पद-दलित कर देगा।[१] अगले ही दिन दारा ने उसको उसकी सफलता के सम्बन्ध मे अधिक शुभ भविष्यवाणियाँ भेजी। "दृष्टि से (सूफी की) तथा ज्योतिष की पुस्तकों से मुझे पता चलता है और इसकी सत्यता मे मुझे दैवी मार्ग-प्रदर्शन द्वारा दृढ विश्वास है कि यह महान् विजय वह व्यक्ति निष्पादित करेगा जो योग्य व्यक्तियो में योग्यतम है।[२] तब भी मिर्जा राजा यथा पूर्व स्तब्ध तथा विरक्ति पूर्वक केवल नियमानुसारी बना रहा और उसके आचरण से सन्देह भी उत्पन्न हुआ जिसकी सूचना सुलेमानशिकोह ने दरबार को भेज दी। परन्तु सम्राट् तथा युवराज ने सुलेमान को डाँट लगाई और राजा के प्रति अपने विश्वास के प्रमाण में दारा ने उसको लिखा—"सम्राट को सन्देह है कि यह बात शत्रुता के कारण लिखी गई होगी। अतः मेरे पुत्र को आदेश हुआ है कि भविष्य मे उधर से जो समाचार-पत्र आये वे स्वय महान् राजा के हाथ के लिखे हो कि सम्राट् उनकी यथार्थता और प्रामाणिकता स्वीकार कर सके।"[३]

राजकुमार सुलेमानशिकोह २२ वर्ष का शक्तिशाली तेजस्वी नवयुवक था। वह अपने संरक्षक के प्रति ध्यानपूर्वक विनय-भाव से आचरण करता था, परन्तु यह आशा न की जा सकती थी कि वह जयसिंह की इच्छा-वश उसका दास बन कर रहेगा। अभियानक सेना के मुख्य आज्ञापक के अपने पद को उसने व्यवहार मे प्रकट कर दिया तथा अपनी स्फूर्ति और आशावाद से अपने सहकारियो मे उत्साह और विमलता के अभाव की उसने पूर्ति करदी। दो सप्ताह के प्रोत्साहित प्रयाण से वह अपना दल लेकर वाराणसी पहुँच गया और तीन दिन तक उस नगर मे ठहरा रहा। २४ घण्टो मे गगा के ऊपर नावो का पुल बाँध दिया गया और तुरन्त पश्चात् राजकुमार नदी पार कर उसके दूसरी ओर पहुँच गया। चाचा और भतीजे मे बनारस के लिये दौड हो रही थी क्योकि शाही सेना की प्रगति अनिश्चित काल के लिये बनारस पर रोकी जा सकती थी यदि शुजा नदी के दूसरे तट पर जम जाता जिसके साथ-साथ बडी जंगी सड़क चुनार होकर पटना तथा राजमहल को जाती थी। सुलेमान ने एक सप्ताह तक बहादुरपुर में अपना पडाव डाला। बनारस मे रेल के पुल के उस सिरे से, जो नदी के दाहिने तट पर है, दो मील पर यह एक गाँव है। यहाँ पर कन्नौज का फौजदार, वीर और निष्ठावान् रुहेला सरदार दिलेरखाँ शाही सेना मे सम्मिलित हो गया और

१—देखो-जयपुर के पत्र-फारसी पाठ्य, पृ० ६४।
२—देखो-जयपुर के पत्र-फ़ारसी पाठ्य, पृ० १३७।
३—देखो-जयपुर के पत्र-फारसी पाठ्य, पृ० ६१।

अधिकारियो और साधारण सैनिको मे उसने एक नई शक्ति और विश्वास का सचार कर दिया ।

इस बीच में अपनी सेना और बेड़ा लेकर शुजा उनके पडोस मे पहुँच गया (२५ जनवरी, १६५८) और एक सुगृहीत स्थान पर उसने अपना शिविर स्थापित किया । यह स्थान दुर्गम था क्योकि उसके सामने बहुत से नाले और घने जगल थे, और पीछे की ओर गगा नदी थी जिस पर उसके युद्ध-पोतो का अधिकार था । साम्राज्यवादियो के सम्मुख अब यह समस्या उपस्थित थी कि विद्रोही सेना को किस प्रकार जम कर लड़ने पर विवश किया जाये जिसको उसके सुदृढ स्थान से भूखा मार कर भगाया न जा सकता था क्योकि उसको अपनी अन्न-सामग्री नदी के मार्ग से मिल जाती थी । जब दरबार से आवश्यक पत्र आये कि उस क्षेत्र मे युद्ध समाप्त कर दिया जाये, सुलेमान अधीर हो गया । मिर्जा राजा युद्ध की कोई विशेष योजना परिपक्व न कर सका था तथा अपनी रक्षा के निमित्त प्रस्तुत रहने के अतिरिक्त और कोई अन्य उपाय उसको न दीख पड़ता था । गोकलत (गोकुल ?) उज्जनिया नामक एक स्थानीय राजपूत (अर्थात् डुमराओ के जमीदार परिवार का) को एक मन्सब देने का प्रलोभन दिया गया कि वह अपने आदमियो को जगल काटने और शत्रु की सामग्री को रोकने मे जुटा दे—परन्तु यह कार्य कष्ट-साध्य तथा निरर्थक था और इसका अर्थ था शुजा की प्रतीक्षा-मूलक चाल के प्रति आत्म-समर्पण करना । फिर भी यह पढना मनोरजक है कि विनाशक कन्धार-अभियान के बाद भी युवराज सैनिक के रूप से अपनी योग्यता के आँकने में अभी तक विनम्र न हुआ था तथा उसने इस संकट-वेला पर मिर्जा राजा को उसी का व्यापार उसको सिखाने का प्रस्ताव किया । उसने मिर्जा राजा को लिखा[1]—"यदि आपने कोई निश्चय नही किया है, तो आप मुझे स्पष्ट लिखे कि मैं यहाँ से किसी योजना का सुझाव दूँ और आपको निर्देश भेजूँ कि क्या करना चाहिये । इस समय वहाँ के जमींदार गोकुल उज्जनिया को आप प्रोत्साहन दे कि वह अपने पैदलो और सैनिको को प्रत्येक दिशा मे भेजे और शत्रु के विपरीत सामग्री और अन्न के सब मार्गों को रोक दे, तथा एक ऐसा ही दल बनारस की ओर भेजा जाये कि वह अनियमित रूप से युद्ध करता रहे और अन्न-सामग्री प्राप्त करने के शत्रु के मार्गों को बन्द कर दे ।" दारा के अगले पत्र में स्पष्ट आज्ञायें है कि तुरन्त कार्य किया जाये तथा तोपखाने को आगे रख कर शत्रु के वनाच्छादित शिविर पर आक्रमण किया जाये ।

अपनी नावो द्वारा प्रचुर खाद्य-सामग्री से युक्त तथा आक्रमण के भय से

१—जयपुर के पत्र—फारसी पाठ्य, पृ० ६६ ।

मुक्त शुजा के सैनिक कुछ दिनो की सावधानता और सतर्कता के बाद अपने शिविर मे निश्चिन्त विश्राम मे मग्न हो गये थे। मनुष्य तथा मच्छर दोनो को समान रूप से अप्राप्य शाह शुजा दोपहर तक सोता रहता था। उसके अधिकारी भी, जो शायद अपनी मच्छरदानियाँ (पश्शखाना) लाना न भूले थे, उतने ही आराम से सोया करते जैसे उनका स्वामी, वे इतनी देर तक चाहे न सोते हो। सदा की भाँति सेना-रक्षक और रात्रिप्रहरी तो थे, परन्तु कोई अधिकारी न थे जो रात्रि मे सन्तरियो को सावधान रखने के लिये चक्कर लगाये। शुजा की रक्षा-टोलियाँ खतरे की सूचनाओ से अनभिज्ञ थी, उत्तर भारत की हेमन्तकालीन ठण्डी रात्रियो के शीत को सहन का उनको अभ्यास न था। अतः उनसे यह आशा न की जा सकती थी कि वे कर्तव्योन्मुख तथा सतर्क रहेगे। यह बात सुलेमानशिकोह के गुप्तचरो से बहुत दिनो तक छिपाई न जा सकती थी।

१४ फरवरी, १६५८ के पहले की रात्रि मे शाही सेना को आज्ञा मिली कि अपने डेरो को उखाड़ने के लिये और एक नये स्थान को कूच कर देने के लिये तैयार रहे जो उनके शिविर के लिये चुना गया था। प्रभात मे जल्दी ही कवचाच्छादित सवारो की एक चुनी हुई टोली अपने साथ लेकर सुलेमान निकल पडा और यकायक शुजा के सोते हुए सिपाहियो पर टूट पडा। अर्धजाग्रत बंगाली सिपाही अपनी प्राण-रक्षा के निमित्त प्रत्येक दिशा मे भाग निकले। शुजा जल्दी से हाथी पर सवार हो गया और अपने सरदारो और सिपाहियो को आवाजे देने लगा, परन्तु उनमे से अधिकाश पहले ही भाग गये थे। विपत्ति के सामने शुजा कायर न था, परन्तु यहाँ पर उसके सम्मुख अनेक शत्रु थे। राजकुमार सुलेमान तथा दिलेरखाँ रुहेला से सर्व प्रथम उसकी भिडन्त हुई और जल्दी ही बाद को मिर्जा राजा जयसिंह तथा अनिरुद्ध गौड शुजा के हाथी के पास पहुँच गये। एक वीर राजकीय सैनिक ने हाथी की टाँग मे गहरा घाव कर दिया। चुस्त महावत बहुत जोर लगाकर हाथी को बेडे की दिशा मे ले गया और इस प्रकार तुरन्त पकड़े जाने से शुजा को बचा लिया। साम्राज्यवादियो को पूर्ण विजय प्राप्त हुई। शेष कार्य तो वध और लूट का था। अपने ही भगोडो की चीत्कारो के प्रति ध्यान न देकर बेड़ा बगाल की ओर चल दिया और अपने असहाय भाइयो को सुलेमान की तलवार और गगा के पानी के बीच मे छोड़ गया। दो करोड रुपयो का लूट का माल साम्राज्यवादियो के हाथो लगा।

दो सामन्त फाजिलखाँ तथा फाखिरखाँ इस शुभ समाचार को सम्राट् के पास २० मार्च, १६५८ को लाये और अगले ही दिन बहादुरपुर के विजेताओं के

लिये पद-वृद्धियो और पुरस्कारो का राजपत्र प्रकाशित हुआ। यद्यपि विजय का श्रेय सुलेमानशिकोह के साहसी उपक्रम को मिलना चाहिये था, परन्तु सम्राट् और युवराज ने बुद्धिपूर्वक समस्त श्रेय मिर्जा राजा को दिया। अब वह ७ हजारी बना दिया गया। वेदान्ती सूत्र "सच्चिदानन्द" से प्रारम्भ कर अपनी अतिशयोक्ति-पूर्ण स्वाभाविक भाषा मे दारा एक पत्र मे लिखता है—"आपने वह काम कर दिखाया है जो राजा मानसिंह भी नही कर सकता था ·· गत सौ वर्षो मे ऐसा विजय आप ही के लिये सुरक्षित रखा गया था।[1] परन्तु राजा के हृदय मे गम्भीर सन्देह अब तक विद्यमान थे। एक पत्र मे उसने शिकायत की कि सम्राट् ने किसी व्यक्ति के द्वेषपूर्ण आरोप पर ध्यान दिया था। आरोप यह था कि राजा ने स्वेच्छा से शाह शुजा को रणक्षेत्र से भाग जाने दिया था। सम्राट लिखता है—"·· ···किसी व्यक्ति ने मुझको ऐसी सूचना न दी। राजा की निष्ठा मे मेरा विश्वास इतना गम्भीर है कि कोई व्यक्ति भी यह दु:साहस नही कर सकता है कि ऐसी कोई चीज मुझ से कहे···· ··"।[2]

शुजा के बाल-बाल बच निकलने के कारण इस सन्देह को समर्थन प्राप्त होता है कि मिर्जा राजा जयसिंह की ओर से कपट हुआ। बाद को यह पता चल गया कि राजा ने इस प्रसिद्ध नियम के अनुसार आचरण किया था कि लड़ते हुओ के पीछे और भागते हुओं के आगे रहना चाहिये। यह निश्चित बात है कि सुलेमानशिकोह के परिश्रम तथा साहसी उपक्रम के द्वारा निष्पादित विजय के फल जयसिंह की विचित्र विलम्बकारिता के कारण नष्ट हो गये। शुजा पटना ५ दिनो में पहुँच गया जब कि मिर्जा राजा को वहाँ पहुँचने मे २० दिन लग गये। सुलेमान अकेले आगे न बढ सकता था क्योंकि वह उस प्रदेश से परिचित न था और वह प्रदेश बहुत दिनो तक शत्रु के अधिकार मे रहा था। राजा के आचरण पर शाहजहाँ ने एक फरमान मे उचित ही आक्षेप किया है

१—जयपुर के पत्र—पत्र न० १७ फारसी पाठ्य, पृ० ७७।

२—फरमान ता० ४ फखरदिन, देखो फारसी पाठ्य, पृ० ८५-८६। जयसिंह द्वारा विश्वासघात की बहुप्रचलित कहानी थी—एक प्रमाण बर्नें के निम्नाङ्कित शब्द है—"परन्तु जयसिंह के समस्त प्रयास कि रण (बहादुरपुर का) न हो निष्फल रह गये यह निश्चय है कि यदि जयसिंह और उसका परम मित्र दलेलखाँ (दिलेरखाँ), जो पठान और श्रेष्ठ सैनिक था, जानबूझ कर पीछे न रह जाते, शत्रु का पूर्ण पराजय होता और उनका मुख्य सेनापति सम्भवतया बन्दी बना लिया जाता। परन्तु राजा बहुत दूरदर्शी था—वह राजवश के कुमार को पकड़ न सकता था उसका कार्य मुगल के आदेशानुसार ही रहा जब उसने सुल्तान शुजा के लिये पलायन के साधन उपस्थित कर दिये।" (कान्स्टेबलकृत-'बर्नें० पृ० ३५ ३६)। यह सम्भव नही था कि बर्नें को इस बात का पता होता कि शाहजहां ने अपना विचार बदल दिया था तथा राजा की ओर से यह सकाम उपेक्षा विश्वासघात थी।

कि शाही सेना को १० दिनो मे पटना पहुँच जाना चाहिये था तथा यदि राजा ने ऐसा किया होता तो शुजा उस नगर से अपना धन न लेजा सकता था और न वह मुँगेर मे अपने को सुरक्षित कर सकता था।[1] मुँगेर के दक्षिण-पश्चिम १५ मील पर सूरजगढ के स्थान पर मार्च, १६५८ के अन्त तक शुजा डटा रहा। जितपुर के मार्ग से जंगलाच्छादित भग्न भूमि मे होकर मन्द गति से शाही सेना ने अपना प्रयाण किया, उसके पार्श्व को उलट दिया, और शत्रु द्वारा रिक्त सूरजगढ के नगर पर अधिकार कर लिया। पूर्व दिशा मे आगे बढने पर गंगा नदी और खडगपुर की पहाडियो के बीच मे तग मैदान पर नव-निर्मित दीवार के कारण उनकी अग्र गति रुक गई। यदि शुजा का पीछा करने मे जयसिह ने उसका आधा भी उत्साह और रण-चातुर्य्य प्रकट किया होता जो उसने बाद को पलायक दारा का कच्छ के रन्न में पीछा करते हुए प्रकट किया, तो उत्तराधिकार युद्ध का परिणाम सर्वथा उलट जाता। शुजा के विरुद्ध युद्ध समाप्त किया जाये—इस आशय की अति आवश्यक प्रेरणाये प्राप्त होते हुए भी मिर्जा राजा मुँगेर की रक्षा-पंक्तियो के सम्मुख अकर्मण्य बैठा रहा और इस बीच मे औरगजेब और मुराद ने अपने दलो को सयुक्त कर लिया तथा धर्मट के स्थान पर महाराजा जसवन्तसिह को विनाशक रूप से परास्त कर दिया (१५ अप्रैल, १६५८)। जब इस पराजय का समाचार शाही सेना को सूरजगढ मे प्राप्त हुआ, मिर्जा राजा अपने घृणित प्रतिद्वन्द्वी जसवन्त की पराजय पर बहुत प्रसन्न हुआ और शायद उसने अपने को बधाई दी कि उसको जसवन्त पर तथा उसके मित्र और आश्रय-दाता दाराशिकोह पर पूर्ण प्रतिशोध प्राप्त हो गया था। सम्राट् ने उसको लिखा कि तुरन्त शुजा से शान्ति कर ले और समस्त राजपूतो को लेकर आगरा वापस आ जाये तथा सुलेमानशिकोह को दारा की निजी सेना के साथ बिहार मे छोड दे। शुजा के वकील मिर्जा जानबेग का राजसी ठाठ से आदर सत्कार करने मे तथा उसके साथ धीरे-धीरे शान्ति-वार्तालाप करने मे राजा ने कई दिन नष्ट कर दिये। 'पूर्ववत् स्थिति' की शान्ति-सन्धि स्थापित की गई तथा ७ मई, १६५८ को इस पर विधिपूर्वक हस्ताक्षर हो गये।।

अन्त में सुलेमानशिकोह की सेना ने अपना पश्चिम का प्रयाण प्रारम्भ किया। यदि मिर्जा राजा और सुलेमानशिकोह हल्का सामान लेकर सपरिश्रम प्रयाण करते—जैसा कि बारम्बार उनको कहा गया था—वे ठीक समय पर आगरा पहुँच सकते थे तथा सामूगढ के रण मे भाग ले सकते थे जो २९ मई, १६५८ को हुआ था। परन्तु जयसिंह जो वास्तव मे विश्वासघाती था, दारा की

१—वही, कॉस्टेबल कृत–बर्नें० पृ० ८६।

रक्षा के निमित्त कोई कष्ट उठाना न चाहता था, और सुलेमान अपने शिविर मे गडबडी तथा अभक्ति के कारण बाधा पड़ने से मिर्जा राजा को पीछे न छोड़ सकता था क्योकि इसमे उसकी समस्त सेना के नष्ट हो जाने का भय था। सुलेमान कई मजिल आगे था। जब वह इलाहाबाद के पश्चिम १०५ मील स्थित कोडा के स्थान पर पहुँचा, सामूगढ का विनाशक समाचार स्पष्ट कपट-रूपधारी विश्वासघातियो को प्राप्त हुआ जिससे वे प्रसन्न हो गये। मिर्जा राजा ने अब अपना कपटवेष उतार फेका तथा विवश सुलेमान को उसके भाग्याधीन छोडकर आगरा को प्रयाण करने के लिये तैयार हो गया। कछवाहा सामन्त द्वारा यह पक्ष-त्याग क्षमा किया जा सकता था, यह समझ कर कि वह आत्म-रक्षा की सहज प्रवृत्ति से प्रेरित था, परन्तु उसने निर्लज्ज होकर परिश्रमपूर्वक यह प्रयत्न किया कि मन्द भाग्य दारा की भक्ति से अन्य अधिकारियो को विमुख कर दे। दिलेरखाँ रुहेला सुलेमानशिकोह के साथ रहने को तैयार था यदि राजकुमार शाहजहाँपुर जाना चाहता तथा रुहेलो की निष्ठा पर विश्वास करता। तदनुसार ४ जून, १६५८ को इलाहाबाद वापस चलने की आज्ञा सुलेमान ने दे दी। इसी बीच मे मिर्जा राजा जो औरगजेब का प्रयत्नशील पक्षपाती था, रुहेला सरदार को यह समझाने में सफल हो गया था कि केवल भावुकता के कारण अपने समस्त भविष्य को दाँव पर लगा देना मूर्खता का काम है। उसने उसको प्रोत्साहित किया कि डूबती हुई नाव को छोड दे। राजा जयसिंह के इस कार्य से विश्वासघात की वह कहानी प्रारम्भ होती है जिसका अन्त मलिक जीवन द्वारा दारा के प्रति विश्वासघात से हुआ। सुलेमान का क्या भाग्य हुआ यह हम आगे लिखेंगे।

विभाग २—धर्मट तथा सामूगढ़ की लड़ाइयाँ

दारा को महाराज जसवन्तसिंह से बहुत आशायें थी। दिसम्बर, १६५७ के अन्तिम सप्ताह मे उसने उसको कासिमखाँ के साथ मालवा को भेजा था और उसको आदेश दिया था कि औरगजेब के विरुद्ध नर्मदा की पंक्ति की वह रक्षा करे तथा मुराद की सेना से उसको सम्मिलित न होने दे। परन्तु औरगजेब की अपेक्षा राठौड सामन्त युद्ध-कला मे केवल नौसिखिया था। उज्जैन से केवल १४ मील पर स्थित धर्मट के पड़ोस मे १४ अप्रैल को वह मुराद की सेना से अपनी सेना को मिला देने मे सफल हो गया। इससे साम्राज्यवादियो को नितान्त विस्मय उत्पन्न हो गया। अगले दिन प्रभात में ४ घण्टे तक धर्मट मे लड़ाई हुई (१५ अप्रैल, १६५८)। जसवन्त की अनुभवहीनता, सिसौदिया तथा बुन्देला दलो की उदासीनता तथा कासिमखाँ के अधीन शाही सेना के

मुस्लिम भाग द्वारा विश्वासघात के कारण इस रण मे औरंगजेब तथा मुराद को निर्णायिक विजय प्राप्त हुई। अपने राठौड़ भाइयो के थोडे से शेष भाग को साथ लेकर जसवन्त जोधपुर को भाग गया। कहा जाता है कि यहाँ पर उसकी गर्व-शीला तथा चेतनाशीला सिसौदिया रानी ने भग्नदर्प वीर का स्वागत करने से इन्कार कर दिया। धर्मट की हार का अर्थ था दारा के लिये दो घातक परिणाम। वह मालवा के एक रण मे परास्त हो गया था। इसके अतिरिक्त शुजा पर प्राप्त सुलेमानशिकोह की विजय के समस्त फलो से अब वह वञ्चित हो गया था। उसके शत्रुओ ने प्रत्येक दिशा मे विद्रोह प्रारम्भ कर दिया, विश्वासघातियो ने अपना कपट रूप उतार फेका तथा उसके मित्र भी उसके पक्ष से विचलित होने लगे।

सामूगढ़ की लड़ाई २९ मई, १६५८

धर्मट की लडाई का विनाशक समाचार दारा को २५ अप्रैल को बलोचपुरा मे प्राप्त हुआ जब वह सम्राट् के साथ दिल्ली को आ रहा था। दरबार तुरन्त आगरा की ओर वापस हुआ तथा संकट वेला का सामना करने के लिये शीघ्र ही तैयारियाँ की गईं। सम्राट ने राजकोष तथा शस्त्रास्त्रागार को दारा के लिये खोल दिया कि अपनी पूर्व-स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिये वह एक दूसरी सेना को सुसज्जित कर सके। अपने योग्यतम तथा विश्वस्ततम निजी अधिकारियो की अनुपस्थिति पर अब दारा को बहुत दुःख हुआ। उसने इनको अपने पुत्र सुलेमान के अधीन रण-सेवा पर भेज रखा था। परन्तु शाहजहाँ भ्रान्त-चित्त की स्थिति मे था—कभी वह दारा को सैनिक-व्यापार पर परामर्श देता और जयसिंह को लिखता कि शीघ्र आ जाये, और कभी वह शान्ति के उस कपटपूर्ण उपदेश को ध्यान मे लाता जिसका औरगजेब के हित मे विश्वासघाती सामन्त प्रस्ताव करते। सम्राट को अब भी आशा थी कि वह औरङ्गजेब और मुराद को कूटनैतिक सन्देशो द्वारा वापस करने मे सफल हो जायेगा। अतः उसने दारा को प्रेरणा दी कि युद्ध को टाल दे। दारा का यह विश्वास पूर्णतया सत्य था कि युद्ध के सशक्त अवलम्बन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था। परन्तु उसके विवेक पर प्रायः उसकी भावना विजयी हो जाती थी। कहा जाता है कि उसने उन लोगो को यह उपालम्भ दिया जो शान्ति का विमर्श देते थे कि वे राजनिष्ठाहीन कायर थे और यह कह कर उसने काटे पर नमक छिडक दिया कि राव सत्रसाल हाडा तथा बर्कन्दाजखाँ (विश्वासघाती जाफर) विद्रोहियो को खरगोशो की तरह नर्मदा के दक्षिण मे भगा देंगे।

अभियान की योजना जिसकी रूपरेखा दारा ने तैयार की यह थी कि चम्बल की पक्ति को सबल रक्षा की जाये, औरगजेब इस नदी को किसी घाट पर पार न करने पाये, तथा कोई भी निर्णायक रण न किया जाये जब तक कि सुलेमानशिकोह की सेना बिहार से वापस न आ जाये। तदनुसार उसने अपनी सेना के अग्र भाग को धौलपुर भेजा और उसको आदेश दिया कि चम्बल के पुलो की रक्षा करे तथा रणयोग्य स्थलो पर तोपखानो तथा दीवारो का निर्माण करे। यदि उसने रुस्तमखाँ बहादुर या राव सत्रसाल हाडा सदृश किसी वीर साहसी, क्रियाशील अधिकारी के अधीन एक भी शीघ्रगामी दल का सगठन किया होता कि समस्त चम्बल की पक्ति पर शत्रु की गति-विधि पर ध्यान रखे, तो औरंगजेब की प्रगति को रोकने मे इससे अधिक प्रभावोत्पादक और कोई योजना न होती।

युवराज ने सम्राट् से १६ मई को आज्ञा प्राप्त की कि वह मुख्य सेना लेकर धौलपुर को प्रस्थान करे। वृद्ध सम्राट् को अपने कॉपते हुए हाथो से अपने प्रेम-पात्र पुत्र को अन्तिम बार पुरस्कार तथा आशीर्वाद देते हुए देखना अत्यन्त हृदय-विदारक दृश्य था। सम्राट् बहुत देर तक अन्तिम आलिगन मे उसको छाती से चिपटाये रहा। अन्त मे शाहजहाँ ने अपनी भुजाओ को उठाया और मक्का की ओर मुख करके दारा की विजय के लिये प्रार्थना की और फातिहा (विजय-प्रार्थना के लिये विहित कुरान के पद) पढ़ा। शास्त्र विहित हिन्दु प्रथा का भी पालन किया गया। दारा को आज्ञा हुई कि दीवाने आम की पक्तियों पर ही वह रथ मे आसन ग्रहण करे जो इस अवसर पर उसके लिये प्रस्तुत किया जाये। झण्डे फहरा रहे थे तथा नगाडे बज रहे थे जब युवराज ने देदीप्यमान अनुचरदल सहित राजभवन के प्राङ्गण से युद्धानुकूल गर्व तथा शोभा धारण किये हुए प्रस्थान किया। एकाकी सम्राट अपनी गदा (असा) के सहारे खडा हुआ था, तथा अपने मन्दप्रभ नेत्रो को सकष्ट खोल कर इस जुलूस को टकटकी बाँध कर देख रहा था कि अपने अत्यन्त प्रेम-पात्र पुत्र का अन्तिम अवलोकन कर सके।

२२ मई को दारा धौलपुर पहुँचा और चम्बल के घाटो की रक्षा-पक्तियो को सुदृढ करने मे व्यस्त हो गया। परन्तु २३ मई को धौलपुर के पूर्व मे ४० मील पर नदी को पार करके औरगजेब ने दारा के पृष्ठ भाग को उलट दिया। परिणामतः दारा पुनः आगरा की ओर मुड गया और उस नगर के ६ मील पूर्व मे सामूगढ के स्थान पर उसने अपनी छावनी डाली। २६ मई को जब औरगज़ेब की सेना की श्रान्त तथा बिखरी हुई अग्रिम टुकड़ियाँ सामूगढ से कुछ

दूर पर दिखाई पडी, दारा अपनी धैर्य-हीन शीघ्रता के कारण रण की पूर्ण सुसज्जा मे अपने दल को लेकर बाहर निकल आया, परन्तु शत्रु की श्रान्त सेना पर बिना तुरन्त आक्रमण किये वह अकारण ही ठिठक गया तथा प्रतीक्षा करने लगा कि औरंगजेब आक्रमण करे। सायकाल को पराजित की दशा मे वह शिविर को वापस आ गया। तेज धूप मे कई घण्टो तक उसने निरर्थक सैन्य संचालन किया था जिसके कारण उसके ताजे और साहसी सैनिक पूर्णतया श्रान्त हो गये थे।

दारा की सेना की कार्यसाधिका-शक्ति सब प्रकार के सैनिको को मिला कर लगभग ६० हजार थी और दोनो विद्रोही राजकुमारो की सैन्य शक्ति ५० हजार से कम न थी। परन्तु निष्ठा तथा श्रद्धापूर्ण सेवा के निमित्त अपनी सेना के अर्ध भाग पर भी दारा विश्वास न कर सकता था क्योकि शाही सेना के विदेशी-दल के सामन्त—अर्थात् ईरान तथा तूरानी—हिन्दुस्तानी दल के सामन्तो—अर्थात् राजपूतो, बारहा के सैयदो तथा हिन्दुस्तान मे जन्मजात अन्य मुसलमानो—के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु थे। ये हिन्दुस्तानी दारा के कृपा-पात्र थे। सामूगढ पर दारा के शिविर मे वस्तु-स्थिति उस स्थिति से भिन्न न थी जो उसके अवरोध शिविर में कन्धार की दीवारो के नीचे थी। सर्वोपरि सैनिक के रूप मे दारा का चरित्र तथा उसका पुराना लेखा इस प्रकार के न थे जिससे उसके अनुचरो मे विश्वास की प्रेरणा हो सके। औरगजेब के विपरीत उसका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक न था। औरगजेब युद्ध मे ही वृद्ध हो गया था और उसके जीवन मे युद्ध तथा षड्यन्त्र के अतिरिक्त अन्य वस्तु का कोई स्थान न था। दारा को वास्तविक युद्ध का बहुत ही कम अनुभव था और उसने कभी भी शत्रु के सम्मुख विशाल सेनाओ का संचालन न किया था। दरबार के कोमल वायुमण्डल मे उसका पालन-पोषण हुआ था, रहस्यवाद तथा दर्शन शास्त्र के अध्ययन में वह युवा अवस्था को प्राप्त हुआ था, वह धारणा-ध्यान तथा साहित्यिक व्यसनो का अभ्यस्त था। सैनिक तथा कार्यकुशल व्यक्ति के रूप मे दारा औरगजेब के सर्वथा विरुद्ध था।

२९ मई शनिवार की प्रभात वेला मे सामूगढ के मृदुल रेतीले मैदान मे रूढ मुगलप्रथा अनुसार दाराशिकोह ने अपनी सेना को सुसज्जित कर दिया। उसका तोपखाना बर्कन्दाजखॉ, मनुची तथा अन्य योरुपीय अधिकारियो के अधीन था। यह समस्त सेना के आगे एक पंक्ति में था और इस तोपखाने के पीछे पैदल सैनिको का एक प्रबल दल था जिनके पास तोडेदार बन्दूकें थी। इनके पीछे ५०० ऊँट थे जिनकी पीठो पर चक्करदार छोटी तोपे थी। इनके पीछे कई सौ उग्र

युद्ध-हस्ती थे जो इतने ही दुर्जेय थे जितने कि कवच-धारी वीर सामन्तगरण। सुरक्षा की इस अभेद्य पक्ति की छाया मे ५ भागो मे विभाजित शेष सेना रण के निमित्त सुसज्जित थी। अग्र भाग मे लगभग १० हजार व्यक्ति थे। सुव्यवस्थित घुड़सवार राजपूत तथा पठान थे और ये राव सत्रसाल हाडा तथा दाऊदखाँ के अधीन थे। अग्रदल और केन्द्र के मध्य के कुँवर रामसिंह कछवाहा तथा सैयद बाहिरखाँ के नेतृत्व मे १० हजार सैनिको का अग्रिम सुरक्षित दल था। केन्द्र मे एक विशाल हाथी पर सवार स्वयं युवराज था। उसके चारो ओर अपने निजी श्रद्धावान ३ हजार सैनिक तथा उसके कम-से-कम दुगुने शाही मन्सबदारो के सैनिक थे। सेना के दक्षिण पक्ष मे १५ हजार योधा थे और वे सर्वथा अविश्वसनीय मध्यएशिया के वेतनार्थी व्यक्ति थे। वे चपल तथा विश्वासघाती खलीलउल्लाखाँ के अधीनस्थ थे। वाम-पक्ष के आज्ञापक राजकुमार सिपिहरशिकोह तथा वीर और निष्ठावान् सामन्त रुस्तमखाँ बहादुर फीरोज जग थे। करीब दो पहर के दोनो सेनाओ का सम्पर्क हुआ और एक घण्टे तक बहुत दूर से तोपखानो की मार होती रही जिसका परिणाम केवल कोलाहल तथा धुआँ और धूल का गहरा आवरण हुआ। औरगजेब की तोपो का उत्तर निर्बल रहा और धीरे-धीरे वे बिलकुल बन्द हो गईं। अपनी त्रुटियो के होते हुए भी दारा का रण-विन्यास रक्षात्मक रण लड़ने के लिये उपयुक्त था तथा औरंगजेब का भी ऐसा ही था। यह स्पष्ट था कि लाभ उस पक्ष को होगा जो रक्षात्मक चाल चल सके और दूसरे को आक्रमण का सफल लोभ दे सके। अपनी ही अनुभवहीनता के कारण या उन चाटुकारो तथा विश्वासघातियो की कुप्रेरणा के कारण जो उसको घेरे हुए थे, दारा ने यह गलत परिणाम निकाला कि बर्कन्दाजखाँ की तोपो ने औरगज़ेब के तोपखानो को बेकार कर दिया था और शायद शत्रु उसकी पक्तियो पर आक्रमण करने से डरता था। अतः उसने निर्णय किया कि एक सर्वव्यापी आक्रमण द्वारा वह उनको तितर-बितर कर दे। रुस्तमखाँ ने वामपक्ष को लेकर तथा खलीलउल्लाखाँ ने दक्षिण पक्ष को लेकर क्रमशः औरगजेब के तोपखाने के एक भाग पर, जो सफशिकनखाँ के अधीन था, और मुराद की सेना पर जो शत्रु के दोनो पक्षो पर थी, आक्रमण कर दिया। सफशिकनखाँ के तोपखाने द्वारा बहुत निकट से आशा विरुद्ध तथा विनाशक अग्नि-वर्षा से स्वागत किये जाने पर रुस्तमखाँ नगी तलवारो सहित अपने १० हजार अनुचरो को लेकर दक्षिण को मुड गया कि औरगजेब के अग्रिम दल पर आक्रमण करे। उसके मार्ग को बहादुर खाँ ने तथा औरगजेब की सेना के अन्य विभागो ने रोक दिया। वे इस आक्रमण को रोकने के लिये अग्रसर किये गये थे। कुछ समय तक तो रुस्तमखाँ अपने सम्मुख सबको परास्त करता रहा और उसने बहादुरखाँ के सैनिको को तितर-

बितर कर दिया । सहसा दारा के नगाडो ने विजय का घोषवाद्य बजा दिया और राजकुमार स्वयं केन्द्र को अपने साथ लेकर वेग से आगे बढा कि अपने विजयी वामपक्ष का समर्थन करे । रुस्तमखाँ के मार्ग का अनुसरण करता हुआ वह औरगजेब के सुरक्षित अग्र दल पर टूट पडा । यह शेखमीर के अधीन था और रुस्तमखाँ के थके हुए सैनिको पर दबाव डाल रहा था । उसने शेखमीर के भाग को भगा दिया तथा रण मे 'अदम्य साहस का स्पष्ट प्रमाण' उपस्थित कर दिया जिसको उसके निन्दको ने भी स्वीकृत किया । परन्तु वह अपने वामपक्ष की रक्षा करने मे असफल रहा जिसका शेष भाग रुस्तमखाँ को वीरगति प्राप्त होने के बाद उसके पुत्र सिपिहरशिकोह के नेतृत्व मे भाग निकला । तो भी किसी सफलता या किसी लाभ से इस बुद्धिरहित कार्य का निराकरण न हो सकता था कि केन्द्र मे अपने स्थान को रिक्त कर दिया जाये । 'समस्त अन्य सम्मिलित कारणो की अपेक्षा अधिक इसने दारा का सर्वनाश कर दिया[१] ।' अब उसकी समस्त सेना पतवार टूटे जहाज की दुरवस्था मे थी । उसकी शक्तिशाली रचना का लोप हो गया, उसके तोपखाने पर कोई व्यक्ति न रह गया, उसके बन्दूकची तितर-बितर हो गये, तथा उसके हाथियो और ऊँटो के दल बहुत पीछे पडकर अकर्मण्य हो गये और उसको कोई सहायता न पहुँचा सके । सक्षेपतः सर्वत्र अव्यवस्था व्याप्त हो गई तथा दारा ने परिस्थिति का नियन्त्रण सर्वथा नष्ट कर दिया ।

अब उसने निश्चय किया कि औरगजेब के दुर्बल केन्द्र पर आक्रमण करके अपने भाग्य की परीक्षा ले, परन्तु जब वह अपने घातक शत्रु पर आक्रमण करने वाला था उसको समाचार मिला कि राव सत्रसाल हाडा की मृत्यु हो गई है और उसके दक्षिण पक्ष मे अव्यवस्था फैल गई है । अतः उसको अपनी योजना छोड़नी पड़ी तथा अपनी पक्ति के सुदूर वामपक्ष से राजकुमार ने मोरचे की सारी लम्बाई पार करना प्रारम्भ किया और उसका पार्श्व शत्रु के बन्दूकचियो तथा तोपखाने की अग्निवर्षा की विनाशक मार मे आगया ।

रुस्तमखाँ के आक्रमण के साथ-साथ खलीलउल्लाखाँ ने दारा की सेना के दक्षिण पक्ष को लेकर मुराद के दल पर आक्रमण किया जो शत्रु की सेना का वामपक्ष था । चूँकि वह हृदय से विश्वासघाती था, उसने आक्रमण करने का केवल बहाना किया । जैसे ही उसने यह देखा कि राव सत्रसाल हाडा तथा दाऊद खाँ की अधीनता मे दारा का अग्रदल मुरादबख्श से कठोर युद्ध कर रहा था शत्रु पर कुछ बाण वर्षा करके वह पक्ति के पीछे वापस चला गया । इस दल ने, जो दारा की सेना का फौलादी अग समझा जाता था, अपना कार्य अति शोभनीय

१—सरकार I ३६५ ।

प्रकार से किया। मुराद के दल पर खलीलउल्लाखाँ के आक्रमण के कोलाहल मे यह एक पच्चड की भाँति औरंगजेब तथा मुराद के दलो के बीच मे घुस गया। राजपूतों ने मुराद को अपने आक्रमण का निश्चित लक्ष्य बना लिया और उसके हाथी के चारो ओर घमासान युद्ध होने लगा। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सामूगढ पर राव सत्रसाल तथा उसके साथी उसी निष्ठा से लडे जिससे कि वाटरलू पर नैपोलियन का रक्षा-दल लडा था। सामूगढ मे राव सत्रसाल की उस वीरता का कोई इतिहासकार पूर्ण वर्णन कर सकने का दावा नही कर सकता जिसको बूंदी के गुण सम्पन्न कवि[1] ने अपनी सरस्वती का उत्कृष्ट विषय स्वीकृत किया। केवल राव सत्रसाल ही नही, परन्तु उसका प्रत्येक अनुचारी राजपूत योधा 'अपने तन को तलवार की धार को अर्पित कर, मन को परमेश्वर मे लगा कर, प्राण को स्वामि-कार्य पर न्यौछावर कर तथा अपने सिर को शिवजी की माला (मुण्डमाल) की मणियो मे जोडकर' लड़ा[2]। सामन्तो के इस वीर दल मे सर्व प्रथम राजा रामसिह ने अपने प्राण न्यौछावर किये।

अपने पुत्र, भाई, तीन भतीजो तथा हाड़ावश के उत्कृष्ट वीरो सहित राव सत्रसाल ने वीर गति प्राप्त की। वे मुराद के विरुद्ध लडे थे और अन्त मे उन्होने मुराद को पीछे हटने पर विवश कर दिया था। शेष राजपूतो ने अपने अन्तिम जीवित नेता राजा रूपसिंह राठौर की अधीनता मे अन्यून क्रोध से औरगजेब पर आक्रमण किया। वह अपने केन्द्रीय दल को लेकर मुराद को सहायता पहुँचाने आ रहा था। इस संकट वेला पर दारा अपने सुन्दर वामपक्ष से अपने सैनिको की सहायतार्थ शीघ्रता से बढा। घोर रण आरम्भ हुआ। चूँकि विश्वासघाती खलीलुल्ला ने अपना मुँह छिपा लिया था, दारा का अग्रदल अब उसका दक्षिण पक्ष बन गया तथा उस का वाम पक्ष सर्वथा नष्ट हो गया था। औरंगजेब दारा के अग्रदल से भिड गया तथा अपने पुत्र सुल्तान मुहम्मद को आज्ञा दी कि उसके अग्रदल के १० हजार ताजा सैनिको को लेकर दारा के श्रान्त तथा व्यवस्था-रहित केन्द्र पर आक्रमण करे। इस समय पर युद्ध इतना असमान हो गया था कि अपनी व्यक्तिगत वीरता तथा अपने अनुचरों

१—बूँदी के १९ वी शताब्दी के कवि तथा 'वश भास्कार' के लेखक सूरजमल मिश्र ने इस काड को सुरक्षित कर रखा था कि वह इस पर एक अलग काव्य लिखेगा, परन्तु यह प्रयास करने के लिये वह जीवित न रहा। इस वश भास्कर को राजस्थान का महाभारत कह सकते है।

२—तन तरवारिन में मन परमेश्वर में।
प्राण स्वामि कारण में, माथो हर-माल में॥

(देखो भूषण कृत 'सत्रसाल दशक,' लाला भगवानदीन की टीका सहित, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय)

की तत्परता द्वारा भी दारा उसका उद्धार न कर सकता था। अग्रदल के राजपूत न केवल संख्या ही मे थोडे से रह गये थे, परन्तु अपने अस्त्र-शस्त्रो मे भी वे शत्रु के समान न रह गये थे, उनके पास केवल भाले, तलवारे तथा कटारे रह गई थी जिनसे उनको अपने शत्रुओ के गोलो तथा गोलियो का सामना करना था। राजा रूपसिह राठौड को औरगजेब के प्राण-हरण करने के प्रयास मे अपने प्राणो से हाथ धोने पडे थे तथा सख्यातीत शत्रुओ के विरुद्ध युद्ध करते हुए उसके समस्त राजपूत मारे गये थे। विश्वासघाती खलीलुल्लाखाँ को १५ हजार सैनिको सहित एक घाव भी न लगा था, वह सर्वथा ओझल हो गया था। केवल दाऊदखाँ के पठानो का थोडा-सा भाग जीवित था जो अत्यन्त प्रयास द्वारा पीछे हटते हुए दारा की रक्षा कर सकते थे। अपने विशालकाय हाथी पर सवार दारा अब औरगजेब के तोपखाने का लक्ष्य बन गया था और निपुण योरुपीय लक्ष्य भेदी इस समय इसको चला रहे थे। अपने मित्रो के अपरिहार्य अति आग्रह पर दारा हाथी से उतर पड़ा तथा घोडे पर सवार हो गया। पर आध घण्टा बाद ही मन्द भाग्य दारा को अपनी भूल का बोध हो गया। परन्तु अब भी वह वीरतापूर्वक डटा रहा, परन्तु वे सैनिक जो अभी तक शत्रु की तलवार से बचे हुए थे इस समय विनाशक लू का शिकार हो गये जो सहसा उनके सामने चलने लगी। दारा व्यथित हो गया और जब उसने अपने विश्वास-पात्र सैनिको को 'पानी-पानी' चिल्लाते हुए विवश होकर मरते हुए देखा, तथा अपने अल्पवयस्क पुत्र सिपिहरशिकोह को फूट-फूट कर रोते हुए सुना, तब दारा का धैर्य छूट गया। जो अपने स्वामी के प्राणो का अपने जीवन की अपेक्षा अधिक मूल्य करते थे, उन्होने अब उसके घोडे की लगाम पकड ली और उसको विवश कर आगरा की सडक पर लगा दिया।

इन तथ्यो के विद्यमान होने पर यह निर्विवाद है कि औरगजेब विजय का उतना ही पात्र था जितना कि दारा पराजय का। तो भी खलीलुल्ला द्वारा विश्वासघात शायद बाद की बात नही है जिसकी चर्चा साम्राज्यवादियो ने अपने पराजय की लज्जा को ढकने के लिये चलायी, जैसा कि औरगजेब के यशः प्राप्त इतिहासकार का विश्वास है। कौन कह सकता है कि युद्ध का क्या परिणाम होता यदि खलीलुल्लाखाँ अपने १५ हज़ार वेतनार्थी मुगल सैनिको-सहित उस दिन सर्वथा अलग न खड़ा रहता? यदि विजय असम्भव थी, तथापि दारा की सेना का पराजय इतना पूर्ण न हो सकता था जितना कि अपनी सेना मे विश्वासघात द्वारा वह हो गया था।

राजनैतिक, नैतिक तथा सैनिक विचार-दृष्टि से सामूगढ का रण भारतीय इतिहास मे अत्यन्त निर्णायक युद्धों मे से है। शाहजहाँ के एक पुत्र से दूसरे की

ओर हिन्दुस्तान के राजमुकुट के संक्रमण से कही अधिक इसका अर्थ था। भारत के मध्य-कालीन इतिहास के सर्वोपरि तेजस्वी युग की असदिग्ध समाप्ति सामूगढ के रण से हो गई। इस युग को उचित ही अकबर का युग कहा जाता है—जो राजनीति तथा सस्कृति मे राष्ट्रीयता का, साहित्य तथा कला मे पुनरुज्जीवन का युग है। सामूगढ पर दारा की विशाल सेना का ही नाश न हुआ, परन्तु उसका आशावाद तथा आत्म-विश्वास भी जाता रहा जो कभी-कभी उदार चेता मनुष्यो को अनुद्धार्य विपत्तियो पर भी विजय प्राप्त करने मे समर्थ बना देते है। दारा की नाव अपने लगड से दूर हो चुकी थी और राजकुमार ने, जो सक्षोभित समुद्र मे कुशल नाविक न था, इसको भाग्यानुसार बहने दिया।

अध्याय १०

भाग्य के उलट-फेर

विभाग १—सामूगढ़ से दाराशिकोह का पलायन

अब राजकुमार दयनीय पलायक की दशा को प्राप्त हो गया था। रणक्षेत्र से दो या तीन कोस भागने के बाद वह एक छायादार वृक्ष के नीचे पहुँचा जहाँ वह अपना शिरस्त्राण उतारने के लिये उतर पडा तथा शरीर और मन की अत्यन्त विषण्ण अवस्था मे वह पेड़ के नीचे बैठ गया। जब विजयी शत्रु के नगाडो का घोर शब्द भी सुनाई पडने लगा, उसने उस स्थान से हटना अस्वीकृत कर दिया। यह घोर शब्द प्रतिक्षण समीप आता गया और स्पष्ट होता गया। "वह चिल्लाया—क्या होने वाला है? जो कुछ होना है—अभी हो जाये।" अन्त मे अपने असित अनुचरो के आग्रह पर वह फिर घोडे पर सवार हो गया और राजधानी मे लगभग ६ बजे रात्रि मे पहुँच कर उसने अपने को अपने महल मे बन्द कर लिया। आगरा का समस्त नगर मृतक गृह की भाँति विलापमय दृष्टिगत होता था। शाहजहाँ के अन्त:पुर की उच्च चीत्कारे दीनतम नागरिक की झोपडी मे पहुँचकर और भी उग्र रूप से प्रतिध्वनित हो जाती थी। शाहजहाँ ने दारा को यह प्रार्थना भेजी कि वह आकर अन्तिम बार उससे भेट कर ले। यह हृदय-विदारक प्रार्थना थी जिसको दारा ने समान हृदय-विदारक रूप से अस्वीकृत कर दिया। भग्नमुकुट राजकुमार ने उत्तर मे लिखा—'मेरा लज्जित मुख देखने की इच्छा का आप त्याग कर दे। हुजूर से मेरी केवल यह प्रार्थना है कि इस विक्षिप्त तथा अर्धमृत मनुष्य को उसके सम्मुख उपस्थित लम्बी यात्रा के निमित्त आप विदाई का शुभ आशीर्वाद दे'। लगभग ३ बजे रात को अपनी

वधू नादिरा बानू, अपने बच्चो तथा नाती-पोतो को साथ लेकर दारा ने एक दर्जन क्लात सवारो के संरक्षण मे दिल्ली के लिये प्रस्थान कर दिया।

विजयी औरगजेब द्वारा ३ जून को नगर के घेरने के पूर्व छोटी-छोटी टुकडियो मे आगरा से निकल कर करीब ५ हजार सिपाही पुनः दाराशिकोह के झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। वे ५ जून को दिल्ली के समीप जा पहुँचे। दारा इस समय भी विशाल-साधन-सम्पन्न था क्योकि शाहजहाँ ने आगरा से विपुल कोष उसको दे दिया था, दिल्ली के गढ की युद्ध-सामग्री उसकी इच्छा पर छोड रखी थी, तथा उन लोगो को जिनको उसके प्रति अब भी कुछ प्रेम था, प्रेरणा दी थी कि वे युवराज का साथ दे। दिल्ली मे दारा एक दूसरी सेना एकत्र करने मे व्यस्त हो गया। उसने अपने पुत्र सुलेमानशिकोह को आदेश भेजा कि वह अविलम्ब दिल्ली पहुँचकर उसके साथ हो जाये। परन्तु घटना चक्र उसके लिये अति वेग से बढ चला। औरंगजेब द्वारा अवरोध के ५ दिनो के भीतर ही आगरा के गढ के आशा विरुद्ध पतन से (८ जून, १६५६) उसकी योजनाये छिन्न-भिन्न हो गईं।

अब फिर दाराशिकोह के लिये केवल पलायन का मार्ग खुला हुआ था। परन्तु वह कहाँ भाग कर जाये? इलाहाबाद को या लाहौर को? दारा ने पञ्जाब को जाना पसन्द किया जहाँ उस समय उसके प्रतिनिधि इज्जतखाँ का शासन था और वह उसके इनेगिने भक्त अनुचरो मे था। इस विषय मे परिपक्व विचार की अपेक्षा उसने प्रथम प्रोत्साहन के अनुसार कार्य किया। नवीन परिस्थिति से लाभ उठाने मे वह असफल रहा जो औरङ्गजेब की सफलता के कारण उपस्थित हो गई थी। इस सफलता से उसकी अपेक्षा कम सफल उसका सहकारी भ्राता शुजा उसका शत्रु हो गया था। इसमे सन्देह नही है कि शुजा से सन्धि के महत्व को वह जानता था और उसने सुलेमान को आदेश दे दिया था कि शुजा के अधिकारियो को इलाहाबाद का प्रान्त सौप दे। परन्तु कूटनीति तथा राजनीति की दूरदर्शिता का साहस दारा मे न था और इस कारण से वह पर्याप्त साहस एकत्र न कर सका कि शुजा पर विश्वास कर सके और उसके साथ मिलकर पूर्व से औरङ्गजेब पर आक्रमण करे तथा उसको गतिहीन कर दे और इस बीच मे वह पजाब मे सेना एकत्र कर शुजा की सहायता पर आ जाये। दारा तथा शुजा की पूर्वीय प्रान्तो मे एक सूत्रता से, असन्तुष्ट मुराद के उसी के पक्ष पर होने से, विद्रोही जसवन्त की राजस्थान मे उपस्थिति से, अपराजित पंजाब तथा काबुल के उत्तर-पश्चिम मे अस्तित्व से, और शत्रुवत् गोलकुण्डा तथा बीजापुर की दक्षिण मे विद्यमानता से औरङ्गजेब की स्थिति बहुत ही संकटग्रस्त हो जाती यद्यपि उस योग्य सैनिक तथा साधन-सम्पन्न कूटनीतिज्ञ के

विरुद्ध किसी संघ की सफलता अन्त मे सदिग्ध ही रहती। परन्तु दारा ने लाहौर को वापस होने का निश्चय किया जिससे औरङ्गजेब को अवसर मिल गया कि वह अपने शत्रुओ को एक-एक करके पद-दलित करदे। शायद सर्वोपरि गलती जो दारा ने कभी भी की वह यह थी कि उसने अपने विवश पुत्र सुलेमानशिकोह को अशक्य कार्य करने की आज्ञा दी—अर्थात् अपने चाचा शुजा के सरक्षरण मे पूर्व की ओर भाग जाने का आदेश देने के स्थान पर उसने सुलेमान को यह आदेश दिया कि हिमालय के नीचे-नीचे प्रयारण करता हुआ वह लाहौर आकर उसके साथ हो जाये।

विभाग ३—लाहौर में दारा की आशाएँ

दारा बहुत-सा कोष तथा १० हजार की सेना लेकर १२ जून को दिल्ली से चल दिया था। सरहिन्द के मार्ग से यात्रा करता हुआ वह ३ जुलाई, १६५८ को लाहौर पहुँच गया। मार्ग मे अपने सर्वोत्तम सेनापति दाऊदखाँ को उसने तलवन के घाट पर यह आदेश देकर नियुक्त कर दिया कि शत्रु के विरुद्ध वह सतलज की पंक्ति की रक्षा करे। लाहौर से सैयद इज्जतखाँ की अधीनता मे उसने लगभग ५ हजार का दूसरा दल भेजा कि दाऊदखाँ को सहायता मिल जाये तथा सतलज पर स्थित रूपड के घाट की रक्षा हो सके। कुछ समय के लिये उसको आशाओ मे कुछ जान आ गई। थोडे से समय मे २० हजार सैनिक उसके झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। कुछ शाही अधिकारी भिन्न-भिन्न उद्देश्यो से प्रेरित होकर उसके साथ हो गये। उनमे से एक जम्मू की पहाडियो का राजा राजरूप था जिसने प्रस्ताव किया कि वह पहाडी राजपूतो की एक सेना खडी कर देगा यदि राजकमार उसको पर्याप्त धन की सहायता दें। दारा तो अपनी समस्त आयु भर हिन्दुओ का शरणदाता तथा उनका समर्थक रहा था। उसको राजपूतो की निष्ठा तथा वीरता पर अब भी पूरी श्रद्धा थी। दुखी राजकुमार ने तुरन्त राजरूप के प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया और उसको बहुत महत्व दिया। अपने पति के पक्ष मे अत्यन्त अभेद्य ग्रन्थि द्वारा इस हिन्दु सरदार को सम्बद्ध करने के लिये नादिरा बानू ने अपना दूध उसको पीने के लिये भेजा। उस समय की धारणा के अनुसार इस कर्म से उन दोनो मे माता-पुत्र का सम्बन्ध स्थापित हो गया। राजरूप को दारा से कई लाख रुपये मिले[1], वह अपने घर गया और यह तो कुख्यात ही है कि एक वर्ष पीछे देवराई के रण

१—मुगलों की कहानियां, II पृ०

२५ अगस्त को—अर्थात् लाहौर से दारा के पलायन के सात दिन पीछे राजरूप व्यास-तट पर शिविरस्थ औरंगजेब की सेना में सम्मिलित हो गया।

मे किस प्रकार राजरूप ने नादिरा के दूध का बदला चुकाया। वहाँ पर औरगजेब का पक्षपाती होकर उसने दारा का सर्वनाश कर दिया जब उसने दारा की रणक्षेत्र स्थित सेना का पार्श्व उलट दिया। दारा के तोपखाने के युरोपीय अधिकारियो की भक्ति तथा निष्ठा राजरूप के विश्वासघाती आचरण के उत्कृष्टतया विरुद्ध रही। सामूगढ के रण से कुछ ही मास पूर्व इटली का निवासी, मुश्किल से २० वर्ष का नवयुवक मनुची दारा की सेवा मे तोपखाने का एक अधिकारी नियुक्त हुआ था। उस रणक्षेत्र से जहाँ दारा की पराजय हुई थी, वह भेस बदल कर लाहौर पहुँच गया, मार्ग मे उसने अनेक रोमाञ्चक साहसी कर्म किये और अन्त मे पुनः दारा के सम्मुख उपस्थित हो गया।

लाहौर मे दारा के आगमन के करीब एक मास बाद बहादुरखाँ, जो पीछा करने वाली सेना के अग्रदल का आज्ञापक था, सतलज तट पर पहुच गया। दारा के सैनिको द्वारा नदी पर एकत्र नौकाओ के बलपूर्वक छीनने के सयोग को पहिले से देखकर औरगजेब ने अपने सेनापति को सुवाह्य नौकाएँ दे दी थी जो छकडो पर लदी हुई थी। ऐसे शत्रु के विरुद्ध दारा को वास्तव मे सफलता का बहुत ही कम अवसर था।

दारा की सेना के अधिकाश भाग को तलवन मे एकत्र देख कर बहादुरखाँ ने रूपड के घाट पर ५ अगस्त की रात्रि मे नदी को गुप्त रूप से पार कर लिया। दारा के सैनिको ने इस पर अधिकार रखने मे उपेक्षा की थी। दो दिन पीछे खलीलुल्लाखाँ के अधीनस्थ अनुधावक सेना के दूसरे दल ने भी रूपड पर सतलज को पार कर लिया। इन दोनो सेनापतियो के संयुक्त दलो के सम्मुख तलवन तथा सतलज के प्रत्येक घाट को रिक्त करने पर विवश होकर दारा के सैनिक व्यास नदी के पूर्वीय तट पर स्थित सुल्तानपुर को वापस आ गये। इस पराजय के समाचार से दारा के सारे अनुमान उलट गये—अर्थात् लाहौर मे डटे रहना जब तक कि बिहार से शुजा का आगमन या उसके मित्र जसवन्त के नेतृत्व मे राजस्थान मे विद्रोह औरगजेब को पजाब से वापस होने पर विवश न करदे।

लाहौर मे इस समय वस्तु-स्थिति का वास्तविक चित्र तारीखे शुजाई का लेखक मासूम देता है—"लाहौर में ठहरे या नही—इस विषय पर अपने मन मे राजकुमार डॉवाडोल होने लगा। कभी वह यह विचार करता कि लाहौर के नगर तथा दुर्ग को वह सुदृढ करदे, समीपवर्ती जिलो के सामन्तो को अपनी सहायतार्थ बुला भेजे तथा अन्तिम और सुनिश्चित प्रयास करे। कभी वह इस प्रकार विचार करता—'चूँकि किसी दिशा मे आशा की कोई किरण दृष्टिगत नही होती है (अक्षरशः—कही से भी मेरी नाक मे शुभ की सुगन्धि नही आती है)

यह अधिक अच्छा होगा कि यह अर्धमृत प्राणी जो रण-क्षेत्र से सकुशल वापस आ गया है किसी ऐसे स्थान पर चला जाये जहाँ वह अपनी आँखो से अपनी स्त्रियों तथा बच्चो का वध न देख सके।' दारा के अनुचरो मे योग्यतम तथा अत्यन्त सत्यसन्ध दाऊदखाँ ने विनय किया कि राजकुमार को निराशा के प्रति आत्मसमर्पण न करना चाहिये जो (कुरान के) पद्यानुसार अविश्वास (कुफ़) है।" उसने प्रस्ताव किया कि दारा स्वयं लाहौर मे ठहरे, अपनी सेना को सुसज्जित करने पर ध्यान दे, तथा राजकुमार सिपिहरशिकोह को प्रत्यक्ष में नाममात्र का मुख्य सेनापति बनाकर व्यास-तट पर स्थित सुल्तानपुर को भेज दे। तदनुसार यह निश्चित हुआ कि सिपिहरशिकोह दाऊदखाँ के साथ औरगजेब की सेना के अग्रदल से युद्ध करने जाये। परन्तु नादिरा बानू अपने एकमात्र जीवित पुत्र से अलग न होना चाहती थी यद्यपि अन्य प्रकार से वह साहसी तथा बुद्धिमती महिला थी और दारा की निराशामग्न आत्मा का मुख्य अवलम्बन थी। सुलेमानशिकोह के भाग्य के प्रति उसका दुख उमड पडा और उसके राजनीतिज्ञ रूप पर उसकी मातृ-भावना सर्वथा विजयी हो गई। सिपिहरशिकोह के प्रस्थान पर बहुत कष्ट से दारा अपनी वधू को सहमत होने पर तैयार कर सका। परन्तु राजकुमार के प्रयाण मे इस विलम्ब से पीछे दौडने वाले शत्रु के अग्र दल को रोकने का एकमात्र अवसर नष्ट हो गया। दाऊदखाँ ने सुल्तानपुर पर अपने स्थान को सभाल लिया था। परन्तु बहादुरखाँ तथा ख़लीलुल्लाखाँ के सयुक्त दलो के विरुद्ध उसको अपनी स्थिति अरक्षणीय मालूम हुई। अतः व्यास के दूसरी ओर गोविन्दवाल को वह वापस गया जहाँ पर साहाय्य सेना लेकर सिपिहरशिकोह उसके साथ हो गया। परन्तु इस समय शत्रु के अग्र दल पर आक्रमण करने मे अति विलम्ब हो गया था। यह अग्रदल नदी के सुल्तानपुर तट पर सुरक्षा पूर्वक डट गया था। इस बीच मे स्वय औरगजेब १४ अगस्त को रूपड पहुँच गया और गोविन्दवाल की ओर दारा की सेना की गति का समाचार पाकर उसने मिर्जा राजा जयसिंह को कुछ अन्य अधिकारियो सहित अग्रदल की सहायतार्थ भेज दिया, जो ख़लीलुल्लाख़ाँ के अधीन था। १८ को मिर्जा राजा तथा अन्य व्यक्ति रूपड से ३२ मील पश्चिम मे गढशकर के स्थान पर ख़लीलुल्ला के दल से जाकर मिल गये। यहाँ पर उन्होने यह समाचार शीघ्र ही सुना कि दारा लाहौर से मुलतान की ओर भाग गया है। दारा ने अपने को सर्वथा सुरक्षित न समझा जब कि उसके तथा औरंगजेब के बीच मे केवल व्यास की नदी रह गई थी। अपने लौटने के मार्ग के कट जाने के भय से शायद दारा ने शीघ्र ही लाहौर छोड दिया। उसने सिपिहरशिकोह को अपने पास बुला लिया था और दाऊदख़ाँ को आज्ञा दे दी थी कि वह अपने स्थान

पर डटा रहे जब तक कि शत्रु वास्तव मे गोविन्दवाल के सम्मुख प्रकट न हो जाये।

मनुची की इस कहानी मे कम ही सत्य प्रतीत होता है कि औरंगजेब ने दाऊदखाँ को एक जाली पत्र भेजा जिससे दारा को दाऊदखाँ की निष्ठा पर सन्देह हो गया। तथा परिणाम स्वरूप दारा के लाहौर से भागने का यह पत्र मुख्य कारण बन गया। यद्यपि मासूम मनुची के विषय-वर्णन का समर्थन करता है, यह एक पुरानी कहानी प्रतीत होती है। दाऊदखाँ बहुत श्रद्धा से भक्कर तक राजकुमार के साथ चिपटा रहा, यद्यपि इसमे हमको बहुत सन्देह है कि उसने अपनी स्त्रियो का सहार कर डाला (जैसा कि मनुची तथा मासूम कहते है) जिससे दारा का निर्मूल सन्देह मिट जाये तथा वह ससार की चिन्ता से मुक्त हो जाये। यदि उसने अपने सगे सम्बन्धियों का इस प्रकार होम कर दिया, तो ससार मे किस प्रलोभन के कारण उसने बाद को अपने स्वामी का पक्ष-त्याग कर दिया जिसके निमित्त उसने मरण का निश्चय कर लिया था? यह बात असम्भव नही है कि दारा को सर्वत्र अकृतज्ञता तथा विश्वासघात दिखाई पडे और इस कारण से उसने अपने इस निष्ठावान् अनुचर के प्रति अत्यन्त अन्याय किया जब उसको यह सन्देह हुआ कि वह भी औरंगजेब का पक्षपाती हो गया है। दाऊदखाँ ने भक्कर मे दारा से विदा होने की आज्ञा माँगी और जयसलमेर होता हुआ वह हिसार में अपने घर को वापस गया। इस बात मे तथ्य है और इसके आधार पर हम यह तर्क कर सकते है कि शायद दाऊद को अपने परिवार के सम्बन्ध मे चिन्ता थी। यह औरंगजेब की वश्यता मे आ गया था और इसी कारण से उसने दारा के नष्ट-प्राय पक्ष का त्याग कर दिया। आलमगीरनामा[1] का लेखक कहता है कि नवम्बर, १६५८ मे औरंगजेब ने दाऊदखाँ को खिलअत दी, परन्तु वह इसका कोई वर्णन नही करता है कि दाऊदखाँ ने अपनी स्त्रियो का संहार कर दिया था। बगाल मे माल्दा के सुदूर प्रान्तीय नगर में जो कुछ मासूम ने इस विषय पर सुना, उसने उसको लेखबद्ध कर दिया। निश्चय ही कुछ समय तक मनुची दाऊदखाँ का शस्त्रधारी साथी रह चुका था, परन्तु उसने उस समय अपने सस्मरणो को लिखा जब तथ्य तथा कल्पित कथा उसकी क्षीण स्मृति मे मिश्रित हो गये थे, जब दारा के चरित से सम्बन्धित प्रत्येक घटना को एक विचित्र आश्चर्यमय कहानी का रूप मिल गया था।

विभाग ३—मुल्तान तथा सिन्ध होकर दारा का पलायन

अपने साथ विशाल धनराशि तथा बहुत बड़ा तोपखाना लेकर दारा लाहौर

१—आलमगीरनामा ! २२१ ।

से चल पडा। मुल्तान तक उसके साथ १४ हजार सिपाही थे जो उसकी उदारता से आकृष्ट हो गये थे। वह ४ सितम्बर को मुल्तान पहुँचा। परन्तु उसके अनेक सैनिको तथा अधिकारियो ने उसके पलायन मे आगे साथ देने से इन्कार कर दिया। उसकी सेना का शीघ्र विलय होने लगा, और जब वह भक्कर पहुँचा, उसकी सेना की सख्या केवल आधी रह गई थी, और वह आधी भी सतत् प्रयाणो की थकावट से अधमरी थी। भक्कर पर दारा ५ दिन ठहरा और अपने कोष के कुछ भाग को, अपने अन्तःपुर की बहुत सी महिलाओ को, तथा अपनी बडी-बडी तोपो को उसने भक्कर के दुर्ग मे रख दिया। यहाँ पर गोला बारूद तथा युद्ध सामग्री का विशाल मात्रा मे सग्रह कर दिया गया और उसके विश्वास-पात्र खोजा बसन्त तथा सैयद अब्दुर्रज्जाक के अधिकार में गढ सौप दिया गया। मनुची तथा अन्य योरुपीय, जो उसके तोपखाने के अधिकारी थे, वहाँ पर गढ की तोपो के अधिकार मे छोड दिये गये। यहाँ पर उसके ४ हजार सिपाहियो तथा अधिकाश अधिकारियो ने उसका साथ छोड दिया और अपनी जागीरो पर वापस चले गये। दाऊदखाँ इनमे था। स्वयं दारा न जानता था कि वह कहाँ को जाये—ईरान को प्रवासी होकर वा आगरा के फाटको को राजस्थान के वीर योद्धाओ को अपने समर्थन मे लेकर? वह सिन्धु के और भी नीचे उतर गया और भक्कर के ५० मील दक्षिण मे उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ से कन्धार होकर ईरान का मार्ग आरम्भ होता है। शायद इसी स्थान से ही सुरक्षित शरण तथा सहायता के निमित्त दारा ने शाह अब्बास द्वितीय से अपनी चर्चा प्रारम्भ की। दारा को अपने एक पत्र मे ईरान का शासक शाह अब्बास द्वितीय भक्कर पर आक्रमण करने की अनिच्छा प्रकट करता है जब तक कि वह राजकुमार से स्वयं न मिल ले। इस पत्र मे वह यह भी सूचना भेजता है कि कन्धार के राज्यपाल जुल्फिकारखाँ को आदेश दे दिया गया है कि वह दारा की सम्पत्ति को ईरान पहुँचाने का आवश्यक प्रबन्ध कर दे। ऐसा प्रतीत होता था कि हुमायूँ का भाग्य दुःखित दारा के चरण चिह्नो का पीछा कर रहा है। परन्तु हुमायूँ का यह अहोभाग्य था कि हिन्दुस्तान मे जन्म-जात स्त्रियाँ तथा परिचारी वर्ग उसके साथ न था जिनकी यह इच्छा न हो कि ईरानियो को वश्यता मे अपने को सौप दें।

दारा का पीछा करते हुए २५ सितम्बर को औरगजेब मुल्तान पहुँचा, परन्तु यहाँ पर उसको यह भयावह समाचार प्राप्त हुआ कि इलाहाबाद की दिशा मे शुजा ने अपनी शत्रुवत् प्रगति प्रारम्भ कर दी है। अतः वह तुरन्त इस स्थान से वापस हुआ। इसके ५ दिन बाद वह मुल्तान से वापस चल दिया। वहाँ पर उसने अपने सेनापतियो सफशिकनखाँ तथा शेखमीर को छोड़ दिया और उनको आदेश

दे गया कि पलायक दारा को प्रान्त के बाहर निकाल दें। ऊछ पर इन दोनों सेनापतियो ने सेना को विभाजित कर लिया तथा एक दूसरे के समानान्तर नदी के दोनो किनारो पर उन्होने अपना प्रयाण प्रारम्भ कर दिया। इस अनुधावन की अत्यन्त संकट वेला वह थी जब दारा की नावे सेहवन दुर्ग की अग्निवर्षा मे से होकर निकल गईं तथा उस दुर्ग के समीप संकीर्ण दुर्मार्ग से होकर दारा के सैनिक भाग निकले (२ नवम्बर, १६५८)। सफशिकनखाँ तथा शेखमीर ने ठट्ठा तक सिन्धु के दक्षिण तट पर दारा का निरन्तर पीछा किया। वहाँ पर दारा ने पुनः सफशिकनखाँ को चक्कर दे दिया। वह १६ नवम्बर को सिन्धु को पार करके भाग निकला। इसके ६ दिन बाद उसके पीछा करने वालो ने भी नदी पार कर ली, परन्तु दारा की गन्ध भी अब उनको न मिल सकी। ठीक उसी समय औरंगजेब से उनको आज्ञा प्राप्त हुई कि शुजा के विरुद्ध एक आक्रामक सेना को सुसज्जित करने के लिये वे उसके पास आजाये। अब दारा ने अपनी सेना लेकर कछ के रन के ऊबडखाबड प्रदेश मे प्रवेश किया और अकथनीय सकटो का सहन करके वह कछ के राव की राजधानी मे पहुॅच गया। प्रत्येक प्रकार से पलायको के कष्ट को राव ने दूर कर दिया तथा दारा के पक्ष से उसने अपना निकट का सम्बन्ध स्थापित कर लिया और अपनी कन्या की सगाई उसने सिपिहरशिकोह से कर दी। पलायक राजकुमार के हृदय मे आशा तथा उत्साह का सचार पुनः हो गया।

विभाग ४—बादल में दरार

दाराशिकोह अब भाग्य का जुवारी बन चुका था। कछ मे अपने आशातीत स्वागत मे उसको शुभ लक्षण दिखाई पडे। नवीन साहसी कर्म के लिये अपने छोटे से परिचारक दल को सुसज्जित करके उसने काठियावाड मे प्रवेश किया जहाँ पर नवानगर के जाम ने राजभक्त वशवर्ती राजा की भाँति सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। अब गुजरात के समृद्ध प्रान्त पर उसकी आँख पडी। इस समय व्यवहार रूप मे यहाँ का कोई शासक न था। मुराद का सत्ता-स्थान गुजरात इस समय तक मुराद के अधिकारियो के अधीन था। औरगजेब पर उनको रोष तथा क्रोध था क्योकि उसने विश्वासघात पूर्वक अमानुषी प्रकार से उनके स्वामी को परास्त कर दिया था। इस प्रान्त पर शासन करने के लिये उसने समान रूप से असन्तुष्ट व्यक्ति शाहनवाजखाँ को भेज रखा था। अपने भाग्य की परीक्षा लेने के लिये कुल ३ हजार सैनिक लेकर दारा ने अब अहमदाबाद पर प्रयाण कर दिया। जब वह नगर के निकट पहुँचा शाहनवाज अनपेक्षित ही नगर के बाहर आया, उसका स्वागत किया तथा उसको दुर्ग मे ले गया। दारा ने अब अपना दरबार अहमदाबाद मे स्थापित किया। परन्तु अपने जीवित पिता के प्रति प्रेम

तथा सम्मान के कारण उसने न तो राजकीय उपाधि धारण की और न राजगद्दी पर बैठा। केवल एक विशेष राजकीय अधिकार उसने धारण किया और वह भी शाहनवाजखाँ के अनुरोध पर। वह अधिकार यह था कि वह प्रत्येक प्रभात मे झरोखा दर्शन देता। भारी वेतन की आशा से आकृष्ट होकर २२ हजार सैनिक शीघ्र ही दारा के अधीन एकत्र हो गये। अमीना गुजराती के अधीन उसने एक छोटा-सा दल भेजा कि औरगजेब के अधिकारियो से सूरत का बन्दर छीन ले। औरगजेब के राज्यपाल सादिक मुहम्मदखाँ से अमीना ने नगर का शान्ति-पूर्ण समर्पण प्राप्त कर लिया और वहाँ से बहुत धनराशि, विपुल मात्रा मे गोला-बारूद तथा अपने स्वामी के लिये ४० तोपे ले आया।

बीजापुर तथा गोलकुण्डा को दारा ने मित्र की भाँति अपनी कूटनैतिक सेवाये अर्पित की थी। केवल युवराज के समर्थन के कारण ये औरगजेब द्वारा सर्वनाश से १६५६ तथा १६५७ मे बच गये थे। चूँकि इन दोनो राज्यो के शासक औरगजेब के प्रतिज्ञा-बद्ध शत्रु थे, दारा को आशा हुई कि अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने के द्वितीय प्रयास मे उसको उनसे सहायता प्राप्त होगी। वास्तव मे वृत्तान्तानुसार दारा इस पर विचार कर रहा था कि दक्षिण के लिये वह अविलम्ब प्रस्थान करे। और तदनुसार औरगजेब ने अपने पुत्र राजकुमार मुअज्जम को सचेत कर दिया था कि वह अपने चाचा की ओर से किसी ऐसी प्रगति को रोक देने के लिये तैयार रहे। परन्तु समस्त हिन्दुस्तान मे अकस्मात एक अपूर्व हलचल मच गई। इसका कारण एक असत्य समाचार था कि शुजा के हाथो औरगजेब की पराजय हो गई है तथा महाराज जसवन्तसिंह औरगजेब के शिविर का लूट का माल लेकर जोधपुर वापस आ गया है। अधिकाश अन्य मनुष्यो की भाँति दारा को इस की सत्यता पर सन्देह न हुआ तथा तदनुसार दक्षिण जाने का उसने अपना विचार छोड दिया। अहमदाबाद के शासन-अधिकार पर सैयद अहमद बुखारी को नियुक्त करके उसने १४ फरवरी को सिरोही के मार्ग से अज-मेर के लिये प्रस्थान कर दिया। तीन ही प्रयाणक (मजिल) पार करने के बाद वह उलट गया जब उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि खजवा के रण मे शुजा पर औरगजेब को निर्णायक विजय प्राप्त हुई थी (५ जनवरी, १६५६)। यदि इस समय वह दक्षिण की ओर पीछे लौट पडता, तो अपनी वशवर्ती सेना की सहायता से (तोपखाना के अतिरिक्त लगभग २० हजार सैनिक) वह लडता-भिडता सकुशल बीजापुर तथा गोलकुण्डा की राजधानियो को पहुँच जाता। परन्तु राजस्थान का मोह उसको अब भी था। महाराजा जसवन्तसिंह को द्वितीय बार औरंगजेब की ओर से क्षमा की आशा न थी। अब उसने उसके (औरंगजेब के) विरुद्ध खुला विद्रोह कर रखा था। अपने कर्म को न्याय तथा औचित्य का रंग

देने के लिये उसने युवराज को अपने प्रदेश मे आमन्त्रित किया और सहायता देने की सुगम्भीर प्रतिज्ञाये की। तदनुसार बिना एक भी वार किये दक्षिण की ओर प्रत्यागमन से दारा ने यह अच्छा समझा कि जसवन्त के भाग्य से अपने भाग्य को सम्बद्ध कर दे। अतः वह अपनी सेना लेकर शीघ्र मेडता को प्रयाण कर गया जो अजमेर के उत्तर पश्चिम में ३७ मील पर है। परन्तु वहाँ पर युद्ध की तैयारियो के कोई भी लक्षण उसको न दीख पडे और न जसवन्त के स्वागतार्थ आने का कोई चिह्न था। राजकुमार ने जोधपुर को एक विश्वस्त हिन्दू वकील दुनीचन्द को भेजा था। वह जसवन्त से यह सन्देश लेकर वापस आ गया कि राजकुमार के लिये यह अधिक युक्त होगा कि वह अजमेर मे अपना स्थान स्थापित करे क्योकि अजमेर राजपूत प्रदेश का केन्द्र था और वह स्वयं अपनी सेना को सुसज्जित करके वहाँ पर आकर उसके साथ हो जायेगा। अपनी सेना को लेकर दारा अब अजमेर की ओर मुडा जो मेडता से दक्षिण-पूर्व मे ३७ मील पर है।

वास्तव मे उदारचेता तथा दानशील राजकुमार दारा से अधिक हिन्दुओ की कृतज्ञता तथा सहानुभूति का कोई पात्र न था। और हिन्दुओ मे दारा के प्रति सब से अधिक ऋणी था ''हिन्दुवशावतंस' 'मेवाड का महाराणा राजसिंह। शाहजहाँ के क्रोध से दारा ने उसकी रक्षा की थी तथा उसके राज्य को केवल तीन वर्ष पहले सम्भावित विनाश से बचा लिया था जब शाहजहाँ ने सादुल्लाखाँ को उसके विरुद्ध भेजा था।

क्रूर विधाता ने सौभाग्य-शिखर से दारा को क्लेश के गम्भीर गर्त मे फेंक दिया था। अतिथि सत्कार की पवित्र विधि के नाम पर, जो राजपूत को इतनी प्रिय है, दारा ने महाराणा से सहायता तथा सुरक्षा के निमित्त मर्म-स्पर्शी याचना की। (महाराणा को यह सूचना देने के बाद कि वह सिरोही पहुँच गया है) वह लिखता है—"राजपूतो के रक्षण मे हमने अपने सम्मान को सौप दिया है तथा वास्तव मे हम समस्त राजपूतवश के अतिथि (मेहमान) बन कर आये है। महाराजा जसवन्तसिंह भी हमारा साथ देने को तैयार है। आप राजपूत वंश के प्रमुख है। अभी हाल मे हमको मालूम हुआ है कि आपका पुत्र उसके (औरंगजेब) पक्ष से वापस आ गया है। जब स्थिति ऐसी है, हमको आशा है कि मान्य राजाओ मे सर्वाधिक मान्य (अर्थात्—महाराणा) राणा हमको आला हजरत (सर्वोच्च सम्मानित व्यक्ति—सम्राट् शाहजहाँ) को मुक्त करने मे अवश्य सहायता देगा 'यदि आप स्वय आने मे असमर्थ हो, तो अपने किसी सम्बन्धी के साथ २ हजार सवार आप मेरे पास भेज दे ''[१] (निशान दिनाङ्क प्रथम जमादी-उल-अव्वल—१५ जनवरी, १६६६ ई०)।

परन्तु दुखित राजकुमार को महाराणा की ओर से कोई प्रति-वचन प्राप्त

न हुए। अन्य प्रत्येक हिन्दु सामन्त की भाँति राजसिंह वास्तव मे संकीर्ण विचारो तथा उससे भी संकीर्ण सहानुभूतियो का व्यक्ति था यद्यपि अपने चरित की समाप्ति पर वह प्रसिद्धि तथा कीर्ति का परम पात्र हो गया था।

सम्राट् शाहजहाँ ने १६५४ मे महाराणा राजसिंह के कुछ परगनो को जब्त कर लिया था। इस पर क्रोध के कारण वह यह भूल गया था कि उसका अपना ही उद्धार तथा अपने शेष प्रदेश पर उसका अधिकार दाराशिकोह के प्रभावशाली हस्तक्षेप के कारण हुआ था। उसके सम्पूर्ण राज्य की वापसी दारा न करा सका था क्योकि औरंगजेब के मित्र सादुल्लाखाँ ने इसका विरोध किया था। इन परगनो की पुनः प्राप्ति ही महाराणा की एक धुन हो गई थी। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अब उसका ध्यान औरगजेब की ओर गया। औरगजेब के कई निशान[२] उदयपुर के ग्रन्थरक्षागारो मे सुरक्षित हैं। इनसे हमको औरगजेब की उस कूटनीति का सूत्र प्राप्त होता है जिसके द्वारा उसने महाराणा को अपने पक्ष पर कर लिया था। दक्षिण से अपने प्रस्थान के ठीक पहले लिखे हुए एक पत्र मे वह इसका अनुमोदन करता है कि अपहृत परगनो मे से चार को जिनकी प्रार्थना महाराणा ने की थी लौटा दिया जायगा। धर्मट की विजय के पश्चात् लिखे हुए एक दूसरे पत्र मे वह महाराणा को प्रेरणा देता है कि वह उपरिवर्णित परगनो को उनके वर्तमान शासको से छीन ले, और वह उसको यह आशा देता है कि ईश्वर की इच्छा से वह उसको राणा साँगा से भी बडा शासक बना देगा। सामूगढ की विजय के बाद औरंगजेब ने उसकी ओर कुछ और टुकड़े घृणापूर्वक फेक दिये। ये थे डूँगरपुर, बाँसवाडा, बसावर का अनुदान। इनका उद्देश्य था कि हिन्दु-हितो का सरक्षक मौन कर दिया जाये जिसके झुकाने का उपाय वह बाद को करनेवाला था।

जसवन्त के विलम्ब पर दारा अपने दिन अजमेर मे कष्ट-कारक चिन्ता मे

१—वीर विनोद में उद्धृत उदयपुर के ग्रन्थरक्षागार—II पृ० ४३२। जैसा कि शैली से प्रकट है पत्र की मौलिकता में कोई सन्देह नही हो सकता है। परन्तु दिनाङ्क प्रथम जमादी-उल अव्वल एक त्रुटि वा प्रतिलिपिकार की अशुद्धि प्रतीत होती है। ऐसी त्रुटिया दारा के अन्य पत्रों में भी प्राय मिलती है। ये जयपुर मे सुरक्षित है। दारा ने ९ जनवरी, १६५९ को अहमदाबाद में प्रवेश किया और वह करीब एक मास तक वहाँ ठहरा। इसके बाद ही उसने राजस्थान जाने का निश्चय किया। अत शुद्ध दिनाङ्क होना चाहिये—प्रथम जमादी-उस्सानी-अर्थात् १४ फरवरी। फारसी लेखकों के प्रमाण पर सर जदुनाथ सरकार अहमदाबाद से दारा के प्रस्थान का दिनाङ्क १४ फरवरी देते है। परन्तु यह पत्र स्पष्ट सिद्ध करता है कि मध्य फरवरी के पहले ही दारा सिरोही पहुँच गया था।

२—वीर विनोद II, ४१४ में उद्धृत निशान।

आलमगीरनामा पृ० ३११—३१२।

तीत कर रहा था। दूसरी बार दुबिनचन्द (दुनीचन्द ?) जसवन्त के पास गया और वही छल-पूर्ण उत्तर लेकर वापस आ गया क्योकि जोधपुर के सामन्त ने दारा का साथ देने का विचार अब छोड दिया था। अन्त मे असहाय दारा ने अपने अल्पवयस्क पुत्र सिपिहरशिकोह को भेजा कि जसवन्त के हृदय को द्रवित करे, परन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। महाराजा जसवन्तसिंह ने अपना प्रतिज्ञा-वचन भंग कर दिया। क्या जसवन्त का यह विश्वासघात पूर्व-कल्पित था ?

इस समस्त काण्ड का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि यह जसवन्त की ओर से पूर्व कल्पित विश्वासघात है। स्पष्ट है कि उसने अपनी कूटनीतिक चाल मे बन्धक के रूप मे बेचारे दारा का उपयोग किया। उसका अभिप्राय था कि उन अपराधो के प्रति जो उसने खजवा मे किये थे औरगजेब उसको उदार शर्तो पर क्षमा कर दे। जसवन्त को इस प्रकार शान्तिपूर्वक विचार करने का, चातुर्य्य का तथा राजनैतिक बुद्धिमता का श्रेय देना उसके कृत्यो तथा चरित्र को न समझना है। खजवा मे जसवन्त का आचरण आकुलीकारक तथा विश्वासघात का रहा था जिसके लिये औरंगजेब ने उसको क्षमा कर दिया था। अब उसने किस प्रत्यक्ष लाभ के निमित्त औरगजेब से नवीन शत्रुता बाँधी ? इसकी एक मात्र व्याख्या यह है कि जसवन्त को दारा से प्रेम था। इसके कारण अपने शेष जीवन मे जसवन्त औरगजेब का दुष्प्रच्छन्न शत्रु बना रहा तथा बारम्बार उसको यह प्रेरणा हुई कि वह उस सम्राट् के विरुद्ध विश्वास-घातक कार्य करे। इसमे सन्देह नही है कि दारा के प्रति अपने अनुराग-वचन मे जसवन्त निष्कपट था और जब उस ने दारा को राजस्थान बुलाया, तो प्रत्येक दशा मे वह उसका साथ देना चाहता था। औरंगजेब का सामना करने के लिये उसने वास्तव मे कुछ तैयारियाँ भी की। परन्तु उस मनो वैज्ञानिक (महत्वपूर्ण) क्षण पर जब औरगजेब की प्रतिशोधक सेनाओ के आगमन पर उसका आशावाद निराशा मे परिवर्तित हो रहा था, जब भावु-कता तथा स्वहित मे प्रभुता के निमित्त उसके हृदय मे सघर्ष हो रहा था, औरगजेब के सावधान वृद्ध प्रलोभक मिर्जा राजा जयसिंह का पत्र आया जिसमे उसने लिखा था—"आपको इसमे क्या लाभ हो सकता है कि इस मन्दभागी राजकुमार को सहायता देने का आप प्रयास करें ? इस कार्य मे लगने से आपका और आपके परिवार का नाश अवश्यंभावी है, और इस प्रकार दुष्ट दारा के हितो को भी कोई लाभ न होगा। औरगजेब कभी आपको क्षमा न करेगा। मै स्वय राजा हूँ और आपसे शपथपूर्वक विनय करता हूँ कि राजपूतो का रक्त न बहाये। इस आशा मे प्रवाहित न हो जाये कि दूसरे राजाओ को आप अपने दल मे मिला लेंगे, क्योकि ऐसे किसी प्रयास का प्रतिकार करने के साधन मेरे पास

है। इस कार्य से समस्त हिन्दुओ का सम्बन्ध है तथा आपको वह अग्नि प्रदीप्त करने की अनुमति मै नही दे सकता जो शीघ्र ही समस्त साम्राज्य मे फैल जायेगी और जो किसी प्रयास से शान्त न हो सकेगी। इसके विपरीत यदि दारा को आप उसके भाग्य पर छोड दे, औरगजेब सारी पुरानी बातो को भुला देगा और आपसे वह धन न माँगेगा जो आपने खजवा मे हस्तगत कर लिया है, परन्तु तुरन्त आपको गुजरात के शासन पर नियुक्त कर देगा। आप राज्य के समीप ही स्थित ऐसे प्रान्त पर शासन करने के लाभ को आसानी से समझ सकते है, वहाँ पर आपको सम्पूर्ण शान्ति तथा सुरक्षा प्राप्त हो जायेगे, और यहाँ पर मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ मैने कहा है उसका पूर्ण पालन होगा[1]।" केवल दुराग्रही मूर्ख या वीरात्मा शहीद ही ऐसे प्रलोभक प्रस्तावो तथा प्रबल युक्तियो के सम्मुख अडिग रह सकता था जब कि गले के सामने लगे हुए बल्लम की धार द्वारा वे प्रभावक रूप से उपस्थित किये गये हो। परन्तु जसवन्त न तो मूर्ख था, न वीरात्मा। उसका नैतिक साहस तथा उसकी स्थिरता, उसकी वीरता तथा उत्कृष्ट उत्साह के समान न थे। जसवन्त के हृदय मे अन्त.-करण की पुकार को जयसिह के पत्र ने शान्त कर दिया। आत्म-रक्षा की सहजबुद्धि ने जसवन्त को प्रेरणा दी कि अपने राजकुमार मित्र के प्रति अपने प्रतिज्ञा वचन का भंग कर दे।

विभाग ५—देवराई का युद्ध

जसवन्त ने दारा का परित्याग कर दिया था तथा वास्तव मे प्रत्येक राजपूत उससे घृणा करता था। दारा को अब यह असम्भव प्रतीत होता था कि विना औरंगजेब से युद्ध किये वह सकुशल पीछे चला जाये। अजमेर मे अपने तथा अपने अधिकारियो के परिवारो को छोडकर दारा अपनी छोटी सेना को देवराई की घाटी को ले गया जो अजमेर-खण्डवा रेल-मार्ग के कुछ पूर्व में, अजमेर के दक्षिण मे ४½ मील पर है। वहाँ पर उसने एक सुदृढ स्थान निर्वाचित कर लिया। अजमेर का नगर उसके पृष्ठ पर था तथा उसके दोनो पक्ष दो अगम्य पर्वत-मालाओ, बीथली तथा गोकला द्वारा सुरक्षित थे। इस पंक्ति को उसने सामने से दुर्गाकार बना दिया—"अपने स्थान से दक्षिण की ओर उसने एक नीची दीवार खडी कर दी जो घाटी को आर-पार करती हुई एक पहाडी से दूसरी पहाडी तक फैली हुई थी, आगे की ओर खाइयाँ थी तथा विभिन्न स्थानो पर छोटे-छोटे दुर्ग बने हुए थे। समस्त पंक्ति चार विभागो मे विभाजित थी। प्रत्येक पर एक अलग अधिकारी था जिसके पास अपना तोपखाना तथा अपने

१—कास्टेबल कृत—बर्नें की यात्रायें—पृ० ८६।

बन्दूकची थे। दक्षिण की ओर, उसके स्थान के दक्षिण-पश्चिम कोने पर बीथली की पहाडी के पास सैयद इब्राहीम (उपनाम मुस्तफाखाँ) तथा जानीबेग (दारा के तोपखाने का मुख्याधिकारी) की खाइयाँ थी। उनके पास अन्य प्रकार के सैनिको को छोडकर एक हजार बर्कन्दाज थे। उनके बाद फीरोज मेवाती की खाइयाँ थी और उनके आगे एक टीले पर जो घाटी से ऊँचा था कुछ बडी तोपे लगी हुई थी। यहाँ पर अपनी अधिकारी मण्डली के साथ केन्द्र स्थान पर दारा था। उसके बाई ओर पक्ति के तीसरे विभाग की खाइयाँ थी। ये शाहनवाजखाँ तथा मुहम्मद शरीफ कलीचखाँ के अधिकार मे थी। गोकला की पहाडी से मिले हुए दक्षिण-पूर्वीय कोने पर चौथा विभाग सिपिहर शिकोह के अधीन था।"[1]

११ मार्च को औरगजेब देवराई से एक मील पर ठहर गया। उसके मार्ग मे दारा की दुर्गीकृत खाइयाँ आ गई। उसी रात को औरगजेब के एक साहसी अधिकारी ने दोनो सेनाओ के बीचोबीच मे एक टीले पर चुपचाप अधिकार कर लिया। दूसरे दिन प्रभात ही मे इस टीले पर अधिकार के निमित्त चार घण्टो तक घमासान युद्ध हुआ, परन्तु युद्ध के आवरण मे औरगजेब का तोपखाना टीले पर घसीट लाया गया। इस कारण से दारा के सैनिक अपनी पक्तियो के पीछे वापस होने पर विवश हो गये। १३ मार्च को तीसरे पहर दारा के २ हजार कवचधारी सवार औरगजेब की रक्षा-टोलियो पर टूट पडे और शत्रु से डिम्बयुद्ध में अपना बहुत अच्छा परिचय दिया। समस्त मोर्चे पर आक्रमण की परम्परागत मुगल शैली दारा की दुर्गीकृत पक्तियो के विरुद्ध असफल सिद्ध हो गई। दारा के प्रति अपने अनुराग की अत्यन्त गम्भीर प्रतिज्ञा के रूप मे विश्वासघाती राजरूप ने नादिरा बानू का दूध पी लिया था। इस दुष्ट ने इस समय वह काम कर दिखाने का प्रस्ताव किया जो और कोई न कर सकता था। उसके अनुचरो ने पता लगा लिया था कि गोकला पहाडी पर चढने के लिये दारा के वाम पक्ष के पीछे एक अरक्षित पगडण्डी है। १४ मार्च की सन्ध्या के समीप राजरूप ने अपने कठिनकाय पहाडियो की एक टोली को गोकला पहाडी के पीछे भेज दिया कि वह उस सकीर्ण मार्ग से पहाडी के ऊपर चढ जाये। उसने स्वयं दारा के वाम पक्ष पर स्थित शाहनवाजखाँ को पक्तियो पर आक्रमण किया। शाहनवाजखाँ की खाइयो से राजरूप से भिडने के लिये एक हजार सवार बाहर आये। परन्तु एक पूर्व चिन्तित योजना के अनुसार औरगजेब के अधिकारियो ने अपनी सेना का अधिकाश भाग शत्रु के वाम पक्ष

१—औरगजेब का इतिहास I तथा II पृ० ५०६।

के सम्मुख एकत्र कर दिया था और उनका निश्चय था कि चाहे जितनी हानि उठाकर उसको भग कर देंगे। शाहनवाजखाँ की खाइयो के सामने सवारो मे घोर सघर्ष हुआ। दारा के सैनिक कभी इतनी अच्छी तरह न लड़े थे, और न कभी दारा ने तथा उसके अधिकारियो ने इतनी शान्ति तथा विवेक प्रकट किया था जितना इस दिन। परन्तु दारा रण-चातुर्य मे औरंगजेब के समान न था। उसने अपनी सेना को दारा के वाम पक्ष के सम्मुख एकत्र कर दिया था और अब उसने इस पर केन्द्रित आक्रमण किया। जयसिंह, दिलेरखाँ तथा शेखमीर दारा की सेना पर टूट पडे। दारा आक्रमणार्थ बाहर आ गया था तथा अश्वारोहियो के एक घन्टे के निरन्तर आक्रमणो के बाद उसने उनको उनके स्थान से हटा दिया और विचार-रहित रोष मे वह शाहनवाजखाँ की खाइयो के पास तक बढ गया। लगभग उसी समय राजरूप के पैदल गोकला पहाडी पर कष्टपूर्वक चढ कर पहाडी की चोटी पर शाहनवाजखाँ के पीछे प्रकट हो गये। तब औरगजेब के सैनिको ने भावी विजय की असदिग्धता से प्रसन्न होकर, शाहनवाजखाँ की खाइयो पर नवीन बल से आक्रमण किया। औरगजेब के तोपखाने से एक तोप का गोला शाहनवाजखाँ को लगा, तुरन्त वह समाप्त हो गया और पूर्ण विपत्ति उपस्थित हो गई। अब भी तोपखाना निर्दयतापूर्वक संहार कर रहा था तथा दारा के सैनिक अति दृढ वीरता से युद्ध करते रहे। आक्रामक दल मे शेखमीर एक गोली से मारा गया तथा दिलेरखाँ को तीर का एक घाव लगा। दिलेरखाँ के पठानो ने, जिनको मिर्जा राजा जयसिंह के राजपूतो से सहायता मिल गई थी, व्यवहार रूप से दारा के वाम पक्ष को समाप्त कर दिया।

इस विषम संघर्ष को जारी रखने का दारा ने समस्त दिन यथाशक्ति प्रयत्न किया था। केन्द्र मे अपने स्थान से लडाई के हर कदम को वह सावधानतापूर्वक देखता रहा था तथा शाहनवाजखाँ की खाइयो को उसने यथासमय सहायता भेजी थी। उसके सैनिक आक्रमण को अब भी विफल कर सकते थे, परन्तु उनके पृष्ठ भाग पर राजरूप के पैदलो के अकस्मात प्रकट होने से उनमे भय उत्पन्न हो गया। अब उनकी समस्त आशाये टूट गई तथा सघर्ष को अधिक समय तक करते रहना उन्होने आत्महत्या समझा। परिस्थिति का बोध दारा को हो गया था। यह स्पष्ट था कि उस स्थिति मे अधिक ठहरना विघातक होगा। अपने एकमात्र जीवित सेनापति फीरोज मेवाती तथा अपने पुत्र सिपिहर शिकोह को साथ लेकर वह ९ बजे रात्रि को (१४ मार्च) मेडता होकर गुजरात जाने वाली सडक पर आ गया। बादल मे जो दरार दिखाई पडती थी, वह सन्ध्या के बादलों की केवल विश्वासघातक सुनहरी छाया थी।

परिशिष्ट १

शाहनवाजखाँ को बर्नें द्विमुख विश्वासघाती बताता है जो औरंगजेब को दारा की समस्त योजनाओं से नियमपूर्वक सूचित रखता था। वह दृढता से कहता है कि दारा की दुर्गति इस कारण हुई कि उसने शाहनवाजखाँ का अत्यधिक विश्वास किया। परन्तु यह शायद उस वृद्ध पुरुष के विरुद्ध निराधार मिथ्या आक्षेप है। वास्तव मे यदि शाहनवाजखाँ पूरे मन से दारा के पक्ष पर न आ गया होता तथा अन्त तक उसका साथ न देता, दारा या तो अहमदाबाद मे बन्दी बना लिया जाता, या निराशापूर्वक गुजरात से भागने पर विवश हो जाता। हमको कोई कारण नही दीखता है कि दारा के प्रति उसकी आजीवन निष्ठा पर शका करे। शाहनवाजखाँ के विश्वासघात की कहानी पराजित दल की सामान्य पुकार है जैसी कि यह कहानी कि औरंगजेब ने दारा के तोपचियो को घूँस दे दी थी और इसी कारण उन्होने खाली गोलियाँ चलाई थी। ईश्वरदास नागर के अनुसार औरंगजेब की सेना के ५ हजार सिपाही मारे गये थे और उसके पास इसका कोई कारण न था कि औरंगजेब की सेना मे मृतको की सख्या की अतिशयोक्ति करे। शायद दारा के कम आदमी मारे गये क्योकि खाइयो के पीछे से उसने रक्षात्मक युद्ध किया था। दिलेरखाँ तथा जयसिह द्वारा दारा की वामपक्षीय पक्तियो पर अधिकार किये जाने के बाद कुछ सहार हुआ, परन्तु यह अँधेरी रात के कारण शीघ्र बन्द हो गया। औरंगजेब की सेना मे इतनी भारी क्षति का कारण क्या है यदि दारा के तोपखाने ने जो अत्यन्त व्यस्त रहा था, केवल खाली गोलियाँ चलाई थी ? यदि दारा के तोपची घूस खा गये होते, औरंगजेब की सेना दो दिनो तक रोकी न रखी जा सकती थी ?

शाहनवाजखाँ की मृत्यु के सम्बन्ध मे बर्नें कहता है कि शाहनवाजखाँ का सर या तो स्वयं दारा ने काट लिया, "या जैसा कि अधिक सम्भव समझा जाता है औरंगजेब की सेना मे से उन व्यक्तियो ने काट लिया जो गुप्त रूप से दारा के पक्षपाती थे, जिनको भय था कि वह उनकी निर्भर्त्सना करेगा तथा वह उन पत्रो का उल्लेख करेगा जो अपने स्वभावानुसार उस राजकुमार को वे लिखा करते थे" (बर्नें की यात्राये पृ० ८७)। इन बाजारी गप्पो मे सत्य का अश कुछ भी नही है। एक वृत्तान्त के अनुसार, जिसको सर जदुनाथ सरकार ने स्वीकार कर लिया है, शाहनवाज का शरीर एक गोले से उडा दिया गया था (औरंगजेब का इतिहास)। इकबालनामै आलमगीरी कहता है कि औरङ्गजेब के एक सैनिक की तलवार द्वारा उसका वध किया गया था।

बर्नें एक और अनर्थक कहानी कहता है—"मै केवल यह कहूँगा कि पहली

गोली मुश्किल से चलाई गई थी जब जेस्सीग (जयसिंह) ने दारा की दृष्टि मे आकर अपने एक अधिकारी को यह सूचना देने उसके पास भेजा कि वह तुरन्त रणक्षेत्र से भाग जाये। बेचारे राजकुमार ने आकस्मिक भय तथा आश्चर्य में पड कर उसके उपदेशानुसार कार्य किया " । बर्न को स्पष्टतया देवराई के रण का बहुत कम ज्ञान था। अपने वाम पक्ष के पराजय के बाद दारा को जयसिंह के मित्रवत् उपदेश की आवश्यकता न थी कि वह रणक्षेत्र का त्याग करदे। आकस्मिक भाग्य के पलटने की पूर्व आशका से उसने अपने अन्तःपुर के निवासियो को रण के अन्तिम दिवस भर (१४ मार्च, १६५९) हाथियो पर बैठा रखा था और वे अनासागर झील के तट पर विश्वस्त खोजा मकबूल की देख-रेख मे (भागने के लिये) तैयार थे।

जो बर्न ने वास्तव मे देखा उसको हम सत्य मान सकते है, न कि उस बात को जो उसने अपने आगा दानिश्मन्दखाँ से या किसी पक्ष के डीग मारने वाले तथा कल्पनाशील पक्षपातियो से सुना।

अध्याय ११

दुःखमय नाटक का अन्तिम अङ्क

विभाग १—अजमेर से दारा का पलायन

१४ मार्च, १६५९ की समस्त रात्रि को तथा समस्त अगले दिन विना विश्राम के यात्रा करके दारा तथा उसका दल जोधपुर प्रदेश मे १५ मार्च की सायकाल को मेडता पहुँचे। २ हजार सैनिक तथा एक विश्वासपात्र सेनापति फीरोज मेवाती को लेकर दारा उसी रात्रि को मेडता से चल पडा और ३० मील प्रतिदिन चलकर पार तथा बरगोआँ के मार्ग से गुजरात के लिये दक्षिण की ओर भागा। उसका पीछा करने वाले मिर्जा राजा जयसिंह तथा बहादुरखाँ २० हजार सेना लेकर ६ दिन बाद उसके पीछे आ गये। जोधपुर का प्रदेश छोडे जब दारा को तीन दिन हो गये थे जसवन्त को औरङ्गजेब से आज्ञा प्राप्त हुई कि पलायक को पकड ले। तदनुसार वह अहमदाबाद की ओर प्रयाण मे मिर्जा राजा जयसिंह के साथ हो गया। मिर्जा राजा को औरङ्गजेब की आज्ञा स्पष्ट थी कि विना मृत या जीवित दारा के वह वापस न आये। जिस विलक्षण सैनिक बुद्धि, शक्ति तथा पूर्व विचार का परिचय जयसिंह ने गुजरात तथा कच्छ के रन्न मे होकर दारा का पीछा करने मे दिया, वह उसी राजा की शिथिलता तथा प्रायः अप्रच्छन्न उदासीनता के सुस्पष्ट रूप से विपरीत है जो उसने बहा-

पाल का सन्देश प्राप्त हुआ था, उसके एक दिन पहले उसने मुझसे यह भय प्रकट किया कि कही कोली लोग मुझको मार न डाले तथा उसने आग्रह किया कि कारवाँ सराय मे मै रात्रि व्यतीत करूँ। उस समय वह भी वही था। उसकी स्त्री तथा महिलाये कनातो या परदो के पीछे थी। उनकी रस्सियाँ उस गाडी के पहियो से बाँध दी गई थी, जिसमे मै था। इस समय उसके पास एक डेरा भी न था। इन बातो का वर्णन मै उस दयनीय दशा के प्रमाण मे कर रहा हूँ जो राजकुमार की इस समय हो गई थी। राज्यपाल का सन्देश प्रात काल प्राप्त हुआ था तथा स्त्रियो के क्रन्दन पर प्रत्येक आँख से आँसू बह निकले। हम सब विमूढ तथा शोक से व्याकुल हो उठे और अवाक् त्रास मे एक दूसरे की ओर देखने लगे क्योकि हम न समझ सके कि किस योजना को उसके सम्मुख प्रस्तुत करे और हमको उस दैव गति का ज्ञान न था जो प्रतिक्षण हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। हमने देखा कि जीवित की अपेक्षा अधिक मृत होकर दारा बाहर आ रहा है, कभी वह एक आदमी से बोलता, कभी दूसरे से, वह बीच-बीच मे रुक जाता तथा साधारण-तम सैनिक से भी परामर्श करता। प्रत्येक मुख पर उसको अत्यन्त भय दीख पडा तथा उसको विश्वास हो गया कि उसके पास एक भी अनुचर न रह जायेगा। · · दारा को यह इच्छा हुई कि वह मुझको अपनी सेवा मे रख ले—विशेषकर इस कारण से कि उसकी एक स्त्री की टाँग मे गहरा घाँव था। परन्तु न तो उसकी भर्त्सनाये और न उसकी याचनाये मेरे लिये एक भी टट्टू या ऊँट प्राप्त कर सकी। वह इतना सत्ता तथा प्रभावहीन हो गया था। अतः मुझे ठहर जाना पडा क्योकि यात्रा पर आगे बढना सर्वथा अशक्य हो गया था। मेरे पास केवल रोने के और कोई उपाय न था जब मैने देखा कि राजकुमार अपना छोटा-सा दल लिये प्रस्थान कर रहा है, जिसकी सख्या घट कर केवल ४ या ५ सौ सवारो की रह गई थी।[१]

३० मार्च को पश्चिम की दिशा मे दारा ने अपना प्रयाण पुनः प्रारम्भ कर दिया। कन्होजी नामक एक कोली रॉबिन हुड (डाकू सरदार) के आत्म-सम्मान तथा सुश्रद्धा मे विश्वास कर दारा ने कारी प्रदेश मे प्रवेश किया। राजकुमार के दुःखित हृदय को इस कानून बहिष्कृत हिन्दू डाकू के आचरण से परितोष हुआ। उसको उसमे वे अधिक शुद्ध तथा अधिक उच्च राजकीय भावनाये मिली, जिनका अभाव ही उत्कृष्ट राजपूत योधाओ मे उसको गत मास मे मिला था। शाहजहाँ के बहिष्कृत युवराज की दुखित अवस्था पर दयार्द्र होकर इस डाकू सरदार ने उसको कच्छ की सीमा तक सकुशल पहुँचा दिया। इस बीच

१—बर्नें—६६–६१।

मे गुल मुहम्मदखाँ ५० सवार तथा २०० बन्दूकची लेकर इस दल मे सम्मिलित हो गया। दारा ने उसको सूरत का अधिकारी नियुक्त किया था। पतली मलमल की बन्डी और ८ आने की चप्पल पहने हुए और अपने ही समान दयनीय दशा मे अपना परिचारी वर्ग लेकर दारा वीरम गाँव से चल दिया तथा छोटे रन्न की निर्जन मरु भूमि को पार कर दारा ने पुनः भुज मे प्रवेश किया जो उसके पुराने मित्र कच्छ के राव की राजधानी थी। परन्तु इस बीच मे राव बदल गया था—यह दारा को मालूम हुआ। 'आशाओ तथा तर्जनाओ से भरे हुए' जयसिंह के पत्रो ने अपना प्रभाव राव के चित्त पर डाल दिया था। अपने राज्य मे पलायक को शरण देने से राव ने इन्कार कर दिया जिसमे कोई अनुचित बात न थी क्योकि शरण देना उसके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। परन्तु उसने दो दिन तक राजकुमार तथा उसके दल का सत्कार किया और इसके बाद टापू की उत्तरीय सीमा तक उसको सकुशल पहुँचा दिया जहाँ से बडे रन्न का भयानक नमक का दलदल आरम्भ होता है। मई, १६५६ के आरम्भ मे दारा ने सिन्ध मे पुनः प्रवेश किया परन्तु उसने देखा कि उसके मार्ग को बदिन के स्थान पर औरङ्गजेब के एक अधिकारी ने पहले से ही रोक रखा था।

'दारुण भाग्य के गोफणो तथा तीरो' से पीडित दारा ने अब सहज ही समझ लिया कि वह अपनी जीवन-यात्रा के अन्त के निकट पहुँच गया है। वास्तव मे औरगजेब का जाल चारो ओर से खिचकर शीघ्र ही उसके पास पहुँच रहा था। उसके सामने विश्वासघाती खलीलुल्लाखाँ था जो मुल्तान से भक्कर पहुँच गया था। उसका उद्देश्य था कि यदि अपने विश्वासपात्र दास बसन्त से जा मिलने का दारा कोई प्रयास करे, तो उसको रोक दिया जाये क्योकि बसन्त इस समय भी विशाल शत्रु सैन्य के विरुद्ध भक्कर के गढ की रक्षा अति वीरतापूर्वक कर रहा था। उसके पीछे की ओर जयसिह था जो शिकार के दृष्टिगत हो जाने पर शिकारी की भाँति प्रदीप्त उत्साह से बडे रन्न को पार कर रहा था। राजा ने विना विश्राम के मार्ग-हीन तथा निर्जल नमक के दलदल पर ८० मील का प्रयाण किया था। रात को चाँदनी की सहायता से और जब चन्द्र अस्त हो जाता था तो जलती हुई मशालो की सहायता से राजा यात्रा करता रहा था। दारा के सम्मुख अब एक ही उपाय था और वह यह कि सिन्धु को पार करले और कधार होकर ईरान को भाग जाये।

विभाग २—सिन्धु पार कबीलों में दारा के साहस-कर्म

सिन्धु के पूर्वीय तट पर फीरोज मेवाती भी राजकुमार से विदा हो गया। उसने अब तक अपूर्व निश्चलता तथा अनुराग से राजकुमार के भाग्य का साथ

दिया था। अपने अन्तिम श्रद्धा-निष्ठ अधिकारी गुल मुहम्मद को साथ लेकर दारा ने सिन्धु को पार किया। वह दूसरे तट पर पहुँच गया और उसने बलोच कबीलो के प्रदेश मे प्रवेश किया। चन्दी कबीले ने पलायको को लूट लिया तथा उनके साथ दुर्व्यवहार किया। परन्तु मघासियो ने, जो चन्दी कबीले के शत्रु थे, दारा का सत्कार पूर्वक स्वागत किया तथा उसको सपरिवार कन्धार तक सकुशल पहुँचाने को तैयार हो गये। परन्तु विधि की इच्छा और ही थी। दारा की वधू नादिरा बानू तथा उसके अन्तःपुर की अन्य महिलाये इस विचार पर काँप उठीं कि वह रक्तपिपासु बलोचियो पर यह विश्वास करे कि उनका सतीत्व सुरक्षित रहेगा। और इससे भी अधिक उनको यह भय हुआ कि वे बलपूर्वक ईरान के कामुक शाह के अन्तःपुर मे घसीट ली जायेंगी। दारा को झुकना पडा, विशेषकर इस कारण से कि नादिरा बानू के स्वास्थ्य की दशा अच्छी न थी और वह बहुत दिनो से अतिसार से पीडित थी।

दारा का निश्चय भी बदल गया था। मयूर सिंहासन के आभास द्वारा आशा ने उसको मन्त्र मुग्ध कर दिया था, जिस पर शायद अब भी वह आसीन हो सके। उसने योजना बनाई कि सिन्धु पार प्रदेश के किसी शक्तिशाली कबीले के सरदार की सहायता से वह एक दल एकत्र करे, इसके द्वारा भक्कर के गढ को सहायता पहुँचाये जो अब तक सामने पर डटा हुआ था, तथा इसके बाद वह अफगानिस्तान को प्रयाण कर जाये जहाँ का राज्यपाल छोटा महावतखाँ उसका मित्र था। सीमावर्ती कबीलो मे उत्सुकतापूर्वक मित्र की खोज करते हुए राजकुमार को अपने सुखी दिनो की एक घटना याद आ गई जब उसने मलिक जीवन[1] नामक एक लुटेरे अफगान सरदार की प्राण-रक्षा की थी, जो इस समय बोलन दर्रे की

१—इस घटना का वर्णन मासूम निम्न प्रकार से करता है—"एक भयानक अपराध करने पर मुल्तान के राज्यपाल ने उसको पकड लिया था तथा उसको दरबार में भेज दिया था। सम्राट् (शाहजहाँ) की इच्छा थी कि उसको हाथी के पैरों के नीचे डाल दिया जाये तथा कठोरतम यातनायें देकर उसको मार दिया जाये। उस जमीदार का एक मित्र दाराशिकोह के पास नौकर था तथा उस राजकुमार का विश्वासपात्र था और उससे घनिष्ठ था। एक दिन सुअवसर पर (अक्षरश प्रसन्न) पाकर उसने मलिक जीवन की कथा के तथ्य उसके सम्मुख उपस्थित कर दिये, क्षमा की याचना की और फूट कर रो पडा। अपने नौकर के आँसुओं पर पिघल कर राजकुमार ने उसको वचन दिया कि वह उसकी मुक्ति प्राप्त करा देगा। अगले दिन राजकुमार ने सारा वृत्तान्त सम्राट् के सम्मुख रख दिया तथा उस भय ग्रस्त स्थिति से दण्डित व्यक्ति की रक्षा करली और उस व्यक्ति को राजकीय कृपा का पात्र बना दिया जिसके सिर पर न्याय की तलवार गिरनी चाहिये थी। दाराशिकोह की कृपा द्वारा वह तिरस्कृत व्यक्ति मानो हाथी के पैरों के नीचे से (निकलकर) उसकी पीठ पर चढ गया तथा सुरक्षित और सम्मानित होकर अपने घर की ओर चल दिया"। (तारीखे शुजाई—१६६६, १४० अ०)

भारतीय सीमा से ६ मील पूर्व मे दादर के गढ का अधिपति था। मनुष्यता तथा पूर्व मित्रता के नाम पर उसने मलिक जोवन से सहायता तथा शरण की याचना की। मलिक जीवन एक अनुरूप सीमा निवासी पठान था—तुर्क तथा यहूदी का संकर, बर्बरता, गर्व तथा लोभ का मिश्रण। अपने मित्र-मघासियो के मिर्ज़ा के प्रस्ताव का उसने निरादर किया। प्रस्ताव था कि वह उसको सकुशल कन्धार पहुँचा देगा। दारा ने उनकी सुरक्षा का त्याग कर दिया तथा अपना दल लेकर उसने दादर की ओर प्रस्थान कर दिया।

विभाग ३—दारा की वधू नादिरा बानू बेगम की मृत्यु

यद्यपि सामूगढ के रण मे मन्द भाग्य दारा दिल्ली का राजमुकुट हार चुका था, उसको प्रतीत होता था कि जब तक उसकी प्रियतमा वधू नादिरा बानू जीवित है उसके प्रत्येक साहस कर्म मे हिन्दुस्तान का राजत्व-पद उसका साथ दे रहा है। क्लेश तथा आपत्काल के घोरतम समय मे आशा के आभास की भाँति वह अपने पति की निराशामग्न आत्मा का जीवनाधार थी तथा उसको अपनी सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने के निमित्त वह उसको पुरुष-योग्य प्रयास की ओर प्रेरित करती तथा अग्रसर करती। उसको बहुत दिनो से अतिसार का कष्ट था परन्तु दारा को कभी यह स्वप्न भी न हो सकता था कि वह उसकी माता मुम्ताजमहल के विपरीत बिना अच्छे दिन देखे मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी। परन्तु नादिरा का अन्त समय निकट आ गया और इसके पहले कि राजकुमार का दल दादर पहुंचे उसने प्राण छोड दिये (६ जून, १६५९)। वियुक्त राजकुमार का शोक तथा उसकी आकुलता सीमातीत थे; "दाराशिकोह की निगाह मे शुभ्र जगत् अन्धकारमय हो गया। वह अत्यधिक आकुल हो गया। (उसके) निर्णय तथा विवेक के आधार सहसा कम्पित हुए तथा टूट गये"[१]। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वह अपने पति की वामाङ्गी, परामर्शदात्री तथा शिष्या सभी कुछ थी तथा उसका हरण करके ईश्वर ने उसका सर्वस्व हरण कर लिया। परन्तु इसके शीघ्र पश्चात् क्या होने वाला था, इसकी यदि पूर्व दृष्टि राजकुमार को हो गई होती तो वह ईश्वर के सम्मुख कृतज्ञता से झुक जाता तथा उसको धन्य-वाद देता कि मृत्यु ने उसको उस भारी वेदना से बचा लिया था जो उसको होती यदि वह अपने पति तथा पुत्रो की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहती।

विभाग ४—बन्दी राजकुमार

जब मलिक जीवन के गढ के एक कोस के भीतर दारा पहुँच गया, अफगान सरदार उचित सम्मान से उसका स्वागत करने बाहर आया। ठीक इसी समय

१—तारीखे शुजाई इ० लि० ग्रन्थ पृ० १४०।

नादिरा बानू का देहान्त हुआ (६ जून)। उसकी अन्तिम प्रकटित इच्छा (वसीयत करदः) यह थी कि उसका शव वापस हिन्दुस्तान भेज दिया जाये। इस समय तक उसकी आपत्ति ही मुख्य आपत्ति थी जिसके कारण ईरान जाने की अपनी योजना का अनुसरण दारा न कर सका था। अत. उसके देहान्त के बाद कुछ निष्ठावान तथा वीरात्मा पुरुषो ने, जिनको अपने राजकुमार की सुरक्षा की चिन्ता थी, प्रस्ताव किया कि विश्वासघाती पठानो की माँद मे अपने सिरो को फँसाने के स्थान पर वे वही से ईरान की ओर चल पडे क्योकि यह शक्य था कि उनके शत्रुओ के पत्रो से पठान प्रलुब्ध हो गये हो।

परन्तु दारा ने यह विश्वास करने से इन्कार कर दिया कि मलिक जीवन उसके नमक के प्रति झूठा हो सकता है क्योकि वह अपने जीवन के लिये उसका ऋणी था। उसने शोक वस्त्र धारण कर लिये तथा प्रथानुसार शोक के कम से कम तीन दिन मनाने का निश्चय कर लिया। इसके पूर्व वह इसका निश्चय न कर सका था कि भविष्य मे वह किस मार्ग का अनुसरण करेगा। नादिरा का शव जीवन के घर को पहुँचा दिया गया जहाँ पर अगले दो दिनो तक दारा और उसके साथियो का आदर-सत्कार हुआ। अपनी मृतक प्रेयसी के प्रति श्रद्धालु दारा का प्रथम विचार यह हुआ कि नादिरा के अवशेष को कुशलपूर्वक पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाये। उसकी इच्छा थी कि लाहौर मे मियाँ मीर की कब्र के पवित्र सामीप्य मे नादिरा का शव दफन किया जाये। लाहौर तक नादिरा के विमान—जनाजे—को सकुशल पहुँचाने का कार्य उसने अपने वीर तथा अनुरक्त सरदार गुल मुहम्मद के सुपुर्द किया तथा उसके अधीन प्रत्येक उपलब्ध सैनिक को कर दिया जिनकी सख्या लगभग ७० थी। ख्वाजा मकबूल को जिसने आजीवन नादिरा की सेवा की थी, आज्ञा हुई कि विमान के साथ जाये तथा अन्तिम रीतियों का प्रबन्ध करे। एक उत्कृष्ट आत्मा के औदार्य से जो इस ससार मे अपनी यात्रा समाप्त करने वाली हो, दारा ने अपने समस्त अन्य अनुचर एकत्र कर लिये तथा उनको यह स्वतन्त्र इच्छा देदी कि वे या तो गुल मुहम्मद की टोली के साथ हिन्दुस्तान वापस चले जाये या ईरान मे निवास की यातनाये स्वेच्छा से सहन करने के लिये पीछे ठहर जायें। सिवाय उसके पुत्र सिपिहर शिकोह तथा कुछ खोजो और निम्न कोटि के नौकरो के और कोई दारा के साथ न ठहरा।

अगले प्रभात को (९ जून, १६५९) अपने पुत्र सिपिहर तथा मुट्ठी भर दीन अनुचरो को लेकर दारा मलिक जीवन के घर से चला तथा बोलन की घाटी की ओर बढा। उनका उद्दिष्ट स्थान कन्धार का दुर्ग था। परन्तु जैसे ही वे सड़क पर पहुँचे मलिक जीवन और उसके बर्बर दल ने उनको घेर लिया। दारा ने, जिसका शरीर तथा जिसकी आत्मा नादिरा की मृत्यु के कारण जड़ीभूत प्रतीत

होते थे, आत्मरक्षा मे अँगुली भी न उठाई। केवल सिपिहरशिकोह लडा, परन्तु वह शीघ्र ही परास्त हो गया। अब वे बन्दी बनाकर अपने विश्वासघाती यजमान के घर लाये गये। उसने उनके बन्दी बना लिये जाने का समाचार तेज घुडसवारो के साथ जयसिह तथा बहादुरखॉं को भेज दिया। अपने अल्पवयस्क पुत्र सिपिहर शिकोह के हृदय विदारक दृश्य का सहन दारा की शक्ति के परे था। उसके हाथ उसकी पीठ पर बॉंध दिये गये थे। दारा ने कहा—"समाप्त कर, समाप्त कर, हे अकृतज्ञ दुःशस दुष्ट! जो कार्य तूने आरम्भ किया है, उसको समाप्त कर। हम दुर्भाग्य तथा औरंगजेब के अन्यायी क्रोध के शिकार है। परन्तु याद रख कि मैं मृत्यु का पात्र नही हूँ सिवाय इस कारण के कि मैंने तेरी प्राण-रक्षा की है और यह भी याद रख कि किसी शाही रक्त के राजकुमार के हाथ उसकी पीठ पर नही बॉंधे गये।"[१] दारा के शब्दो की प्रचण्डता पर एक क्षण के लिये मलिक जीवन का पापी हृदय कॉंप उठा और उसने आज्ञा दी कि सिपिहरशिकोह के हाथ खोल दिये जाये।

मिर्जा राजा जयसिह तथा बहादुरखॉं ने २० जून को सिन्धु को पार किया और बन्दियो को अपने अधिकार मे लेने के लिये दादर की ओर चल दिये। २३ जून को मलिक जीवन ने दारा, उसके पुत्र तथा उसकी दो कन्याओ को बहादुर खॉं के सुपुर्द कर दिया। "पराजित राजकुमार निराशा के कारण मौन तथा विपत्ति के कारण जर्जरित था। अपने बन्धनकारियो के प्रत्येक सुझाव को उसने स्वीकृत किया। खोजा वसन्त को उन्होने उससे एक पत्र लिखवाया। इसमे उसको आज्ञा दी गई कि दारा की सम्पत्ति सहित तथा वहॉं पर निवासी दारा के परिवार सहित वह भक्कर के दुर्ग को साम्राज्यवादियो के समर्पित कर दे। दारा के सर्व-नाश के प्रमाण स्वरूप खोजा मकबूल को यह पत्र ले जाने के लिये भेजा गया।"[२] मुगल सामन्त-वर्ग मे, मलिक हजारी बनाया गया तथा शाहजहॉं के मन्दभाग्य युवराज का विश्वासघात करने के पुरस्कार मे उसको बख्तयारखॉं की उपाधि प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उसको यह भी आज्ञा मिली कि बन्दियो के साथ वह दिल्ली जाये जहॉं पर और भी पुरस्कार उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

बन्दी राजकुमार तथा उसके परिवार को लेकर दो मास बाद बहादुरखॉं तथा नवनिर्मित बख्तयारखॉं (मलिक जीवन) दिल्ली पहुँच गये (२३ अगस्त, १६५६)। दारा तथा उसका पुत्र सिपिहरशिकोह नज़र बेग के अधिकार मे रख दिये गये। यह औरंगजेब का विश्वासप्राप्त चेला (दास) था। वे ख्वासपुरा के एक भवन मे रखे गये जो इस समय दिल्ली-शाहजहॉंबाद के दक्षिण मे तीन मील पर

१—तवर्नें की यात्रायें I पृ० ३५१, ३५२।
२—औरंगजेब का इतिहास I तथा II पृ० ५४०।

एक गाँव है। दो दिन बाद (२५ अगस्त) नजरबेग को औरगजेब के सम्मुख उपस्थित किया गया कि वह बन्दियो की दशा के विषय मे विस्तृत वर्णनादे। मगलवार २९ अगस्त को औरगजेब ने आज्ञा दी कि बन्दी राजकुमार तथा उसके पुत्र का एक विशाल सैनिक जुलूस में अपमानसूचक प्रदर्शन किया जाये और यह जुलूस शाहजहानाबाद के मुख्य राजमार्गो से निकाला जाये। इसका अभिप्राय था कि दिल्ली के नागरिको का भ्रम भग हो जाये जिनको असली दारा के हस्तगत होने के विषय मे इस समय तक सन्देह था। बन्दियो को मोटे तथा मैले कपडे पहनाये गये, उनके सिरो पर नाम मात्र की पगडियाँ थी, जिसके ऊपर एक फटा पुराना काश्मीरी शाल लपेटा हुआ था, "जो उस शाल के सदृश था जो नीचतम कोटि के लोग ओढते है।" बन्दी राजकुमारो को अपनी पीठ पर बैठाने के सम्मान के लिये एक बेचारी वृद्ध हथिनी को चुना गया जो मैल और कीचड से और भी आकर्षक बना दी गई थी। उसकी पीठ पर खुले हौदे मे राजकुमार बैठा दिये गये। उनके पैरो मे बेडियाँ पडी हुई थी और गुलाम नजरबेग नंगी तलवार लेकर उनके पीछे बैठा हुआ था। दारा की हथिनी के समीप ही मलिक जीवन और उसके अफगान घोडो पर सवार होकर चल रहे थे। अपना शुभ्र फौलादी वस्त्र धारण किये हुए, नंगी तलवारो को हाथो मे लिये हुए कवच-धारी अश्वारोहियो का एक प्रबल दल तथा अपने धनुषो पर तीर चढाये हुए घोडो पर सवार धनुर्धर इस अपमान-जनक प्रदर्शन को भय उत्पादक तेज से शोभित कर रहे थे। नगर के लाहौरी दरवाजे से होकर दिल्ली को जाने वाले इस जुलूस के आगे हाथी पर सवार बहादुर खाँ था। "अगस्त के सूर्य की तीव्र धूप से अनावृत दारा को उसकी पूर्व महिमा तथा गौरव के स्थानो से होकर जाना पडा। अपमान की कटुता के कारण उसने अपना सिर तक न उठाया, और न किसी ओर दृष्टिपात किया, परन्तु 'एक कुचली हुई टहनी की भाँति' बैठा रहा। केवल एक बार उसने आँख उठा कर देखा जबकि एक दीन भिखारी सड़क के पास से चिल्ला उठा था—"हे दारा—जब आप स्वामी थे आप मुझे सदैव भिक्षा देते थे। आज मै भली भाँति जानता हूँ कि आपके पास देने को कुछ नही है।"[1] 'फटे पुराने चिथडे धारण किये हुए राजा'—यह दीन दारा की स्थिति थी। सिवाय एक बूँद आँसू के और सवेदना की एक आह के दु:खियो को देने के लिये अब शायद उसके पास कुछ भी न था। तब भी उसने अपना हाथ चलाया और शाल को उतार कर उसने भिखारी की ओर फेक दिया।

फ्रासीसी वैद्य बर्ने, जो इस घटना का साक्षी था, कहता है—"इस अपमान-

१—औरगजेब का इतिहास I तथा II, पृ० ५४३।

जनक अवसर पर एकत्र जन-समूह असख्य था। और सर्वत्र मैंने देखा कि अति मर्मस्पर्शी भाषा मे लोग दारा के भाग्य पर रोदन तथा क्रन्दन कर रहे थे। प्रत्येक दिशा से मुझको विदारक तथा दुःखकारक आक्रोश सुनाई पडे क्योकि भारतीय जनता का हृदय बहुत कोमल है। पुरुष, स्त्रियाँ तथा बालक इस प्रकार क्रन्दन कर रहे थे जैसे कि कोई घोर विपत्ति उन पर टूट पडी है। परन्तु कुछ भी हलचल न हुआ, किसी ने भी तलवार न खीची कि अपने प्रेमास्पद तथा हृदय-द्रावक राजकुमार की रक्षा करे।[१] चाँदनी चौक तथा सादुल्लाखाँ का बाजार से तथा दिल्ली के किले की दीवारो के नीचे से होकर जुलूस खिजिराबाद के बाग को वापस आ गया। यहाँ पर बहादुरखाँ ने बन्दियो को नजर बेग के सरक्षण मे पुनः वापस दे दिया। दारा तथा उसका पुत्र ख्वासपुरा के भवन मे अपनी पुरानी कोठरी मे रख दिये गये और शफीखाँ एक बलवान सेना सहित उनके संरक्षण पर नियुक्त कर दिया गया।

विभाग ५—दाराशिकोह की हत्या

जुलूस मे सार्वजनिक शोक तथा क्रोध के वृत्तान्त पर भयभीत होकर औरंगजेब ने अपने सर्वोपरि विश्वासपात्र पक्षपातियो की एक सभा उसी सायकाल को दिल्ली के किले के दीवाने-खास मे आमन्त्रित की। विवाद का विषय यह था कि दारा को प्राण-दण्ड दिया जावे वा ग्वालियर के गढ मे उसको राजबन्दी बना कर रख दिया जाये। "कुछ लोगो का यह आग्रह था कि प्राण-दण्ड देने का कोई कारण नही है तथा राजकुमार को ग्वालियर भेज दिया जाये, परन्तु इस शर्त पर कि उसके साथ सबल रक्षक दल भेजा जाये। कहा जाता है कि दानिशमन्दखाँ ने, यद्यपि उसकी और दारा की बहुत दिनो से न बनती थी, अपनी समस्त तार्किक शक्ति से इस पक्ष का प्रबल समर्थन किया। परन्तु अन्त मे यह निश्चय हुआ कि दारा को प्राण दण्ड दिया जाये तथा उसके पुत्र सिपिहर शिकोह को ग्वालियर मे बन्द कर दिया जाये। (इस सभा मे रौशनारा बेगम ने अपने मन्द भाग्य भाई के विरुद्ध अपनी समस्त प्राचीन शत्रुता का परिचय दिया, उसने दानिशमन्द की युक्तियो का खण्डन किया तथा औरगजेब को इस दूषित तथा अप्राकृतिक हत्या पर उत्तेजित किया। उसके प्रयासो का समर्थन आशातीत सफलता से भी अधिक खलीलुल्लाखाँ तथा शाइस्ताखाँ ने किया जो दोनो दारा के पुराने शत्रु थे।) तकर्रुबखाँ ने भी समर्थन किया जो दुष्ट परोपजीवी था, जो हाल ही मे उमरा के पद पर उन्नत कर दिया गया था तथा जो पहले चिकित्सक (हकीम दाऊद नामक)

१—बर्नें की यात्रायें I पृ० ९९–१०० ।

था ।"[1] दारा के प्रभुत्व काल मे उलमा (धर्मशास्त्रविदो) की बुरी दशा रही थी। उन्होने अब उदार धर्मी दारा के विरुद्ध मृत्यु का फतवा (धर्म-आज्ञा) निकाल दिया। "शरीअत तथा मजहब के स्तम्भभूत विद्वानो को उसके जीवन से अनेक प्रकार के भय थे। अतः मजहब तथा शरीयत की रक्षा करने की आवश्यकता के कारण तथा राजनैतिक विचारो के कारण भी सम्राट् ने इसको अन्याय समझा कि सार्वजनिक शान्ति के भगकर्ता दारा को और जीवित रहने दे।" औरगजेब के अधिकाराधीन प्रकाशित अधिकृत इतिहास[2] इस प्रकार इस राजनैतिक हत्या कर्म को न्यायोचित ठहराता है।

अगले प्रभात (३० अगस्त) को मलिक जीवन की सेवाओ के प्रति अपनी गुणग्राहकता प्रकट करने के लिये औरंगजेब ने एक दरबार किया। जब इस नव निर्मित सामन्त का दल नगर से होकर जा रहा था, विश्वासघात के प्रति दिल्ली की जनता का रुका हुआ क्रोध उबल पडा। "बेकार लोग' दारा के पक्षपाती, कारीगर तथा सब तरह के लोग (अक्षरशः हर पेशे के), एक दूसरे को उत्तेजित कर, एक अनियन्त्रित जन-समूह मे एकत्र हो गये तथा उन्होने गालियो और शापो की मलिक जीवन तथा उसके साथियो पर बौछार कर दी, उन्होने उस पर कूडा और कीचड फेंका और ढेले तथा पत्थर बरसाये। परिणाम यह हुआ कि कुछ गिर गये और मर गये) जीवन के सिर पर ढालें तान दी गई और इस प्रकार उसकी रक्षा की गई। अन्त मे भीड मे से होकर वह महल तक पहुँच गया। लोग कहते हैं कि आज के दिन इतना बडा विप्लव हुआ कि यह लगभग विद्रोह मालूम पडता था। यदि कोतवाल अपनी पुलिस लेकर न आ जाता (विद्रोह का दमन करने के लिये) तो मलिक जीवन के अनुचरों मे एक भी जीवित न बचता। अपने घरो की छतो से अफगानो के सिरो पर स्त्रियो ने मूत्र और मल से भरे हुए इतने कुल्हड (कौजा) और इतनी राख फेकी कि बहुत से पास खडे हुए लोग भी घायल हो गये।"[3] किन्तु इस घटना से दारा का अन्त समय और भी पास आ गया।

सायकाल को औरंगजेब ने रजर कुली (बेग) को अपनी समुपस्थिति में बुलाया और उसको आज्ञा दी कि सिपिहरशिकोह को उसके पिता से अलग

१—बर्नें की यात्रायें I पृ० १०१।

२—आलमगीरनामा; देखो औरगजेब का इतिहास I तथा II पृ० ५४४–५४५।

३—खफीखॉं III पृ० ८६, इलियट तथा डासन में अनूदित VII पृ० २४६। मलिक जीवन के सम्बन्ध में बर्नें कहता है—"परन्तु वह उस भाग्य से न बच सका, जिसका वह पात्र था। रास्ते में उस पर आक्रमण हुआ तथा अपने प्रदेश में कुछ मील अन्दर उसका बध कर दिया गया।" बर्नें की यात्रायें पृ० १०४।

कर दे तथा दारा का सिर उसके पास ले आये। इस हत्या-कार्य का निरीक्षण शफीखाँ के सुपुर्द किया गया। रात हो जाने पर दारा को भय हुआ कि उसको विष दे दिया जायेगा। जब वह अपने पुत्र सिपिहरशिकोह के साथ मसूर पकाने मे व्यस्त था, नजर तथा उसके नारकीय साथियो ने कमरे मे प्रवेश किया। इन रक्त के प्यासे व्यक्तियो के इस अग-विन्यास को देखकर राजकुमार तुरन्त चौक उठा तथा पीछे हठ कर बैठ गया। उसने उनसे कहा—"क्या आप लोग हमको मारने के लिये भेजे गये है?" उन्होने उत्तर दिया—"किसी को मारने के विषय मे हम इस समय कुछ नही जानते हैं। आज्ञा यह हुई है कि आपका पुत्र आपसे अलग कर दिया जाये तथा अन्यत्र सुरक्षण मे रख दिया जाये। हम उसको लेने के लिये आये है।" सिपिहरशिकोह अपने पिता के घुटनो से घुटना अडा कर बैठा हुआ था।[१] कुबडे नजर ने सिपिहरशिकोह पर अपनी विषपूर्ण दृष्टि को डाल कर कहा—"उठ।" इस पर सिपिहरशिकोह अचेत होकर अपने पिता की टॉगो मे चिपट गया। पिता-पुत्र ने एक दूसरे का दृढ आलिगन कर लिया और 'हाय-हाय' कह कर चिल्लाने लगे। कठोर तथा भर्त्सनायुक्त स्वर मे गुलामो ने सिपिहरशिकोह को कहा—'उठ, नही तो हम तुझको खीच ले जायेंगे और उसको छुडाने के लिये वे उसको पकडने लगे। दाराशिकोह ने अपने आँसू पोछ डाले, गुलामो को सम्बोधित किया और कहा—"जाओ और मेरे भाई को कहो कि उसके इस निष्पाप भतीजे को यहाँ रहने दे।" उत्तर मे गुलामो ने कहा—"हम किसी के सन्देश-हर नही है। हमको अपनी आज्ञा का पालन करना है।" और ये शब्द कह कर वे आगे को झपटे और.बलपूर्वक उसको अपने पिता के आलिगन से खीच लिया। जब दारा को निश्चय हो गया कि उसका अन्तिम क्षण आ गया है, उसने एक तकिया फाड कर एक छोटा कलमी-चाकू निकाला जिसको उसने वहाँ पर छुपा रखा था। जो गुलाम उसको पकडने आगे की ओर बढ रहा था वह उसकी ओर मुडा और इस छोटे चाकू को इस जोर से दुष्ट के पार्श्व मे भोक दिया कि वह हड्डी मे जकड कर रह गया। यद्यपि राजकुमार ने इसको बाहर निकालने का प्रयत्न

१—तारीखे शुजाई की हस्तलिखित प्रति में, जो खुदाबख्श पुस्तकालय में है, यह शब्द है—'बद्राज'—जिसका अर्थ है—उडना। भारतीय कार्यालय की ह० लि० प्र० में है—बर जुश्ता बर दो जानुवी निशात। 'बर दो जानवी' का वास्तव में यह अर्थ नही है—(विनम्रना में) झुकना। पाल्थी मार कर बैठने के विरुद्ध यह बैठने का एक ढग है। टागों को पीछे की ओर मोडकर घुटनों पर बैठना इस समय भी बैठने का साधारण ढग है—विशेष कर अपने से बडे के सामने। खुदाबख्श की ह० लि० प्र० अधिक यथार्थ प्रतीत होती है, क्योंकि उडना वा पीछे मुडना प्रसग के अधिक उपयुक्त है।

किया, वह सफल न हुआ। तब दाराशिकोह ने दाये बाये लोगो को कुछ मुक्के लगाये। अन्त मे वे सब मिलकर उस पर झपटे और उसको गिरा दिया। सिपिहरशिकोह का वेदनामय आक्रोश एक पास के कमरे से जहाँ वह था, दारा के कानो तक पहुँचता रहा जब वे अपना क्रूर कार्य कर रहे थे।[1] अपने देशवासियो के समान भक्ति-मूलक विश्वासशीलता के प्रति उन्मुख तारीखेशुजाई का लेखक यह और कहता है—"इस पापी ने सुना है कि कार्य समाप्त होने के बाद राजकुमार दाराशिकोह के सिर से जोर से 'कलिमै शहादत' (धर्म का मुस्लिम स्वीकरण) निकला जिसको बहुत से लोगो ने सुना।"[2]

दारा का कटा हुआ सिर तुरन्त औरगजेब के पास लाया गया। उसने आज्ञा दी कि यह सिर रकाबी मे रखा जाये और धोकर खून से साफ कर दिया जाये। जब उसको पूरा सन्तोष हो गया कि यह सिर दारा ही का है, वह जोर से चिल्लाया—"हा बदबख्त (भाग्यहीन)! मैने धर्म विमुख इस मुख को कभी न देखा जब तू जीवित था और न मै अब देखूँगा।" अगले दिन प्रातःकाल ही (३१ अगस्त, १६५६) दारा का शव एक हाथी पर रखा गया तथा दिल्ली नगर के प्रत्येक बाजार और गली मे इसका प्रदर्शन किया गया। इस दारुण दृश्य पर समीपस्थ लोग रो पडे। उसी दिन कोतवाल ने पूर्वदिवस के दगे को जॉच पडताल की तथा मलिक जीवन पर हुए आक्रमण की जॉच की। हैबत को जो रक्षा-दल का एक अहदी (उच्चवर्गीय अश्वारोही) था, और जिसने अपने सहवासी नागरिको को विश्वासघातक पर प्रतिशोध लेने के निमित्त उत्तेजित किया था, औरगजेब ने अति निष्ठुर प्रकार की मृत्यु का दण्ड दिया। उसको अति बर्बरता से दो अर्ध भागो मे जीवित ही चीर डाला गया।

बधित राजकुमार के सिर के साथ औरगजेब ने क्या व्यवहार किया—इस विषय पर दारा का घोर पक्षपाती मनुची एक आख्यायिका कहता है जिसकी वास्तविकता पर सन्देह किया जा सकता है। वह कहता है कि रौशनारा बेगम के सुझाव पर दारा का कटा हुआ सिर सुगधित किया गया, एक सन्दूक में बन्द किया गया तथा एक उपहार के रूप मे उसके पुत्र औरगजेब की ओर से शाहजहाँ को भेजा गया। इसमे क्या है यह न जानते हुए बन्दी सम्राट् ने पेटी को यह कहते हुए स्वीकृत कर लिया कि उसको कुछ सन्तोष है कि उसके अपहारक पुत्र ने उसको बिल्कुल नही भुला दिया है। परन्तु जब पेटी खोली गई,

---

१—मासूम—भारतीय कार्यालय ह० लि० प्र० १४४ ब, १४५ अ, औरगजेब के इतिहास में अनूदित I तथा II पृ० ५४८–५४९।

२—पूर्ववत्।

सम्राट् अचेत हो गया तथा जहाँनारा ने अपने पिता के बन्दी-कक्ष को अपने वेदना के चीत्कारो से विदीर्ण कर दिया। (कहावते II)

औरगजेब के चरित्र के सम्बन्ध मे यद्यपि ऐसा कर्म शायद इतना वीभत्स नही है कि इस पर विश्वास न किया जा सके, तथापि इसको ऐतिहासिक तथ्य नही मान सकते, क्योकि अन्य कोई लेखक यूरोपीय या भारतीय इसका समर्थन नही करता। समस्त समकालीन घटना-लेखक तथा परवर्ती इतिहासकार यह निश्चय से कहते है कि दारा का कटा हुआ सिर फिर से उसके धड मे जोड दिया गया तथा उसके अवशेष हुमायूँ के मकबरे (समाधि भवन) को पहुँचा दिये गये और भूमि गर्भ में स्थित एक कब्र मे सुरक्षित कर दिये गये। शव को न स्नान कराया गया और न उसके निमित्त कोई प्रार्थना की गई।

मानुषी तथा दैवी प्रेम के प्रति शहीद मुहम्मद दाराशिकोह वीरात्मा था, जो मनुष्यमात्र के प्रति शान्ति तथा प्रीति का समर्थक था तथा जो अन्ध प्रमाण एवं विश्वास के बन्धनो से मानुषी बुद्धि को मुक्त करना चाहता था। उसने अपने जीवन तथा मृत्यु के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि 'मनुष्य के प्रति ईश्वर का विधान' अज्ञेय है।

अध्याय १२

औरंगज़ेब और दाराशिकोह का परिवार

विभाग १—सुलेमानशिकोह की गति

मिर्जा राजा जयसिंह, दिलेरखॉ तथा अन्य शाही अधिकारियो द्वारा त्याग दिये जाने पर सुलेमानशिकोह ने कोडा से इलाहाबाद की ओर लौटना आरम्भ कर दिया (४ जून, १६५८)। उसकी भारी तथा विजयी सेना अस्त होगई थी तथा दारा के विश्वस्त अधिकारी बकीबेग के अधीन केवल ६ हजार मनुष्य शेष रह गये थे। सुलेमान ने अपना भारी सामान, सोने की पालकी, छत्र, चमरादि राज-चिह्न, तथा अपने अन्त:पुर की अनावश्यक महिलाओ को सैयद हाशिम बारहा नामक एक वीर अधिकारी के सरक्षण मे इलाहाबाद के किले मे छोड दिया। उसकी योजना थी कि दिल्ली से सुदूर रहकर सहारनपुर तथा अम्बाला के अरक्षित अर्ध पर्वतीय जिलो से सुविधापूर्वक गमन करके वह लाहौर मे अपने पिता से जाकर मिल जाये। १४ जून को उसने गंगा को पार किया तथा लखनऊ और मुरादाबाद के मार्ग से गमन करता हुआ वह नगीना पहुँच गया।

उसका इरादा था कि गगा को यहाँ पुनः पार करके वह उसके दक्षिण तट पर पहुँच जाये। परन्तु यहाँ के लोग शत्रुवत् थे। उसकी सेना के आगमन को देखते ही प्रत्येक घाट पर नावे नदी के दूसरे तट पर चली जाती। वह नदी के किनारे-किनारे और आगे बढा और हरद्वार के सम्मुख चण्डी पर ठहर गया। यहाँ पर वह अपने अधिकारी भवानीदास की प्रतीक्षा कर रहा था जिसको उसने श्रीनगर के राजा पृथ्वीसिंह के पास सहायता की चर्चा के निमित्त भेजा था। परन्तु यह पडाव घातक सिद्ध हुआ। औरगजेब ने शाइस्ताखाँ के अधीन एक सेना भेज दी थी कि वह पजाब को सुलेमान के नियोजित प्रत्यागमन के मार्ग को काट दे और उसको हरद्वार में रोके रहे। एक उत्साही अधिकारी फिदाईखाँ को, जो शाइस्ताखाँ के मुख्य दल से बहुत आगे था, कुमायूँ के राजा का एक पत्र मिला जिसमे उसने सूचना दी थी कि सुलेमानशिकोह हरद्वार के सम्मुख उपस्थित है। हापुड के दक्षिण-पूर्व मे पुठ से फिदाईखाँ एक दिन मे १६० मील पार कर गया और केवल ५० व्यक्तियो के साथ हरद्वार पहुँच गया।

अपने सैनिको के विशेष कर बारहा के सैयदो की चीख पुकार से बेचारा राजकुमार घबरा उठा। सैयदो को अपने घरो तथा परिवारो की सुरक्षा के प्रति बहुत भय उत्पन्न हो गया था। केवल २ हजार सैनिको के साथ उसने श्रीनगर के राजा के प्रदेश मे प्रवेश किया। अपने सैनिको के निराकरण की शर्त पर राजा ने उसको सकुशल शरण की प्रतिज्ञा की थी। बकीबेग जो बहुत दिनो से नवयुवक राजकुमार का उपदेष्टा था श्रीनगर के मार्ग पर मृत्यु को प्राप्त हो गया। नवयुवक सुलेमान के पास अब कोई परामर्शक न रह गया था। उससे अपने निर्णयो मे बहुत सी भूलें हुईं और अपने ही परिचारी वर्ग मे विश्वासघातियो के हाथ का वह खिलौना बन गया। उसको एक जाली पत्र से धोखा हुआ जिसका आशय था कि इलाहाबाद के किले के आज्ञापक ने उसको लिखा था तथा इसमे उसको यह समाचार दिया गया था कि शुजा इलाहाबाद के पास आ गया है। राजा की रक्षा का त्याग कर सुलेमान अपने श्रद्धाहीन अनुचरो सहित नगीना आ गया जहाँ एक ही दिन मे केवल सात सौ सैनिकों को छोडकर उसके समस्त अनुचरो ने उसका साथ त्याग दिया। अगले दिन उसने पहाडियो को वापस जाने का निश्चय किया। परन्तु केवल २०० व्यक्ति उसके साथ वहाँ जाने को तैयार हुए। उसका पीछा करने वाले भी उसके पास पहुँच गये थे। अन्त मे अपनी वधू, थोडी-सी अन्य महिलाओं, अपने धाय भाई मुहम्मदशाह तथा १७ अनुचरो को लेकर भाग्यहीन राजकुमार ने अपने को श्रीनगर के राजा की रक्षा तथा सम्मान पर छोड़ दिया।

दिल्ली के अपहृत राजसिंहासन पर औरगजेब चिन्ताकुल ही था जब तक कि वह सुलेमानशिकोह के शरीर पर अधिकार न प्राप्त करले या उसका बध न करा दे, क्योकि वह अपने पिता की अपेक्षा शासन के अधिक योग्य था तथा वह शाहजहाँ का प्रियतम पौत्र था। जुलाई, १६५६ मे उसने अधिकतम विश्वास-घातक राजा राजरूप को पृथिवीसिंह के विरुद्ध भेजा था, और एक वर्ष से भी अधिक ईश्वर-भीरु तथा वीर श्रीनगर के राजपूत सरदार ने अपने प्रदेश तथा अपने अतिथि की सफलतापूर्वक रक्षा की। पलायक राजकुमार के प्रति राजा कृपा तथा उदारता की मूर्ति ही था। कहा जाता था कि उसने अपनी एक पुत्री का विवाह भी उससे कर दिया था। शस्त्रो की मन्द गति पर अधीर होकर औरगजेब ने कूटनीति की शरण ली तथा इस विषय मे उसने मिर्जा राजा जयसिंह से सहायता माँगी। उस समय राजा दरबार मे उपस्थित था। उसने पृथिवीसिंह को मैत्रीपूर्ण पत्र लिखे। उसने परामर्श दिया कि सुलेमानशिकोह का समर्पण करके वह अवश्यभावी विनाश से अपनी रक्षा करे। श्रीनगर के वृद्ध सरदार को प्रलोभन देने मे असफल होकर जयसिंह उसके सर्व-शक्ति-सम्पन्न ब्राह्मण मन्त्री से षडयन्त्र करने पर उतारू हो गया। ब्राह्मण मन्त्री को यह अशक्य प्रतीत हुआ कि पलायक राजकुमार का साथ छोडने पर वह राजा को प्रलुब्ध कर सकेगा। अतः उसने औषध के रूप मे सुलेमान को घातक विष दे दिया, परन्तु सावधान राजकुमार ने पहले एक बिल्ली पर इसका प्रयोग किया। अपने मन्त्री के इस जघन्य प्रयास की सूचना पाकर राजा ने तुरन्त दुष्ट का सिर कटवा दिया। आगे चलकर जयसिंह ने राजा के पुत्र मेदिनीसिंह से षड्यन्त्र किया। उसको प्रोत्साहन दिया कि अपने पिता के प्रति वह औरगजेब बन जाये। दारा के भाग्य मे यह लिखा था कि उसका विश्वासघात होता रहे—विशेषकर उन लोगो के द्वारा जो उसके प्रति अति कृतज्ञ थे। मेदिनीसिंह ने अपने पिता को लगभग बन्दी ही बना लिया तथा इसका प्रबन्ध कर दिया कि पलायक गण जयसिंह के आदमियो को समर्पित कर दिये जाये। (मासूमकृत तारीखे शुजाई)।

परन्तु अधिकृत वृत्तान्त के अनुसार, जैसा कि आलमगीर नामा तथा मासीरे आलमगीरी के लेखको ने दिया है, पृथिवीसिंह ने ही अपनी इच्छा से जयसिंह को पत्र लिखा था और उसमे यह सूचना दी थी कि वह सुलेमान को समर्पित करने को तैयार है यदि मिर्जा राजा अपनी मध्यस्थता द्वारा सम्राट् से उसकी भूल को क्षमा करा दे। जयसिंह की प्रार्थना पर सम्राट् ने श्रीनगर के सरदार के अपराधो को क्षमा कर दिया। सम्राट् ने जयसिंह को कहा कि वह अपने पुत्र रामसिंह को सुलेमानशिकोह को लाने के लिये श्रीनगर भेज दे। २७ दिसम्बर १६६० को पृथिवीसिंह ने अपने पुत्र मेदिनीसिंह के साथ बन्दी राजकुमार को

पहाड से भेज दिया। २६ दिसम्बर को यह समाचार सम्राट् को पहुँचा और उसी दिन जयसिंह को एक रत्न जटित तुर्रा पुरस्कार मे दिया गया। २ जनवरी, १६६१ को कुँवर रामसिंह, तरबियतखाँ, रदन्दाजखाँ तथा अन्य शाही मन्सबदार बन्दी राजकुमार को अपने साथ लेकर आ गये। औरगजेब के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान के साथ वह ठहरा दिया गया। मुहम्मद सुल्तान उस समय सलीमगढ मे बन्दी था क्योकि उसने अपने चाचा शुजा का साथ दिया था।

तीन दिन बाद सलीमगढ के कारागार दुर्ग से शृङ्खलाबद्ध बन्दी सुलेमान शिकोह को दरबार खास मे औरगज़ेब के सम्मुख उपस्थित किया गया (५ जनवरी, १६६१)। इस दुखित अवस्था मे भी वह अङ्ग-प्रत्यङ्ग से साक्षात् राजकुमार दीखता था तथा उसने बहुत आत्म-नियन्त्रण पूर्वक व्यवहार किया। उसने अपने चाचा को साहसपूर्वक कहा कि ग्वालियर के कारागार मे अफीम का रस पीने पर विवश किये जाने की अपेक्षा वह तत्क्षण मृत्यु को श्रेय समझेगा। औरगजेब ऊपर से सुलेमान के प्रति दयालु तथा कोमल था। उसने स्पष्टता तथा गम्भीरता से प्रतिज्ञा की कि पोस्ता का पानी उसको कभी न दिया जायेगा। सुलेमान ग्वालियर के राजकीय कारागार मे भेज दिया गया (१५ जनवरी, १६६१)।[1] जो कुछ दीवान खास मे उसके मुख से निकला था, उसके विपरीत ही औरगजेब का अभिप्राय था। एक वर्ष तक पोस्ता का वह पानी उसको पीने को दिया गया जिससे वह बहुत डरता था। परन्तु युवावस्था की उसकी जीवन शक्ति इस मन्द विष से प्रबल सिद्ध हुई। अतः औरगजेब की आज्ञा से गला घोट कर उसको मार दिया गया। वह मुरादबख्श के पास दफन कर

१—सुलेमानशिकोह को अपने अधिकार में प्राप्त करने के लिये श्रीनगर के राजा के विरुद्ध जयसिह द्वारा औरगज़ेब के इस षडयन्त्र पर आलमगीर नामा (पृ० ६००-६०२) तथा मासीरे आलमगीरी (पृ० ३३) मौन है। समस्त अनधिकारी वृत्तान्त—जैसे मासूम (१५७ ब, १५६ ब), तवर्ने (I २६०-२६२), बर्ने (३७८-३८०), और मनुची (I १०५) इस तथ्य को निश्चित रूप से स्थापित कर देते है कि औरगजेब ने जयसिह को यह विषय सुपुर्द कर दिया था। श्रीनगर में सुलेमान के जीवन का वृत्तान्त तथा पलायक राजकुमार के समर्पण की कथा मासूम देता है। बर्ने का भी यह मत है—"षडयन्त्रों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणों ने श्रीनगर के राजा पर यह दबाव डाला कि पलायक राजकुमार का समर्पण कर दे"। बर्ने यह भी विश्वास करता है कि "जयसिह के षडयन्त्रों ने, औरगज़ेब की प्रतिज्ञाओ तथा भर्त्सनाओं ने • • इस कातर शरणदाता की दृढता को हिला दिया।" सिवाय मासूमकृत तारीखे शुजाई में हमारे पढने में और कही यह नही आया है कि पृथिवीसिह के मन्त्री ने सुलेमान को विष देने का प्रयत्न किया तथा श्रीनगर में मेदिनीसिह ने सत्ता का अपहरण कर लिया। तब भी उसका वर्णन प्राय यथार्थ प्रतीत होता है। हमको विश्वास है कि औरगज़ेब के हाथों में विश्वासघात-पूर्वक सुलेमान को समर्पित करने के प्रकरण में श्रीनगर के वृद्ध राजा का कोई हाथ नही है।

दिया गया। वह भी इस विकट कारागार मे इसी प्रकार मारा गया था। इस प्रकार तीस वर्ष की आयु पर सुलेमान का उज्ज्वल आशामय जीवन हिंसापूर्वक समाप्त कर दिया गया।

सुलेमान के अभागे बच्चो मे से सलीमाबानू नामक एक पुत्री का पालन-पोषण किया गया तथा गौहरआरा बेगम ने अपने शिशु के रूप मे उसको गोद ले लिया। मुहर्रम १०८२ हि० (जून, १६६२) मे राजकुमार मुहम्मद अकबर से उसका विवाह कर दिया गया। सुलेमानशिकोह की एक दूसरी पुत्री १६७८ ई० मे ख्वाजा बहाउद्दीन को ब्याह दी गई। (मासीरे आलमगीरी पृ० ११८, १६६)।

विभाग २—दारा के अन्य बच्चों की गति

दारा के अन्तिम आलिंगन से सिपिहरशिकोह को बलपूर्वक अलग कर लिया गया था तथा उसके पिता की हत्या के शीघ्र पश्चात् उसको बन्दी बना कर ग्वालियर भेज दिया गया था। ग्वालियर मे १२ वर्ष के कारागारवास के बाद उसका भाग्य कुछ सुधर-सा गया। सम्राट् की आज्ञा से मुल्तफतखाँ उसको दिल्ली ले आया और ८ दिसम्बर, १६७२ को सलीमगढ के बन्दी-अट्ट मे वह रख दिया गया। १६ दिसम्बर को सिपिहरशिकोह सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किया गया तथा औरंगजेब की एक कन्या जुब्दतुन्निसा से उसका विवाह कर दिया गया (३० जनवरी, १६७३)। इस वैवाहिक सम्बन्ध से केवल एक मात्र पुत्र अलीतबर का जन्म हुआ (१३ जुलाई, १६७६)। वह ६ मास से अधिक जीवित न रहा। औरंगजेब के शासन-काल के अधिकृत इतिहास-ग्रन्थ में सिपिहरशिकोह के सम्बन्ध मे इससे अधिक हमको और कुछ नही मिलता।[1]

. नादिरा बानू से उत्पन्न दारा की दो कन्याये अपने पिता और दूसरे भाई के साथ बन्दी कर ली गई थी। वे दिल्ली लाई गई तथा प्रथम देख-रेख के लिये औरंगजेब के अन्तःपुर मे भेज दी गई। परन्तु शाहजहाँ तथा जहाँनारा की प्रार्थना पर उनके साथ रहने के लिये वे आगरा भेज दी गई। इन दोनो मे से बडी जानी बेगम[2] युवावस्था प्राप्त करने पर अत्यन्त सुन्दरी तथा गुणवती महिला सिद्ध हुई। उसका विवाह औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मुहम्मद आजम से हुआ।

१—देखो मासीरे आलमगीरी—पृ० १२१, १२४, १२५, १५४

२—दारा की दुख-कथा में रोमाञ्चक भाव की अन्तिम झलक उसके (जानी बेगम के) एक पराक्रम में मिलती है। देखो—सर जदुनाथ सरकार कृत—औरंगजेब का इतिहास IV पृ० ३०१–३०२। मराठों के हाथों से अनुरुद्धसिंह हाडा द्वारा जानी बेगम की रक्षा का स्वतन्त्र तथा अधिक विस्तृत वृत्तान्त वंश भास्कर में है। इन दोनों वृत्तान्तों के गौण विवरणों में कुछ भेद है। (वंशभास्कर पृ० २८६९–७१)

अध्याय १३

दारा और एक हिन्दू तपस्वी

बाबा लाल जाति से क्षत्रिय था। उसका जन्म मालवा में जहाँगीर के शासन-काल मे (१६०५–१६२७) हुआ था। वह चेतन स्वामी का अनुचर था, जो महान् सन्त था तथा अनेक अलौकिक कर्म करने का श्रेय उसको प्राप्त था। कहा जाता है कि एक दिन भिक्षा के रूप मे चेतन स्वामी ने बाबालाल से कुछ चावल तथा ईंधन माँगा, अपनी टाँगो के बीच मे अग्नि जलाई तथा एक बर्तन को अपने पैरो से थामे रहा जिममे चावल उबल रहा था। यह अलौकिक कर्म देखकर बाबालाल, सन्त के सम्मुख साष्टाग पड गया और उसको अपना गुरु (आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक) मान लिया। उसके गुरु ने उसको पके चावल का एक दाना दिया। इसको उसने खा लिया जिससे समस्त विश्व के भेद तुरन्त उसको प्रकट हो गये। वह चेतन स्वामी के साथ लाहौर गया। वहाँ पर एक दिन योग मे अपने शिष्य की परीक्षा लेने के लिये सन्त ने उसको आज्ञा दी कि लाहौर से कई सौ मील की दूरी पर स्थित काठियावाड के प्रायद्वीप मे द्वारिका से वह कुछ गोपी चन्दन (सफेद-सी मिट्टी जिसको वैष्णव पवित्र समझते हैं) ले आये। कहा जाता है कि आधे घण्टे के भीतर ही अपनी लम्बी यात्रा को समाप्त करके द्वारिका से गोपीचन्दन लेकर बाबालाल लौट आया। इस पर उसके गुरु ने उसको वहाँ से जाने की आज्ञा दे दी तथा स्वतन्त्र रूप से गुरु की भाँति बसने का आदेश दिया। वह सरहिन्द के निकट ध्यानपुर मे रहने लगा। यहाँ पर उसने अपने लिये एक आश्रम बनाया और अपने मत मे लोगो को दीक्षा देने लगा। उसका मत यह था कि ईश्वर एक है, निराकार है, केवल उसी की उपासना उचित है जिसके लिये किसी बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नही है। उसके मत में वेदान्त दर्शन तथा सूफीवाद के बहुत से तत्व सम्मिलित थे। उसके अनुचर अपने को बाबालाली कहते थे तथा उसके सिद्धान्त के अनुसरण करने वालो मे राजकुमार दाराशिकोह भी था।[1]

लाहौर के एक उपनगर कोटल-मेहराँ[2] मे बाबालाल निवास कर रहा था। जब कन्धार के असफल अवरोध के बाद (२२ नवम्बर, १६५३) दरबार को, वापस जाते हुए दाराशिकोह वहाँ पर ठहरा हुआ था, लाहौर मे दारा के तीन

१—गार्सिन द तासी I ९४-९६। एशियाई अनुसन्धान XVII—पृष्ठ २९६–अ०।

२—कोटल मेहराँ निस्सन्देह "कुई मीरन" है जो लाहौर का एक उपनगर है। (लाहौर जिला गजेटियर १८८४—पृ० १९२)

सप्ताह के विश्राम मे (दिसम्बर, १६५३ के मध्य तक) नियुला मे स्थित राय चन्द्रभान ब्राह्मण के घर पर राजकुमार तथा हिन्दु तपस्वी के बीच मे एक बहुत रोचक धार्मिक सवाद हुआ[1] । यह सवाद ६ दिन तक होता रहा तथा दो मजलिसे (अधिवेशन) प्रतिदिन होते रहे । वार्तालाप उर्दू मे हुए और ऐसा मालूम होता है कि राय जाधवदास ने एक प्रतिलिपि पुस्तक मे इनको लेख-बद्ध कर लिया[2] । बाद मे राय चन्द्रभान (मुशी) ने इनका अनुवाद फारसी मे किया और ये नादिरुलनुकात के नाम से प्रकाशित किये गये । इस धार्मिक सवाद की प्रकृति के विषय मे महान् फ्राँसीसी समालोचक हुअर्ट तथा मस्सीग्नो उचित टिप्पणी करते है—"ये सवाद वास्तव मे हुए तथा १०६३ हि० (१६५३ ई०) के अन्त पर हुए जैसा कि मालूम होता है । अधिकृत सम्भाषणो की विवादात्मक तथा प्रथानुसारी प्रकृति के सदृश इनकी प्रकृति नही है जिनका सगठन ससानियो के दरबार मे प्रतिद्वन्द्वी धर्मो के प्रतिनिधियो के बीच मे हुआ करता था । ये राजकुमार के प्रश्न है जो पूर्ण सहानुभूति तथा विश्वास मे तपस्वी से किये गये है जिसका वह सम्मान करता है और जो मित्र की भाँति उसको उत्तर देता है । यद्यपि सवाद के विषयो का सम्बन्ध भारत की परम्परागत सभ्यता के अतिविभिन्न क्षेत्रो से है सर्वथा मौलिक स्थल वे है जिनमे दाराशिकोह यह प्रयास करता है कि मुसलमान के रूप मे उसके धार्मिक अनुभव का विश्लेषण बाबालाल हिन्दु पारिभाषिक शब्दो मे करे··· ·"[3] । वे ही समालोचक अन्यत्र कहते है—"तपस्वी बाबा लालदास के विपय मे जो अद्भुत टिप्पणी दारा ने की है (अपनी शतहात में—उर्दू अनुवाद, लाहौर, पृष्ठ १४४) उससे हमने देखा है कि वह मुण्डिया था (मुण्डे सिरका साधु) तथा वह कबीर पन्थी सम्प्रदाय का था । अतः इस प्रकार यह कबीर का महाप्रताप है जिसने हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों के बीच मे उस समाधान के बीज की रक्षा की हे जिसको

१—नियुला लाहौर के नगर का वह भाग मालूम होता है जिसको इस समय नौलखा कहते है । लाहौर जिला गजेटियर में इसकी स्थिति का वर्णन इस प्रकार है—"माल के उत्तर में कुछ दूरी पर और एक खुले तथा अब तक निर्जन क्षेत्र द्वारा इससे विभक्त रेलवे स्टेशन है जो बगलों के एक उपनिवेश का केन्द्र है । स्टेशन के इस भाग को नौलक (नौलखा) कहते है । यह एक समय प्राचीन नगर का एक भाग था ।" । (पूर्ववत् पृष्ठ १६४)

२—प्रो० विलियम उससे जदुदास कहता है । उसके प्रमाणानुसार यह सम्वाद १६४६ में हुआ (देखो गार्सिन द-तासी I ६६), परन्तु यह गलत है । रिसालै उसूलहु अजूलहे दाराशिकोह के नाम से उर्दू में इस सम्वाद नादिरुल नुकात का अनुवाद हुआ । गार्सिन-द-तासी I पृ० ६६) ।

३—जनरल एशियाटिक १६२६ (अक्तूबर-दिसम्बर) ।

उसने १५वीं शताब्दी मे उदारतापूर्वक बोया था। इस क्षण पर जब भारत का ऐक्य इस पर निर्भर है कि इन दो आध्यात्मिक तत्वो के पारस्परिक बोध के निमित्त नवीन प्रयास किया जाये, यह न्यायसगत ही है कि बाबालाल तथा दारा के व्यक्तित्व की ओर उचित ध्यान दिया जाये।"[१]

इसमे सन्देह नही है कि अकबर से महात्मा गाधी तथा रवीन्द्रनाथ तक महान् विचारको तथा धार्मिक सुधारको की क्रमागत पीढियो की प्रेरणा का आदि स्रोत कबीर है। इन्होंने मनुष्यमात्र को शान्ति तथा प्रेम का पाठ पढाया है, इन्होने प्रयत्न किया है कि जातियो तथा धर्मो के बीच की खाई को पाट दे। परन्तु स्वय दारा के प्रमाण पर यह स्वीकार करना कठिन है कि बाबालाल सर्वथा कबीरपन्थी था। इसमे सन्देह नही है कि अपने तपश्चर्यामय जीवन के आरम्भ मे बाबालाल हठयोगी था। (एक सम्प्रदाय जो घोर शारीरिक कष्ट सहन वा आसनो मे विश्वास रखता है जिनके द्वारा उनके अनुसार अलौकिक कर्म किये जाते हैं) बाद को वह गूढ-द्रष्टा हो गया तथा कबीर की भाँति उसको यह विश्वास हो गया कि एक सर्व-शक्तिमान् निराकार ईश्वर ही उपासना के योग्य है। वह सर्वप्रिय हिन्दी पद्यो में ईश्वर की स्तुति किया करता तथा अपने आध्यात्मिक अनुभव के गीत गाता। जैसा कि सवाद के निम्नलिखित उद्धरणों से प्रकट होगा, बाबालाल को पुस्तकस्थ विद्या तथा योगाभ्यास से वह घृणा न थी जो कबीर को थी, और न वह कबीर की भाँति मूर्तिपूजा तथा धर्म के बाह्याङ्गो की कठोर निन्दा करता था।

यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि इस रोचक सवाद नादिरुलनुकात का फारसी पाठ्य हमको केवल खण्डित तथा अशुद्ध प्रतिलेखो मे प्राप्त हो सका है। चूँकि यह सवाद व्यक्ति की अन्तरात्मा को प्रकट करता है, यह अनुचित न होगा कि यहाँ पर प्रकाशित पाठ्य से कुछ उद्धरणो का अनुवाद दिया जाये।

१ प्रश्न—नाद तथा वेद मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—वही अन्तर है जो आज्ञा देने वाले राजा मे तथा उसके द्वारा दी हुई आज्ञा में है। प्रथम नाद है और द्वितीय वेद।

२ प्रश्न—चन्द्र का प्रकाश क्या है, उसमे काली जगह क्या है तथा उसकी श्वेतता का कारण क्या है ?

उत्तर—स्वय चन्द्र मे कोई प्रकाश नही है। यह सर्वथा रङ्गहीन पदार्थ है जिस पर सूर्य की किरणें पडती है, इसकी श्वेतता पृथ्वी के समुद्रो का प्रतिबिम्ब है तथा इसकी काली जगह भूमि का प्रतिबिम्ब है।

१—पूर्ववत्।

३ प्रश्न—यदि यह प्रतिबिम्ब की बात है, तो यह सूर्य पर उसी मात्रा मे क्यो नही प्रकट होता है ?

उत्तर—सूर्य अग्नि के गोले की भाँति है और चन्द्र जल के गोले की भाँति है। प्रतिबिम्ब पानी मे पडता है, परन्तु अग्नि मे नही।

६ प्रश्न—हिन्दुओ मे मूर्ति-पूजा का क्या सिद्धान्त है ? किसने इसको विहित किया है ?

उत्तर—हृदय को बल देने के लिये यह आलबन रूप से स्थापित की गई है। जिसको वास्तविकता का परिचय है, वह इसी कारण से इस बाह्य रूप के विषय मे उदासीन है। परन्तु जब मनुष्य को गूढतम वास्तविकता का ज्ञान नही होता है, वह बाह्य रूप मे आसक्त रहता है। यही हाल कुँवारी लडकियो का है जो गुडियाँ खेलती हैं। विवाहित महिलाये विवाह होने पर उसका त्याग कर देती है। यह भी एक प्रकार की मूर्ति-पूजा है। जब तक मनुष्य इस भेद को नही जान जाता है वह बाह्य रूप से आसक्त रहता है। जब मनुष्य आन्तरिक अर्थ जान लेता है, वह इसको छोड देता है।

११ प्रश्न—स्रष्टा तथा सृष्टि मे क्या अन्तर है ? मैने यह प्रश्न किसी से किया था। उनके अन्तर को उस अन्तर से तुलना करके उसने उत्तर दिया था जो वृक्ष तथा उसके बीज मे है। यह ठीक है या नही ?

उत्तर—स्रष्टा सागर की भाँति है और सृष्ट पदार्थ जलपूर्ण पात्र के सदृश। पात्र तथा सागर में जल तो एक ही है, परन्तु दोनो आधारो मे बहुत बडा भेद है। बात यह है कि स्रष्टा स्रष्टा है और सृष्टि सृष्टि है।

१२ प्रश्न—परमात्मा क्या है ? तथा जीवात्मा क्या है ? और फिर जीवात्मा परमात्मा के साथ एक कैसे हो जाता है ?

उत्तर—मदिरा जल से बनती है, परन्तु यदि वह पृथ्वी पर उँडेल दी जाये, तो अशुद्धता, मद तथा दूषण जो उसमे है, उसके तल पर रह जाते है तथा जल पृथ्वी मे प्रवेश कर जाता है और शुद्ध जल रहता है। यही बात है उस आदमी की जो अब भी जीवात्मा है। यदि वह अपने अस्तित्व के साथ पाँच (ज्ञान) इन्द्रियो को भी छोड दे तो वह पुनः ईश्वर मे मिल जायेगा।

१३ प्रश्न—जीवात्मा तथा परमात्मा मे क्या भेद है ?

उत्तर—सार रूप से कोई भेद नही है।

१४ प्रश्न—तब यह कैसे हो सकता है कि दण्ड तथा पुरस्कार दोनो का स्पष्टतया अस्तित्व है ?

उत्तर—यह चिह्न है जो शरीर के संस्कार द्वारा अकित हो जाता है। गगा तथा गगाजल मे यही भेद है।

१५ प्रश्न—इस उदाहरण से कौन सा भेद उद्दिष्ट है ?

उत्तर—यह भेद अनेकाङ्गी तथा असीम है। वास्तव मे यदि गगाजल एक पात्र मे है और उसमे मदिरा की एक बूँद टपक पडती है, तो पात्र का समस्त जल इतना ही दूषित माना जाता है जितना मदिरा। इसके विपरीत यदि मदिरा के एक लाख पात्र भी गगा मे डाल दिये जायें, तो गगा गगा ही रहेगी। इस प्रकार परमात्मा पूर्ण शुद्ध है तथा आत्मा (जीवात्मा) इस निम्नस्थ अस्तित्व से प्रभावित हो जाता है। परन्तु जब तक इसका वास अस्तित्व मे है, वह सदैव आत्मा (जीवात्मा) ही रहेगा।

१६ प्रश्न—हिन्दुओ की पुस्तक मे यह कहा गया है कि जो वाराणसी (काशी) मे मृत्यु को प्राप्त होते है, वे निश्चय ही स्वर्ग को जाते है। यदि बात ऐसी ही है, तो इस पर आश्चर्य हो सकता है कि निरन्तर तपस्वी तथा पापी की गति मे समानता है।

उत्तर—वास्तव मे मनुष्य-जीवन का सम्पुष्ट करना ही काशी है। जो अमर जीवन मे सम्पुष्ट हो जाता है वह निश्चय मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

२० प्रश्न—चूँकि प्रत्येक मनुष्य को जीवन प्राप्त हुआ है, तो क्या प्रत्येक मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो जायेगा ?

उत्तर—महापुरुष को छोड़कर किसी के जीवन (अस्तित्व) मे पुष्टीकरण नही होता है, परन्तु वह केवल इच्छाओ मे जकड जाता है और इच्छा वास्तविक जीवन से भिन्न वस्तु है (ख्वाहिश अज़ वजूदअलाहिदा अस्त)। इच्छा से इच्छा की उत्पत्ति होती है और इस प्रकार मनुष्य मोक्ष से वञ्चित रह जाता है।

२६ प्रश्न—यदि यह ज्ञात हो जाये कि मुझको फकीर का वस्त्र हृदय से पसन्द है, तो अपने गौरव-वृद्धि के निमित्त मनुष्य दरवेश (फकीर) का वस्त्र धारण कर लेगे, परन्तु अन्त मे उनके वास्तविक स्वभाव का पता चल जायेगा और उनके हृदयो पर इसका कठोर प्रभाव पडेगा। राजा को इससे दूर रहना चाहिये।

उत्तर—कोई भी उस मार्ग को बन्द करने मे (तपस्वी वस्त्र के धारण करने का मार्ग) कभी भी सफल न होगा जिस पर ईश्वर-भक्त चलते हैं। जैसे कि इस आशा से कि उसको पारस पत्थर मिल जायेगा, एक मनुष्य पत्थर के टुकडों को इकट्ठा करता रहता है, वह बिना विवेक के ऐसा करने से नही रोका जा सकता है। दरवेश जो दरवेश के वस्त्र मे सभा को जाता है लोग उसका सेवा-सत्कार करते हैं और यह स्वयं ही पुरस्कार है।

३२ प्रश्न—हिन्दु विचार के अनुसार ब्रजभूमि (वृन्दावन) मे ही श्री कृष्ण

अपने निज रूप को गोपियो के निमित्त प्रकट करते है। यह रहस्यमय रूप मनुष्यो के उपयुक्त है या नही ?

उत्तर—यह रूप उनके अनुकूल न होगा जो लौकिक जीवन मे आसक्त हैं, क्योकि यदि सच्चा रूप उनको दृष्टिगत हो जाये, तो वे मर जायेगे तथा पुरस्कार के बदले दण्ड के भागी होगे। इसका सहन केवल फकीर ही कर सकते है जिनकी समस्त इच्छाओ का दमन उनके शरीर मे हो गया है और इतनी अच्छी तरह कि उनके हृदय किसी कारण भी किसी दिशा मे विचलित नही होते है।

३६ प्रश्न—कभी कभी यह कहा गया है कि ब्रह्म-सयोग मे तत्व (जात)[1] की प्राप्ति हो जाती है। यह कैसे कह सकते है कि इस सयोग द्वारा ब्रह्म-तत्व की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—जब लोहे के टुकडे को अग्नि मे (तपाकर) लाल करते है और जब इसका रग अग्नि का हो जाता है, तब इसका व्यवहार भी अग्नि के व्यवहार की भाँति हो जाता है।

४१ प्रश्न—यह प्रथा है कि मुसलमान मरने पर गाढ दिया जाता है और हिन्दू जला दिया जाता है। परन्तु जब दरवेश[2] एक हिन्दू के वस्त्र मे अपने प्राण का विसर्जन करता है, तब उसके साथ क्या होगा ?

उत्तर—सर्वप्रथम—गाढना या जलाना ये भौतिक शरीर से सम्बन्धित उपाय हैं। दरवेश को अपने शरीर की चिन्ता नही रहती है। उसने अपने शरीर का त्याग इस कारण से किया है कि वह आनन्द के सागर मे प्रवेश कर जाये जो ईश्वर-बोध मे प्राप्त होता है। वह शारीरिक अस्तित्व (हस्ती) के क्षेत्र को त्याग देता है जिससे कि वह उस अमर निवास को प्राप्त हो जाये जिसका कोई प्राकृतिक अस्तित्व नही है (नेस्ति)। जैसे साँप उस केचुल की कोई चिन्ता नही करता है जिसको उसने छोड दिया है और अपने बिल मे घुस जाता है—उसी प्रकार दरवेश अपने शरीर की कोई चिन्ता नही करता है। मनुष्य जो कुछ भी चाहे उसके प्रति कर सकते है।

४२ प्रश्न—एक मनुष्य ने मुझसे कहा—"पाप कम करो।" मैने उससे पूछा—"इसका क्या तात्पर्य है—कम पाप (कम आजार)।" उसने उत्तर दिया—"पाप का अल्पाश (अन्दक आजार)"। मैने कहा—"पाप करना तो

१—इस प्रश्न का सम्बन्ध उच्चतम सूफी-बोध से है। "ब्रह्मास्मि"। इस पर सामान्य सूफी टीका के अनुकूल ही बाबालाल का उत्तर है।

२—इसका ध्यान रखना चाहिये कि इस सवाद में दरवेश तथा फकीर शब्दो से केवल मुसलमान फकीरों से अभिप्राय नही है, जैसा कि इस स्थल पर उनका उपयोग प्रत्येक धर्म के 'ईश्वर भक्तों' के अर्थ में हुआ है।

पाप करना है । इसका अंश क्या है—इससे कोई वास्ता नही ।'' इस की माप कैसे हो सकती है ?

उत्तर—हम उसको कोई चोट नही पहुँचा सकते है जो हम से बडा या अधिक बली है । जिसमे समान बल है वह प्रतिकार कर सकता है । परन्तु हम उसको कोई चोट न पहुँचाये जो हम से निर्बल है । 'पाप कम करो' इस उपदेश से यही सूचित होता है ।

४३ प्रश्न—स्वतन्त्र इच्छा ही ईश्वर है (माबूदेहकीकी) पुस्तको में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्र इच्छा दी गई है । हम इसको कैसे माने ?

उत्तर—स्वतन्त्र इच्छा ईश्वर है जिसका प्रभुत्व विशाल है । समस्त अस्तित्व मे यह वर्तमान है ।

४४ प्रश्न—दोनो दशाओ मे हमको कैसे इसका विश्वास हो ?

उत्तर—जब शिशु माता के पेट मे होता है, उसमे स्वतन्त्र इच्छा दैवी विधि है जो उसकी रक्षा करती है तथा उसके विकास मे उसका पोषण करती है, क्योकि वहाँ पर उस समय कोई अन्य व्यक्ति होता ही नही है । जब शिशु ससार मे प्रवेश करता है, उस स्वतन्त्र इच्छा का अर्ध भाग वह है जो प्राणियो के प्रति अपनी उदारता तथा कृपा के कारण माता की छाती मे दूध पैदा करती है । (अर्थात् ईश्वर के साथ रहती है) । द्वितीय अर्ध भाग शिशु मे प्रवेश कर जाता है, क्योकि जब शिशु रोता है, उसकी माता यह बात जान कर उसको दूध पिलाती है । जब बच्चा बडा हो जाता है तथा शरीर की लालसाओ से परिचित हो जाता है और भले कर्मो के करने मे अपने को व्यस्त कर देता है, वह स्वयं यह स्वतन्त्र इच्छा हो जाता है क्योकि ईश्वर भले और बुरे के परे है ।

५३ प्रश्न—हृदय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—हृदय 'मै' और 'तुम' कहने के लिये है—अर्थात् द्वैत जो दो (की स्वीकृति) से उत्पन्न होता है । क्योकि हृदय मन (अर्वा-आत्मा) को प्रत्येक दिशा मे भ्रमण कराता है—पिता, माता, भ्राता, वधू, सन्तान की ओर—जिनमे उसकी आसक्ति होती है । हमको जानना चाहिये दो मे आसक्ति हृदय के कारण होती है ।

५४ प्रश्न—हृदय की आकृति क्या है जिसको हम देख नही सकते हैं ?

(सूरते दिल चे अस्त कि दर नजर न में आयद)

उत्तर—हृदय की आकृति वायु की श्वास की भाँति है ।

५५ प्रश्न—हृदय का कर्म क्या है ?

उत्तर—जैसे वायु वृक्षो का उन्मूलन कर देती है यद्यपि वह स्वयं दृष्टिगत

नही होती है, उसी प्रकार हृदय ५ इन्द्रियो को विचलित कर देता है। यह हम मे है और तब भी हमारे दृष्टिगत नही है। इस प्रकार हृदय की आकृति वायु की श्वास की भाँति है।

प्रश्न ५६—हृदय का कर्म क्या है ?

उत्तर—हृदय हमारे मन का दलाल है।

प्रश्न ५७—यह बात हम कैसे जान सकते है ?

उत्तर—पाँच इन्द्रियो की दूकान (माध्यम) से यह ससार के आनन्द को प्राप्त करता है तथा इनको मन तक पहुँचाता है तथा मन स्वय इन आनन्दो के प्रलोभनो मे अनुरक्त हो जाता है। इस प्रकार हृदय ग्राहक के लिए दूकान से वस्तुये प्राप्त करता है तथा अपना शुल्क लेकर अलग हो जाता है। हानि वा लाभ का सम्बन्ध क्रेता या विक्रेता से है। इस प्रकार यह दलाल का आचरण करता है और यही इसका कर्म है।

प्रश्न ६१—फकीरो की निद्रा किसको कहते है ?

उत्तर—निद्रा वह है जो मनुष्य को आती है जिसमे संसार की प्रत्येक इच्छा छूट जाती है तथा मनुष्य "तू" और "मै" से मुक्त हो जाता है तथा निद्रा मे कोई भी सासारिक वस्तु स्वप्न मे भी उसको प्रकट नही होती है। फकीरो की निद्रा को हिन्दी मे शायद योगनिद्रा कहते है क्योकि यह ससार के आवागमन से मुक्त है। यह ही मोक्ष वा मुक्ति है।

प्रश्न ६३—जागरण (बेदारी) क्या है जिसमे पशु, वनस्पति, खनिज पदार्थ आदि (अपने विकास की) चार अवस्थाओ को प्राप्त होते है ?

उत्तर—इसको "विश्व का सम्पूर्ण भ्रमण" (गरदिशे फलक) कहते हैं। विश्व एक पुरुष है जिसका सिर उत्तर है, टाँगे दक्षिण है, नेत्र सूर्य तथा चन्द्र हैं, हड्डियाँ पर्वत तथा पत्थर है, खाल पृथिवी है, नाडी सागर है, रक्त समुद्रो तथा भरनो का जल है, भाडियाँ तथा जगल इसके बाल है और आकाश इसका श्रोत्र है।

प्रश्न ६४—आकाश एक है, परन्तु श्रोत्र दो है—यह क्यो ?

उत्तर—दोनो श्रोत्र एक ही शब्द सुनते है।

अध्याय १४

दाराशिकोह तथा समकालीन मुस्लिम सन्त

विभाग १—राजकुमार दारा तथा मुल्लाशाह बदख़शी

लिसानुल्ला के विशेषण से भी प्रसिद्ध मुल्लाशाह मुहम्मद बदखशाँ मे रस्तक के समीप अर्कसा के गॉव के काजी मुल्ला अब्दमुहम्मद का पुत्र था। लाहौर के महान् सूफी मियॉ मीर की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर वह १६१४ मे भारत आया तथा उसका शिष्य हो गया। मियॉ मीर की मृत्यु के बाद जो ७ रबी प्रथम १०४५ हि० (अगस्त २१, १६३६ ई०) को हुई वह अपने शिष्यो सहित स्थायी निवास के लिये काश्मीर को चला गया। कहा जाता है कि वह ईश्वर के प्रेम से उन्मत्त था तथा उसने शरीयत (शास्त्रीय मार्ग) को त्याग दिया था और मारिफत (गूढ अध्यात्मवाद) के विकट सागर मे प्रवाह कर रहा था। लोग कहते है, कि इस सागर ने उसको अविश्वास (कुफ़्र) के अन्धकारमय तट पर पहुँचा दिया। कुछ भी हो—परन्तु मियॉ मीर के शिष्यो मे कोई भी तपश्चर्या मे उसके समान न था, उस समय के किसी विद्वान् को विद्वत्ता मे उससे अधिक ख्याति न प्राप्त थी तथा मुल्लाशाह बदखशी की अपेक्षा किसी समकालीन लेखक ने शायद एकमात्र दाराशिकोह को छोडकर अपनी लेखनी से अध्यात्म ज्ञान के प्रचार के निमित्त अधिक उपयोगी कार्य न किया।[1]

ज्ञानवान तथा गुणसम्पन्न राजकुमार दाराशिकोह आध्यात्मिक प्रकाश के निमित्त तथा सूफियो के कादरिया सम्प्रदाय मे यथाविधि दीक्षा के निमित्त उसकी सेवा मे उपस्थित हुआ। मुल्लाशाह का एक शिष्य तवक्कुल बेग कहता हैं—"१०५० हि० (१६४० ई०) मे जब उसका आगमन काश्मीर में हुआ था राजकुमार बहुत कष्ट सहन कर सन्त को इस पर राजी कर सका कि उसको वह अपना शिष्य बना ले। भक्ति तथा तपश्चर्या के कठोर अभ्यासो द्वारा मुल्लाशाह को अपना आध्यात्मिक प्रकाश प्राप्त हुआ था, परन्तु अपने शिष्यो

१—जीवन सम्बन्धी वर्णनों के लिये—रिउ II ६९०-९१, बोड० सूची स० २०१, पूर्वीय-सार्वजनिक पुस्तकालय-सूची पत्र III १११२। रिउ का पाठ है—मुल्ला अब्दमुहम्मद के स्थान पर मुल्ला इदी तथा अर्कसा के स्थान पर अर्क। देखो—पूर्वीय सार्वजनिक पुस्तकालय सूची III—११२। अत्यन्त समकालीन वृत्तान्त ये है—दाराकृत सकीनतुल औलिया, तवक्कुलबेग कृत—मुल्लाशाह की जीवनी। इसके बाद है—दबिस्तान् तथा मीरातुल् खियाल (पृ० १९८)। मुल्लाशाह के कुछ ग्रन्थ-तफसीरशाह नामक कुरान पर एक टीका, रिसालैबिस्मिल्ला; रिसालैशाहिया, कुल्लियात में सग्रहीत गजले तथा रुबाइयाँ, तथा एक गद्य ग्रन्थ, तजकिराये मारिफान् (देखो पूर्वीय सार्वजनिक पुस्तकालय-सची III—११३)।

पर प्रार्थना तथा ध्यान का इतना लम्बा अभ्यास क्रम या कठोर अनुशासन वह न लगाता था। तवक्कुल बेग कहता है—"अपने शिष्यो के लिये उसने एक सरल-तर तथा अल्पतर मार्ग ढूँढ निकाला था जिसमे वह अपनी इच्छाशक्ति तथा व्यक्तित्व का उपयोग कर, जैसा कि कहते हैं, उनकी हृदय-ग्रन्थियो को खोल देता था। ऐसा मालूम होता है कि हृदय-ग्रन्थि खोलने की यह विधि एक प्रकार का कृत्रिम निद्रा मे किया हुआ सकेत था। इसके द्वारा नवदीक्षित मे प्रथम आवेशात्मक धार्मिकता का उदय होता तथा इसके अनन्तर ब्रह्मात्मैक्य के सिद्धान्त की उसको शिक्षा दी जाती थी। तवक्कुल बेग कहता है कि दारा को "अपने ऊपर प्रयोग करने के निमित्त मुल्लाशाह को राजी करने मे अत्यन्त कष्टो को सहन करना पडा" ···दाराशिकोह की एक बहिन फातिमा[1] ने गुरु से लम्बा पत्र-व्यवहार किया था। उसको सन्त की ओर से दारा ने दीक्षा दी, उसको यथाक्रम आभास प्रकट हुए, उसको ईश्वर से शुद्ध सम्बन्ध तथा स्वाभाविक अध्यात्म दृष्टि प्राप्त हो गई। उसके विषय मे मुल्लाशाह ने कहा—"रहस्य ज्ञान मे उसने इतना अद्भुत विकास प्राप्त कर लिया है कि वह मेरी प्रतिनिधि होने के योग्य है।" वह इस प्रकार अपने कुछ अनुभवो का वर्णन करती है—"तब मक्का की ओर अपना मुँह करके एक कोने मे मै बैठ गई तथा गुरु के प्रतिबिम्ब पर मैने अपने सारे मन को केन्द्रित कर दिया और उसी समय अत्यन्त पवित्र रसूल के वैयक्तिक वर्णन का अपनी कल्पना मे मैने ध्यान किया। इस ध्यान मे मग्न होकर अपनी आत्मा की उस दशा को मैं प्राप्त हो गई जिसमे मै न सो रही थी, न जाग रही थी और तब मैने रसूल तथा उसके चार मित्रो की मण्डली को देखा तब मैने मुल्लाशाह को भी देखा। वह रसूल के पास बैठा हुआ था, उसका सिर उसके पैरो पर था और रसूल ने उससे कहा—'हे, मुल्लाशाह! किस कारण तूने उस तैमूरी को प्रकाश दिया'।" ईश्वर धन्य है जिसने पवित्र गुरु के विशेष ध्यान द्वारा इस दीन स्त्री को पुरस्कार रूप से यह सामर्थ्य दिया है कि वह सम्पूर्ण प्रकार से सर्वशक्तिमान ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर ले जिसकी मुझे सदैव उत्कट इच्छा रही है। जिस किसी को सर्व-शक्तिमान परब्रह्म का ज्ञान नही है, वह मनुष्य नही है। वह उस वर्ग का है जिसके विषय मे कहा गया है—"वे पशु है और उनसे भी अधिक अज्ञानी।" प्रत्येक मनुष्य जिसको यह सर्वोपरि आनन्द प्राप्त है, वह केवल इसी के कारण

१—यह प्राय स्पष्ट है कि यह श्री मैकडोनल्ड की भूल है कि एक साधारण प्रशसात्मक विशेषण फातिमा उज्जमानी (अपने समय की फातिमा) को शाहजहाँ की ज्येष्ठ कन्या राज-कुमारी जहाँनारा का उसने नाम समझ लिया। (इस्लाम में धार्मिक वृत्ति तथा जीवन—पृ० २०५)।

सर्वोपरि गुण-सम्पन्न तथा प्राणियो मे सर्वोत्कृष्ट हो जाता है, तथा उसका व्यक्तिगत अस्तित्व परम अस्तित्व मे लीन हो जाता है। वह सागर मे एक बूँद की भाँति हो जाता है, सूर्य के प्रकाश मे एक अणुरेणु के समान, समष्टि की तुलना मे एक परमाणु के समान। इस दशा को प्राप्त कर वह मृत्यु, भावी दण्ड, सुख (उद्यान) तथा दुख (अग्नि) के परे हो जाता है। चाहे वह मनुष्य हो या स्त्री, वह सर्वदा सर्वोपरि सम्पूर्ण प्राणी है।"[1]

जहाँनारा के अनुभव दाराशिकोह के भी अनुभव रहे होगे। वे एक ही प्रकार की आत्माये थी तथा वे एक ही गुरु के शिष्य थे। परन्तु दारा जहाँनारा से आगे निकल गया। उसने सम्पूर्ण एकत्व के सिद्धान्त को उसकी तर्क-युक्त सीमा तक पहुँचा दिया जिसके द्वारा उसको, साहस हुआ कि वह यह स्पष्ट घोषणा करदे कि वह 'खुदपरस्त' या अपनी आत्मा का उपासक था। दारा के नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन पर मुल्लाशाह का बहुत प्रभाव था और गुरु तथा शिष्य परस्पर अत्यन्त प्रीतिमय घनिष्ठता का जीवन व्यतीत करते थे। अपनी पुस्तक हसनत्-उल्-आरिफीन मे कुरान के पद्यो के पीर द्वारा विद्वत्तापूर्ण व्याख्याओ के विषय मे राजकुमार बहुत कुछ कहता है—"हे मनुष्यो! जिनको विश्वास है। यदि तुम मत्त हो तो प्रार्थना के निकट न जाओ" (कुरान ४-४३) टीका—'यदि मत्तता लौकिक है, तो प्रार्थना का निषेध है कि वह प्रार्थना दूषित न हो जाये, यह निषेध प्रार्थना के प्रति सम्मान के कारण है। यदि मत्तता परम अस्तित्व की है, तो प्रार्थना के समीप जाने का निषेध है और यह मत्तता के प्रति सम्मान के कारण है।[2] इसी प्रकार मुल्लाशाह ने जो व्याख्या 'विश्वासी' तथा 'अविश्वासी' शब्दो की की है वह एकसाथ जटिल तथा उदार है। वह कहता है कि "सच्चा विश्वासी वह अविश्वासी है जो ईश्वर को प्राप्त हो गया है, जिसने उसका दर्शन किया है तथा जिसको उसका ज्ञान है। अविश्वासी वह विश्वासी (ईमानदार) है जो ईश्वर को नही प्राप्त है, जिसने उसका दर्शन नही किया है तथा जिसको उसका ज्ञान नही है।" यह भी उन लोगो के लिये एक हास्य-कारक तथा मार्मिक ताडना है जो अपने जन्म के कारण या धर्म के स्वीकार वचनो (कलमा) की आवृत्ति के कारण अपने लिये 'विश्वासी' का नाम सगर्व ग्रहण कर लेते हैं।

मुल्लाशाह की ज्ञान-दृष्टि विस्तीर्ण थी, यही नही, किन्तु वह मानव-प्रेमी प्रवृत्तियो का तथा विशाल कल्पना का सर्वेश्वरवादी था। अस्थिर राजकुमार

१—पूर्ववत् पृ० २०५।

२—हसनतुल् आरिफीन-फारसी पाठ्य-पृ० २१-२४, पृ० ३१-३२।

की शिष्यवत् निष्ठा अन्त तक उस पर बनी रही। दारा को नवीनता के प्रति आकर्षण था तथा कुछ अन्य सन्तो से भी उसका उतना ही प्रगाढ परिचय था। अपनी अन्तिम साहित्यिक कृति सिर्रे-असरार—अर्थात् उपनिषदो के फारसी अनुवाद की भूमिका मे दारा अपने गुरु के प्रति अपने ऋण को कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता है जिससे उसको यह प्रेरणा प्राप्त हुई थी कि वह अन-इस्लामी शास्त्र ग्रन्थो मे तौहीद (एकत्व) के सिद्धान्त की खोज करे।

निस्सन्देह दारा तथा मुल्लाशाह मे परस्पर बहुत पत्र-व्यवहार हुआ, परन्तु उसमे से हमको केवल दो पत्र प्राप्त हुए है[1]—एक पत्र दारा का अपने पीर को लिखा हुआ है जब उसको शाह-बुलन्द-इकबाल की उपाधि प्राप्त हुई थी, द्वितीय पत्र मुल्लाशाह का लिखा हुआ है जिसमे राजकुमार को आध्यात्मिक विषयो मे कुछ निर्देश दिये गये है। मुल्लाशाह लिखता है—"ईश्वर उसको साक्षात्कार का परम आनन्द प्रदान करे। ज्ञानियो के हृदय का दीपक शत्रुओ की श्वास से सुरक्षित रहे। आपने सुना होगा कि बाह्य मनुष्यो से रहस्य को गुप्त रखना चाहिये—अतः उनको गुप्त रखो। यह आप जानते होगे कि उन लोगो की मण्डली मे जिन पर ईश्वर की दया कम है, अपने को कम ही ज्ञान-प्रेरित प्रतीत होना चाहिये। अतः अति उत्साह न दिखाओ। यह आपसे छिपा नही है कि किसी कार्य को सम्पूर्ण पूर्णता तक पहुंचाने मे मनुष्य को कष्ट सहन करना होता है—अतः आप पूरा परिश्रम करे। जो मनुष्य अपने कार्य मे दत्त-चित्त रहता है, वह निश्चय ही (ईश्वर का) भक्त है तथा जो भक्त हे वह साक्षात्कार के परमानन्द रूपी आशीर्वाद का पात्र है। सम्पूर्ण मनुष्य (इन्साने कामिल) वह है जिसकी कोई भी निन्दा नही करता है—चाहे जन साधारण, चाहे अन्तरङ्ग और अति अन्तरंग मण्डल के घनिष्ठ मित्र, अर्थात् (सम्पूर्ण मनुष्य वह है) जो किसी भी कार्य का करना नही भूलता है—उसका विधान चाहे शरीयत (इस्लामी सिद्धान्त) ने किया हो, तरीकत (रहस्यात्मक इस्लाम के मार्ग) ने या हकीकत (सत्य) ने। सर्वप्रथम ईश्वर का ज्ञान (मारिफत) हे जो सुसगति का प्रभाव (असर) है। द्वितीय स्थान पर चित्त की एकाग्रता है जो आत्म-नियन्त्रण का फल है। तथा तृतीय स्थान पर शरीयत है जिसका अर्थ है जन साधारण के प्रति ढर्रे के अनुसार आचरण करना। अन्दर से हमारा प्रत्येक कर्म हकीकत (सत्य) के अनुरूप होना चाहिये, तथा बाह्य रूप से हमारे सब कर्म जन साधारण

१—यद्यपि मुल्लाशाह के दो पत्र पृ० २३-२४ तथा पृ० ३१-३२ पर मुद्रित है, वे एक ही पत्र प्रतीत होते है; परन्तु चूंकि पाठ में बहुत भेद है, हमने दोनों पत्रों का पाठ्य दे दिया है जो हमको विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से प्राप्त हुआ है।

के कर्मो के सदृश होने चाहिये। उनसे प्रेम करो जो सदृश विचार रखते हो तथा उनसे दूर रहो जो दम्भी है।"

ऊपर दिया हुआ पत्र दारा के चरित्र की कुछ त्रुटियो पर कठोर टीका है। लोगो के चरित्र तथा योग्यता की ओर बिना ध्यान दिये हुए दारा अविवेकी होकर महान् आध्यात्मिक भेदो तथा व्यवहारो को अपने पाठको तथा नवदीक्षितो के निमित्त प्रकाशित कर देता था। उसको यह गर्व है कि बिना किसी प्रकार की अस्पष्टता के वह उन वस्तुओ का वर्णन कर रहा है जिनको पूर्व सन्त केवल जटिल सकेतो द्वारा प्रकट करते थे। भेदो को गुप्त रखने की यह अक्षमता, यह अविवेकी निष्कपटता दारा के चरित्र की घोर त्रुटि थी। ईश्वर-भक्ति मे सर्वथा लीन होने पर भी मुल्लाशाह ससार की कठोर वास्तविकताओ के प्रति उदासीन न था तथा उनकी ओर वह अपने कम व्यवहारकुशल शिष्य का ध्यान आकृष्ट करता है। शरीयत् का अर्थ उसके अनुसार अनुकूलता है—मनुष्यमात्र के (व्यवहारो के) प्रति, न केवल इस्लाम के। अकबर की धर्म-नीति (सुलह-कुल-सर्वेभ्यः शान्तिः) के मुख्य सिद्धान्त का भिन्न रूप से यह पुनः कथन है। मुल्लाशाह के प्रभाव तथा उपदेश का यह फल हुआ कि अधिक प्रकट रूप से इस्लामी शरीयत् की अवज्ञा करने मे दारा को कुछ सयम करना पडा। तब भी दारा के पक्षपाती होने के कारण सन्त को काश्मीर से बुलाया गया कि औरंगजेब के सम्मुख उपस्थित होकर वह उन आरोपो का उत्तर दे जो उस समय के कुछ अनुदार शास्त्रवेत्ताओ ने उसके विरुद्ध उपस्थित किये थे। "वह बहुत अनिच्छा से लाहौर गया तथा वहाँ पर अपनी मृत्युपर्यन्त भय तथा कठोर कष्ट मे अपना जीवन व्यतीत किया, परन्तु समस्त समय ईश्वर को धन्यवाद देता रहा कि उसका जीवन उस दरिद्रता मे समाप्त हुआ जिसमे उसका आरम्भ हुआ था।"[१] यहाँ पर १६६१ मे उसका देहान्त हो गया तथा वह अपने गुरु मियाँ मीर के निकट दफन कर दिया गया।

विभाग २—दाराशिकोह तथा शेख मुहीबुल्ला इलाहाबादी

दाराशिकोह के समकालीन व्यक्तियो में शायद सब से बडा मौलिक तथा साहसी विचारक और लेखक सूफी शेख मुहीबुल्ला इलाहाबादी था। शेख का सर्वप्रथम उल्लेख मीरात्-उल्-खियाल मे मिल सकता है। इस पुस्तक का लेखक अली अहमदखाँ लोदी[२] का पुत्र शेरखाँ लोदी है जो औरगजेब के शासन-

१—आजमकृत तारीखे काश्मीरी १२१ अ-१२२। औरंगजेब का इतिहास III पृ० ९४-९५।

२—फारसी हस्तलिखित पुस्तकों का बोडलियन पुस्तकालय में सची-पत्र-I-२०७। परन्तु

काल मे जीवित था। शेख ने अरबी मे सूफीवाद पर एक अत्यन्त कठिन पुस्तक 'तस्वीद' नामक लिखी जिसमे तर्क द्वारा उसने यह सिद्ध किया कि रसूल मुहम्मद का जबराईल स्वयं मुहम्मद के अन्दर था। इसी प्रकार प्रत्येक रसूल का जबराईल उसी के अन्दर था। जबराईल एक पख वाला फरिश्ता (दिव्यात्मा) नही है, परन्तु एक गुप्त आध्यात्मिक शक्ति है (कुव्वते-बातिन)। जब इस शक्ति द्वारा रसूल-गण अभिभूत हो जाते थे, वे 'वही' अर्थात् दिव्य प्रकाश प्राप्त कर लेते थे।

इलाहाबाद के अनुपस्थित महाराज्यपाल (सूबेदार) के पद पर अपनी नियुक्ति (१६४५ ई०) के शीघ्र पश्चात् दारा ने शेख को एक पत्र लिखा। इसमे वह कहता है कि इलाहाबाद का सूबा उसको विशेष रूप से स्वीकार के योग्य प्रतीत होता है, क्योकि उस महात्मा का वास उसके शासन-क्षेत्र के अन्तर्गत था। उसी पत्र मे दारा ने शेख से प्रार्थना की कि सूफीवाद पर उसके १६ प्रश्नो का उत्तर वह सविस्तार भेजने का कष्ट करे।[1] उत्तर मे शेख ने एक बहुत लम्बा पत्र लिखा जिसमे उसने सब प्रश्नो का उत्तर इस प्रकार दिया कि राजकुमार सर्वथा सन्तुष्ट हो गया। दारा ने एक दूसरा पत्र लिखा जिसमे उसने शेख को यह कष्ट करने पर धन्यवाद दिया तथा शेख से विचार-विनिमय की अपनी इच्छा प्रकट की यदि उस दिशा से (अर्थात्—शेख से) उसको कुछ प्रोत्साहन प्राप्त हो।

मीरात्-उल्-खियाल का लेखक कहता है कि जब मुहीब्बुल्ला की पुस्तक औरगजेब के देखने मे आई, उसने इसकी कठोर निन्दा की, क्योकि इस पुस्तक में जबराईल के विषय मे उपरिवर्णित धारणा के अतिरिक्त इसमे बहुत-सी अन्य जटिल तथा सदिग्धार्थ बाते थी जिनका समझना कठिन था और जो शरीयत के विरुद्ध पडती थी। मृत्यु ने इस समय शेख को औरगजेब के प्रतिशोध की सीमा के बाहर पहुँचा दिया था। अन्त मे शेख के दो शिष्यो का पता चल गया जो एकान्त वास मे अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। तब औरगजेब ने उनको कहलाया कि वे अपने गुरु की पुस्तक के अर्थ को स्पष्ट करें, तथा इस्लाम के सिद्धान्तो से उसके विचारो का सामञ्जस्य करे या यदि वह ऐसा करने मे असमर्थ हो तो उस पुस्तक को जला डाले। शेख के शिष्यो ने औरगजेब को उत्तर दिया कि यदि सम्राट् की यही इच्छा है कि तस्वीद नामक पुस्तक भस्म करदी

उम्दतुल्-अख्बार मुद्रणालय द्वारा ८४८ में प्रकाशित मीरात्-उल्-खियाल में शेरखाँ के पिता का नाम अली अहमदखाँ दिया हुआ है।

१—शेख मुहीबुल्ला को दारा का पत्र दाराशिकोह में खण्ड II फारसी पाठ्य १-२, शेख का उत्तर—पूर्ववत् पृ० ३-८। द्वितीय पत्र पृ० ८-१०।

जाये तो राजकीय पाक-शाला मे उसको भस्म करने के लिये पर्याप्त अग्नि उपलब्ध है।[1]

विभाग ३—दाराशिकोह तथा शाह दिलरुबा

शाह दिलरुबा को लिखे हुए दारा के ६ पत्र[2] फैय्याज-उल्-कवानीन नामक पत्र-सग्रह मे उपस्थित हैं। सन्त तथा दाराशिकोह के साथ उसके सम्बन्ध के विषय मे हमारी जानकारी केवल उन्ही पर निर्भर है। दारा ने इन पत्रो को उन पत्रो के उत्तर मे लिखा था जो उसको उस सन्त से प्राप्त हुए थे। ये सन्त के पत्र शायद सर्वदा के लिये दुर्भाग्यवश नष्ट हो गये हैं। चूँकि इन पत्रो पर कोई तिथि अंकित नही है, यह कहना बहुत कठिन है कि शाह दिलरुबा से पत्र-व्यवहार द्वारा ठीक कब दारा का सम्पर्क हुआ। अपने प्रथम पत्र मे दारा लिखता है—"जहाँ कही भी आगरा मे या लाहौर मे मै होता हूँ, मेरा हृदय तुम्हारे हृदय से सदैव बँधा रहता है।" एक पत्र मे दारा शेख को दरबार मे आने का निमन्त्रण देता है, परन्तु सम्भवतया शेख कभी दारा से न मिला। एक दूसरे पत्र मे राजकुमार लिखता है कि वह उससे मिलने के लिये बहुत उत्सुक है तथा यदि उससे यह हो सकता तो अपने सिर को पग बनाकर वह उसके स्थान को यात्रा करता (सर रा कदम साख्ता)।[3]

विभाग ४—दाराशिकोह तथा शेख मुहसिन फानी

"रहस्यवाद के जटिल मार्ग का यात्री" शेख मुहसिन फानी, मीरात्-उल-खियाल के लेखक के अनुसार काश्मीर का निवासी था। वह सुसस्कृत, समृद्ध तथा सुशिष्ट था। शाहजहाँ के शासन-काल मे वह कुछ समय के लिये इलाहाबाद का सदर (नागरिक न्यायाधीश) रहा था। कहा जाता है कि जब जुलाई १६४६ मे मुरादबख्श ने नजर मुहम्मदखाँ की राजधानी बलख पर अधिकार

१—मीरात्-उल्-खियाल—फारसी पाठ्य पृ० २२८-२९।

२—दिलरुबा को दारा—फारसी पाठ्य पृ० १०-२०।

३—दिलरुबा को दारा, पत्र न० २, फारसी पाठ्य। ऐसा मालूम होता है कि मुल्ला शाह बदख्शी का शिष्य (मुरीद) हो जाने के बाद दारा ने शिष्य की हार्दिक नम्रता से अपना सम्पर्क शाह दिलरुबा से स्थापित किया। अन्तिम पत्र न० ६ के कुछ स्थलों से यह सिद्ध होता है, जिनमें राजकुमार कहता है कि कुछ बातों को स्पष्टीकरण के निमित्त उसने अपने पीर दस्तगीर (आश्रयदाता गुरु) को भेज दिया है, जिससे उसका अभिप्राय मुल्लाशाह से है। वह सन्त से यह भी प्रार्थना करता है कि अपना वश-वृक्ष (शिजरा) वह एक पत्र में बन्द कर उसके पास भेज दे। अपनी पुस्तक हसनतुल् आरिफीन में दारा शाह दिलरुबा का उल्लेख करता है। चूँकि यह पुस्तक १६५६ के लगभग लिखी गई थी, उस तिथि के बहुत ही पहले उनका परस्पर परिचय हो गया होगा।

कर लिया, तो नजरमुहम्मदखाँ के पुस्तकालय मे अन्य वस्तुओं के साथ-साथ दीवाने मुहसिन फानी की एक प्रति प्राप्त हुई जो नजर मुहम्मद की प्रशसा मे लिखी गई थी। इस कारण से सम्राट् शाहजहाँ को मुहसिन फानी पर क्रोध हुआ और उसने उसको सदर के पद से वचित कर दिया। यद्यपि उसको आजीविका के निमित्त उसको पर्याप्त वार्षिक वृत्ति दे दी गई। उस समय से वह काश्मीर मे रहने लगा तथा शीघ्र ही उच्च ख्यातिप्राप्त धर्म गुरु प्रसिद्ध हो गया। एक बाग के बीच मे उसने एक चतुष्कोण भवन का निर्माण किया जिसके पास एक पक्का हौज था। वह भवन भी इस कारण से हौज-खाना के नाम से प्रसिद्ध हो गया। दो पहर को शेख वहाँ बैठता था तथा उसके शिष्य एक-एक करके शिक्षा निमित्त उसके पास जाते थे। शेख की प्रसिद्धि के कारण नाजी नामक एक अनुतापदग्ध वेश्या उसकी मण्डली मे आकृष्ट होकर सम्मिलित हो गई। वह काश्मीर मे भी अपने सौन्दर्य मे अद्वितीय थी। अवश्यभावी घटना घटित हो गई तथा शेख नाजी के प्रेम पाश मे जटिलता से आबद्ध हो गया। कहा जाता है कि काश्मीर का सूबेदार जाफरखाँ भी नाजी पर आसक्त था। परन्तु उसके प्रेम प्रस्तावो से नाजी को घृणा थी तथा उसने उसके बहुमूल्य पुरस्कारो को ठुकरा दिया। जाफरखाँ ने प्रत्युपकार मे कुछ पद्य लिखे जिनके द्वारा अति अश्लील भाषा मे उसने इस निन्दा को प्रकट कर दिया। इस निन्दा को कुछ क्षमा याचना के बाद मीरात्-उल्-ख़ियाल के लेखक ने अपनी पुस्तक मे उद्धृत कर दिया है।

काश्मीर मे राजकुमार के एक अभ्यागमन के अवसर पर शायद दारा तथा मुहसिन फानी मे मित्रता हो गई। इस विषय मे कि मुहसिन फानी दारा का समकालीन तथा उसका मित्र था, इस समय तक केवल एक प्रमाण प्राप्य है और वह है दारा का मुहसिन फानी के नाम का एक पत्र[१] तथा इसके प्रति फानी का उत्तर। मीरात्-उल्-ख़ियाल के लेखक के अनुसार[२] मुहसिन फानी का देहान्त काश्मीर मे १६७१ ई० (१०८१ हि०) मे हुआ जब दारा की हत्या के बाद लगभग १० वर्ष व्यतीत हो गये थे। यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रसिद्ध पुस्तक दबिस्तानुल मजाहिब[३] साधारणतया मुहसिन फानी की लिखी

१—दारा तथा मुहसिन फ़ानी में पत्र-व्यवहार के लिये—फारसी पाठ्य पृ० ३०-३१, तथा पृ० ३२-३३।

२—मीरात्-उल-खियाल (लिथो मुद्रण—१८४८, उमदतुल् अख़बार, मु शी लक्ष्मण प्रसाद) पृ० १७६-१८०।

३—डा० रिउ कहता है—"साधारणतया यह पुस्तक (दबिस्तानुल मजाहिब) मुहसिन फ़ानी कृत मानी जाती है, परन्तु उसका नाम कुछ ही प्रतियों में पाया जाता है और वह इस

हुई मानी जाती है, परन्तु मीरात्-उल् खियाल मे यह कही पर वर्णन नही है कि वह पुस्तक फानी द्वारा लिखी गई है। इससे शायद यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मुहसिनफानी तथा दबिस्तान का लेखक दोनो एक ही और वही व्यक्ति न थे यद्यपि वे दोनो दाराशिकोह के समकालीन तथा मित्र थे। दबिस्तान का लेखक रहस्यवाद पर कई बार प्रमाण के रूप मे दारा को उद्धृत करता है। सम्भवतः उसने अपने ग्रन्थ को १६५८ ई० के पूर्व सम्पादित किया था क्योकि उस वर्ष के बाद की किसी घटना का उल्लेख उस पुस्तक मे नही है—(जैसे कि दारा की सत्ता का ह्रास तथा सरमद का वध)। जब कि स्थिति इस प्रकार है तो यदि फानी ने कोई ऐसा ग्रन्थ लिखा होता तो फानी के ग्रन्थो में दबिस्तान का सम्मिलित करना मीरात्-उल्-खियाल का लेखक कठिनता से ही भूल सकता था।

विभाग ५—दाराशिकोह तथा रहस्यवादी सरमद

सरमद शायद एक यहूदी का साहित्यिक कल्पित नाम है, जिसका मूल नाम हम नही जानते है। इस्लाम मे अपने धर्म-परिवर्तन के बाद उसको मुहम्मद सईद का नाम दिया गया था। सरमद की जातीयता तथा उसके माता-पिता के नाम के विषय मे लेखको मे मत-भेद है। १६५७ ई० के लगभग लिखित ग्रन्थ दबिस्तान-उल्-मजाहिब का लेखक कहता है कि सरमद यहूदी था। औरंगजेब के शासन-काल मे लिखित ग्रन्थ मीरात्-उल्-खियाल का लेखक विश्वासपूर्वक

प्रकार कि ग्रन्थ के आरम्भ में उद्धरित रुबाई का वह लेखक है। (अनुवाद I पृ० ३)। लेखक के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान उन तथ्यो तक सीमित है जो उसकी पुस्तक के कुछ स्थलों से एकत्र किये गये है। इनमें प्रसगवश वह अपना उल्लेख करता है। इनसे यह प्रकट होता है कि पारसियों की एक शाखा सिपाहियों के धर्म में उसका पालन-पोषण हुआ था। पारसियों की इस शाखा को आबादी भी कहते है।

"सम्भवत: इस ग्रन्थ का सम्पादन १०६३ हि० के शीघ्र पश्चात् तथा १०६८ हि० के निस्सन्देह पूर्व हुआ था क्योकि इसके अन्तिम अध्याय २० खण्ड III पृ० २८५ से प्रकट है कि दारा अपनी सत्ता के शिखर पर है। यद्यपि लेखक का नाम कही पर स्पष्ट नही दिया हुआ है, यह असम्भव नही है कि मुबाद का नाम जो कुछ पद्यो के सम्बन्ध में आता है, उसका तखल्लुस या कल्पित अपना उपनाम हो। वास्तव में हमारी एक प्रति में लेखक के रूप में मुबादशाह का नाम दिया हुआ है।" (ब्रिटिश सग्रहालय में फारसी हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची I १४१–१४२)

हम केवल यह टिप्पणी कर सकते है कि डा० रिउ का यह विश्वास शायद पूर्णतया न्याय-संगत नही है कि दबिस्तान का लेखक पारसी था—क्योंकि एक स्थल पर लेखक कहता है कि उसने मक्का की यात्रा की जहा पर भूठे रसूल मुसैलामा के एक अनुयायी से उसकी भेंट हुई तथा उस मनुष्य ने उससे कहा कि मुसैलामा की समाधि की भी वह यात्रा करे। एक पारसी मक्का की यात्रा क्यों करेगा?

कहता है कि सरमद मूलतः योरुप (फरिंगिस्तान) मे स्थित आरमीनिया का निवासी था। परन्तु उसका प्रमाण क्या है—यह हम नही जानते है। सम्राट् मुहम्मदशाह के समय मे लिखित रियाज-उश-शौरा का लेखक वलीह दागिस्तानी कहता है कि उसकी जन्मभूमि काशान थी। यद्यपि सरमद आरमीनिया का निवासी भी हो, वह आरमीनिया के सम्प्रदाय का ईसाई न था—क्योंकि दबिस्तान का लेखक कहता है कि यहूदी धर्म की अपनी जानकारी उसने मुहम्मद सईद सरमद से प्राप्त की थी जिससे वह हैदराबाद सिन्ध मे १०५७ हि० (१६४७ ई०) मे मिला था। "मूलतः यहूदियो के एक विद्वान् वश मे वह उत्पन्न हुआ था जो रिब्बानी नामक सम्प्रदाय का अवलम्बी था तथा जो यहूदी धर्म के सिद्धान्तो को जान लेने के बाद और तौरीत का अध्ययन कर लेने के बाद मुसलमान हो गया था।"[1]

मुहम्मद सईद ने अपना जीवन व्यापारी होकर प्रारम्भ किया तथा ठट्ठा (सिन्ध) को व्यापार के निमित्त आया। परन्तु वहाँ पर अभयचन्द नामक एक बणिकपुत्र से उसका इतना घोर प्रेम हो गया कि वह अपना मानसिक सतुलन सर्वथा खो बैठा। सरमद ने बहुत तत्परता से बालक का प्रेम प्राप्त कर लिया तथा उसको एक देवता का रूप दे दिया। अपने एक पद्य मे वह कहता है—"मैं नही जानता हूँ कि इस दुनिया मे मेरा ईश्वर अभयचन्द है वा अन्य और कोई (खुदाये मन अभयचन्दास्त वा दीगर)। अभयचन्द भी उस पर इतना आसक्त हो गया कि वह उससे अलग जीवन का सहन न कर सका। कुछ समय के बाद सरमद तथा अभयचन्द ने ठट्ठा छोड दिया तथा वे अपने भ्रमण मे गोलकुण्डा के अब्दुल्ला कुत्बशाह के दरबार मे पहुँचे। वहाँ पर हताश होकर शाहजहाँ के शासन-काल की समाप्ति के लगभग वे दिल्ली पहुँचे तथा वहाँ पर राजकुमार दाराशिकोह की भक्ति तथा उसका आश्रय प्राप्त कर वे वहाँ रहने लगे। मीरात्-उल्-खियाल का लेखक कहता है—"चूँकि राजकुमार दाराशिकोह को उन्मत्त लोगो (मजनीन) की सगति पसन्द थी, वह उसकी (सरमद की) सगति मे आ गया तथा उसने बहुत समय तक उसके सवादो का आनन्द प्राप्त किया।"[2]

परन्तु जीवन का एक धरातल ऐसा भी है जहाँ पर पहुँच कर सरमद सदृश सन्त, जिनको लौकिक बुद्धि के लोग पागल कहते है, जन साधारण के सम्बन्ध मे उससे अच्छी कोई सम्मति नही रखते है तथा बुद्धिमान (दानिश्मन्दान्)

१—दबिस्तान पाठ्य-फो—२४७६।

२—मीरात्-उल्-खियाल—पृ० १०४।

कहलाने से घृणा करते हैं। दारा उस समय भी शास्त्र-विद्या-वाद के पाश में ग्रस्त था जब उसने इस महान् सन्त के दर्शन किये जो इसके पूर्व ही पर्याप्त विद्या प्राप्त कर चुका था तथा जिसने ईश्वर के मार्ग मे इसको अनर्थक समझ कर इसका परित्याग कर दिया था। दारा सरमद को लिखता है—"हे स्वामि (पीर उ मुर्शिदे मन), प्रतिदिन यह विनम्र आत्मा आपके पास पहुँचने की इच्छा करता है, परन्तु सफल नही हो सका है। यदि 'मै मै हूँ' (अगर मन मन म) तो मेरे सकल्प की यह निरर्थकता कैसी ? और यदि मै मै नही हूँ, तो मेरा अपराध कहाँ और क्या है ? यदि इमाम हुसैन की हत्या ईश्वर की इच्छा थी, तो यजीद क्यो बीच मे आ जाता है ? और यदि ईश्वर की इच्छा ऐसी न थी, तो इसकी व्याख्या क्या है ? रसूल एक समय काफिरो (अविश्वासियो) से युद्ध करने जाता है तथा इस्लाम की सेना को पराजय का मुख देखना होता है। अधिकृत इस्लाम की विद्वन्मण्डली (उल्माये-जाहिरी) कहती है कि यह 'धैर्य का पाठ है' (तालीमे सब्र)। परन्तु उस मनुष्य को शिक्षा (तालीम) की क्या आवश्यकता है जिसने (आध्यात्मिक उन्नति की) पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया है ?"

सन्त ने एक वाक्य मे उत्तर दिया कि उसने उन समस्त विद्याओ को शान्त कर दिया है जिनका अध्ययन उसने कभी किया था। कहा जाता है कि इस्लाम के कल्मे के नकारात्मक भाग का ही उच्चारण सरमद करता था—अर्थात् 'लाइल्ला' (कोई उपास्य देव नही हैं)। यदि कोई उससे इसका कारण पूछता, वह कहता—"मै न-कार ही में मग्न हूँ, अभी मै निश्चय को नही पहुँचा हूँ। मैं झूठ क्यो बोलूँ ?" वास्तव मे सरमद अनीश्वर-वादी न था, परन्तु वह सर्वेश्वरवादी था। परन्तु चूँकि कट्टर पन्थियो की निगाह मे दोनो समरूप से निन्दनीय है, मुल्ला लोग केवल एक सुअवसर की प्रतीक्षा मे थे जब वे सन्त से अपना बदला चुका सकें।

दिल्ली के नागरिको पर सरमद का असीम प्रभाव था। अतः इस कारण से दारा की हत्या के बाद औरंगजेब उसको राजनैतिक रूप से विपत्तिकारक समझता था। इसके अतिरिक्त दरबार के धर्म-विशेषज्ञो ने धर्म-भ्रष्ट होने का तथा इस्लाम के आदेशो के उल्लंघन का आरोप उस पर लगाया। सरमद को यह विकल्प दिया गया कि या तो वह अपनी नग्नावस्था का त्याग करदे या प्राण-दण्ड ग्रहण करे। सन्त ने द्वितीय विकल्प का वरण किया तथा सच्चे शहीद की मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसने वधिक का तथा उसकी नगी तलवार का मुसकराकर स्वागत किया और धैर्यपूर्वक अपने सिर को वध-पट्टिका पर रख दिया। कहा जाता है कि जब वधिक की तलवार उसके पवित्र सिर पर गिरने वाली ही थी, उसने निम्नलिखित पद्य का उच्चारण किया :—कुछ कोलाहल

हुआ तथा हमने शाश्वत निद्रा से अपने नेत्र खोल दिये। हमने देखा कि अत्याचार की रात्रि अब भी शेष है और हम फिर सो गये।

धर्म भ्रष्ट होने के आरोप पर सरमद ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये और जन साधारण ने उसकी हत्या के पश्चात् उसको सन्त (दिव्यात्मा) घोषित कर दिया। कहा जाता है कि दारा के सिर की भाँति उसके कटे हुए सिर ने सम्पूर्ण कल्मा का उच्चारण किया। इस अलौकिक कर्म का उल्लेख खलीफा इब्राहीम बदख्शी के प्रमाण पर वलीह दागिस्तानी करता है। खलीफा ने शायद इस उच्चारण को स्वयं अपने कानो से सुना था। सरमद की समाधि आज तक जन साधारण की पूजा का स्थान है। यह दिल्ली की जामा मस्जिद के पूर्व मे सड़क के दूसरी ओर है।[1]

अध्याय १५

दाराशिकोह का चरित्र

विभाग १—दारा तथा औरंगज़ेब के चरित्र में विरोध

"दारा .... 'का रहन-सहन ठाठ-बाट का तथा आकृति सुन्दर थी। वार्तालाप मे वह प्रसन्नमुख तथा शिष्ट रहता था, भाषण मे वह तत्पर तथा मधुर था, वह अत्युदार, कृपालु तथा दयावान् था, परन्तु अपने विषय मे अपनी सम्मति मे अत्यात्मविश्वासी था, वह समस्त विषयो मे अपने को समर्थ समझता था जिसको किसी परामर्शक की आवश्यकता न थी। इस कारण से उसके घनिष्टतम मित्रो को कभी यह साहस न होता था कि अति महत्वशाली वस्तुओ की सूचना उसको दे सके। तब भी उसके मनोरथो को जान लेना सरल था।"[2] दारा के चरित्र पर ये ऊपर के शब्द उसके मित्र मनूची की लेखनी के है और वे

१—इस विभाग के अधिकाश भाग का आधार सरमद पर मौलवी अब्दुल अली का लेख है। यह ज० ए० सु० ब० (१६२४) के पृ० १११ तथा अगले पृष्ठो में प्रकाशित हो गया है। सरमद के जीवन पर अन्य उल्लेखों के लिये देखो औरगजेब का इतिहास III पृ० ६५ पद-टिप्पणी।

'इस्लामिक कलचर' अक्तूबर १६३३ पृ० ६६३—६७२ पर श्री० बी० ए० हाशिमी ने हाल में एक विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित किया है। उसका पक्ष है कि सरमद के स्वदेश त्यागी पूर्वज योरुप के यहूदी थे जो आरमीनिया में आकर बस गये थे और यह कि भारत में आने के पहले सरमद काशान मे रहता था।

२—कहावते I २२१।

निम्न शब्दो से प्राय: सत्य प्रमाणित होते हैं जो उसके प्रति कम सहानुभूति रखने वाले बर्नें के है—"दारा के चरित्र मे सद्गुणो का अभाव न था, वार्तालाप में वह सुशिष्ट था, प्रत्युत्तर मे अविलम्ब, वह नम्र तथा अत्युदार था, परन्तु वह अपने सम्बन्ध मे बहुत ऊँची राय रखता था, उसको विश्वास था कि अपनी मानसिक शक्तियो के द्वारा यह प्रत्येक कार्य सिद्ध कर सकता है ..... । वह क्रोधशील भी था, भर्त्सना देना, फटकारना तथा बडे उमरावो को भी अपमानित करना—यह उसका स्वभाव था, परन्तु उसका क्रोध प्राय: क्षणिक होता था ... ।"[1] वास्तव मे यह बात सर्वविदित थी कि औरगजेब के मन्द हास्य की अपेक्षा दारा का गर्जन आधा भी भयावह न था।

पूर्व के अध्याय, विशेषकर वे अध्याय जिनका सम्बन्ध उसके राजनैतिक जीवन से है, दारा के चरित्रगत दोषो पर पर्याप्त टीका है। उसके गुण उसीके थे, तथा उसके अवगुण, जो मूलतः सद्गुणपरायण थे, दुखद दुर्घटना मात्र थे जिनका कारण विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ थी। ये अवगुण बहुत ही शोचनीय प्रतीत होते है, क्योकि वे वास्तविक सद्गुणो तथा उत्कृष्ट अभिप्रायो से सम्मिश्रित है। वे हमको अनुचित रूप से दीर्घकाय मालूम होते है क्योकि दारा राजनीति तथा युद्ध के क्षेत्रों मे असफल रहा। किन्तु दारा के चरित्र मे कोई ऐसी वस्तु अवश्य थी जिसने उसकी निर्बलताओ तथा विवेकहीनता के होते हुए भी उसको केवल उसके दृढ शत्रुओ को छोडकर सर्वप्रिय बना दिया था। दारा की हत्या के बहुत बाद जब मनुची बिहार मे भ्रमण कर रहा था उसको पटना मे अबुल कासिम नामक एक व्यक्ति मिला तथा जब वे मन्द भाग्य राजकुमार की गति पर वार्तालाप करने लगे, अबुल कासिम ने अपना हार्दिक दुःख इस बात पर प्रकट किया कि राजकुमार के प्रति अपने प्रेम तथा अपनी निष्ठा को प्रकट करने का उसको कोई अवसर न मिला यद्यपि दारा ने उसके प्रति कुछ अत्याचार तथा अन्याय किया था।

राजकुमार दाराशिकोह को इतिहास मे प्राय: असफल कहा जाता है। यह शायद दारा के प्रति अन्याय है तथा इतिहास की आधुनिक धारणा के प्रति यह अपमान है। मनुष्यमात्र का जो समस्त कल्याण किसी मनुष्य के द्वारा हुआ है, वही उस मनुष्य का मूल्याङ्कन करने के लिये, इतिहास का मापदण्ड है। इस मापदण्ड के अनुसार औरगजेब का अर्धशताब्दी का निष्फल शासन भारतीय इतिहास मे सर्वोपरि प्रमुख असफलता है। अपनी असफलता का अपने ही शरीर द्वारा दारा ने प्रायश्चित्त कर लिया जब कि औरगजेब की सफलता से एक

१—कॉस्टेबलकृत बर्नें की यात्रायें—पृ० ६।

रखते है जो औरगजेब अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति रखता था। उसके अनुसार दारा राजनीति मे षडयन्त्रकारी था, आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे वह असफल कपटी था, स्वय अनेकेश्वरवादी तथा अनेकश्वरवादियो का मित्र था, वार्तालाप तथा हास्य को छोडकर किसी काम का न था। यह स्वीकार करते हुए भी कि शुभ कार्यो का श्रेय दारा न प्राप्त कर सका, तथा प्रत्येक आक्षेप का वह अपराधी था जो उसके विरुद्ध आरोपित किया गया, यह बात अशक्य है कि कोई भी व्यक्ति इसमे सन्देह करे कि अबु बिन आदम की भाँति औरगजेब की अपेक्षा अधिक शुद्ध अन्तकरण से राजकुमार उस दिव्यात्मा को कहे—"मुझे ऐसा मनुष्य लिख लेने की कृपा करे जो अपने साथी मनुष्यो से प्रेम करता है।"

परन्तु, अपने विरुद्ध इतिहास का कठोर निर्णय होते हुए भी औरगजेब सार्वजनिक कल्पना मे सदैव वीर गिना जायेगा, क्योकि इस कल्पना पर ऐति-हासिक विवेचना का कोई भी प्रभाव नही पडता है। प्रेम तथा प्रशसा का आदर जो मुसलमान उसको अर्पित करते है, उसका कारण उस जाति की विचित्र मानसिक अवस्था नही है। यदि उसका जन्म हिन्दुओ या ईसाइयो मे हुआ होता और उसने उनकी इतनी सेवा की होती, तो उससे कम सार्वजनिक श्लाघा द्वारा उसका स्वागत न हुआ होता जो उसको आज अपनी जाति से प्राप्त है। उसका व्यक्तित्व ही ऐसा है जो सार्वजनिक कल्पना को उत्तेजित करने के प्रायः उपयुक्त है। इसके अनुसार आदर्श वीर वह है जो परम्परागत धर्म-मार्ग से बाल बराबर भी भ्रष्ट नही होता है, जो धर्म की शुद्धता को पुनः स्थापित कर देता है, जो धर्म के शत्रुओ का दमन करता है, जो दुष्टो को पराजित करता है, साधुओ की रक्षा करता है, कोमल कुवासनाओ के प्रलोभनो को ठुकरा देता है, जो अपने ही भोग विलास के निमित्त कष्ट सहन न कर अपने देशवासियो के प्रति अपने कर्तव्य-पालन के लिये घोर परिश्रम करता है और जो भारत की सम्पदा के बीच में दरिद्र रह कर अपने जीवन को व्यतीत करता है तथा अपनी मृत्यु को प्राप्त होता है और जिसका चरित्र निर्बलताओं तथा नैतिक कलक से मुक्त रहता है। ससार मे सर्वत्र तथा समस्त युगो मे सार्वजनिक कल्पना के वीर का चरित्र उसके वास्तविक ऐतिहासिक चरित्र से भिन्न रहा है। शार्लमैग्ने, हारूँ अल-रशीद, महान पीटर तथा शिवाजी ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रकाश मे वे व्यक्ति नही प्रतीत होते है जो वे अपने देशवासियो के निरक्षर जन-समुदाय की कल्पना के अनुसार है। यदि एक शूद्र तपस्वी का सिर काटने पर आदर्श राजा रामचन्द्र की निन्दा नही की जा सकती है—जैसा कि कवि भवभूति अपने वीर का चित्रण करता है—तो सरमद तथा दारा को प्राण-दण्ड देने पर शायद औरंगजेब की भी निन्दा

नही की जा सकती है। जिन लोगो को अपने सत्य धर्म का शत्रु समझकर उनके प्रति जो कुछ भी उसने किया, उसके निमित्त वह निन्दा का पात्र नही हो सकता है। औरंगजेब का दुर्भाग्य यह था कि उसका जीवनकाल एक ऐतिहासिक युग मे व्यतीत हुआ तथा इतिहास का पूर्ण प्रकाश उस पर केन्द्रित था।

विभाग २—दाराशिकोह के चरित्र की शाहजहाँ के चरित्र से तुलना तथा अन्तर

सम्राट् शाहजहाँ के चरित्र मे दो तत्व सम्मिलित थे—मुस्लिम कट्टरता का वास्तविक तत्व तथा अकबर के काल का लौकिक पुट। उस एक व्यक्ति मे दारा तथा औरगजेब दोनो थे—औरगजेब पदक का दूसरा पार्श्व था। शाहजहाँ का शासन-काल सक्रान्ति का समय था जिसमे अकबर की सुप्रकाश-मय राष्ट्रीयता औरगजेब के काल की अन्धकारमय कट्टर पन्थी प्रतिक्रिया मे परिवर्तन हो गया। बाह्य रूप से उसका शासनकाल अकबर के समय का अगला भाग था यद्यपि धरातल के नीचे प्रतिक्रिया की प्रबल अन्तर्हित धारा साम्राज्य के आधार को निर्जीव कर रही थी। तथापि उसका दरबार इस समय तक हिन्दु तथा मुस्लिम सस्कृतियों की सुखद सम्मिलन-भूमि बना हुआ था तथा साहित्य और ललितकला के क्षेत्रो मे विलक्षणता तथा निपुणता का बिना धर्म-भेद के उदारतापूर्वक पुरस्कार मिलता था। हिन्दुस्तान के समस्त मुगल सम्राटो मे शाहजहाँ का यह विशेप धन्य भाग्य था कि हिन्दु तथा मुसलमान दोनो वर्गों की प्रजा की अनुमति तथा प्रशसा उसको प्राप्त थी और वह शायद इसका पात्र भी था। मुल्ला ने वास्तविक मेहदी (पथ-प्रदर्शक) के रूप में उसका स्वागत किया जो इस्लाम के दज्जाल तथा ईसा विरोधी अकबर के बाद प्रकट हुआ था। शाहजहाँ की प्रशसा मे पण्डित भी समान रूप से सोत्साह था और उस समय के योग्यतम पण्डितराज जगन्नाथ ने उसकी प्रशसा मे एक पद लिखा जो उस समय से प्रसिद्ध है—

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान्पूरयितु समर्थः।
अन्यैर्नृपालैः परिदीयमानः शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥

अर्थात् दिल्लीपति वा जगदीश्वर ही केवल मनोरथ को पूरा करने मे समर्थ है। जो अन्य नृपाल देते है वह केवल शाक वा लवण के लिये पर्याप्त होता है।

परन्तु यह सुसंस्कृत तथा उदारशील निरंकुश सम्राट् सार रूप से औरंगजेब की अपेक्षा लेशमात्र भी कम कट्टरपन्थी तथा कठोर न था। शाहजहाँ काव्य-

प्रेमी था, परन्तु जैसा कि उपाख्यानो से पता चलता है उसकी धर्मान्धता सदैव उसकी साहित्यिक विभावना को दूषित कर देती थी। कहा जाता है कि कवि शैदा (पागल) को यह पद लिखने के कारण देश से निर्वासित कर दिया गया था—

"चिस्त दानी बादये गुलगूँ मुसफ्फये जौहरी।
हुस्न रा परवरदिगार उ इश्क रा पैगम्बरी॥

अर्थात्—क्या तू जानता है कि मदिरा क्या है जो गुलाब की भाँति लाल होती है तथा मुक्ता की भाँति शुद्ध तथा शुभ्र होती है। यह सौन्दर्य की पोषक है तथा प्रेम की सन्देश-वाहक।

रसिकता के अभाव को दुखद रूप से प्रकट करती हुई शाहजहाँ की कट्टरता भभक उठी, वह कवि से बहुत बिगड गया क्योकि उसने ईश्वर तथा रसूल के नामों को निषिद्ध पेय से निन्दनीय प्रकार से सम्बन्धित कर दिया था। एक क्षमा-पत्र लिखकर तथा आत्मरक्षा मे मौलाना रूमी के प्रमाण को उद्धृत करने पर ही कवि पुनः कृपा का पात्र हो सका।[1]

शाहजहाँ के चरित्र के गौण तथा मुख्य तत्वो को दारा तथा औरगजेब ने क्रमशः पैतृक सम्पत्ति मे प्राप्त किया था। दारा के भाग मे प्रबल पारिवारिक प्रेम, आडम्बर तथा वैभव के प्रति आसक्ति, विद्या तथा विद्वता के प्रति उदार गुणग्राहकता, सगीत तथा चित्रकारी मे शिष्ट अभिरुचि तथा गणित और फलित ज्योतिष मे दारा का विश्वास[2] ये दारा को प्राप्त हुए थे। परन्तु शाहजहाँ का चातुर्य, मानुषी चरित्र का उसका सूक्ष्म परिज्ञान, उसकी कठोर व्यावहारिक चित्तवृत्ति, उसकी अश्रान्त कार्य-क्षमता, तथा नित्य कर्म के प्रति उसका प्रेम—ये दारा को न प्राप्त हुए थे। तब भी युवराज सुन्दर सामर्थ्यशील पुरुष था। वह शारीरिक तथा मानसिक साहस तथा शक्ति से सुसम्पन्न था। वह अपने मनुष्यत्व को पूर्णरूपेण विकसित न कर सका क्योकि इतिहास के अन्य महान्

१—शेख खॉ लोदी कृत—मीरात्-उल-खियाल। यह शैदा प्रसिद्ध कवि शैदा जीलानी न था। मीरात्-उल-खियाल का लेखक कहता है कि वह फतेहपुरसीकरी के शेखजादों के परिवार में उत्पन्न हुआ था। शाहजहाँ के रसाभाव का एक दूसरा उदाहरण देखो—शाहजहाँ तथा कवि चन्द्रभान ब्राह्मण का उपाख्यान-पूर्ववत, पृ० १५४-१५५।

२—शाहजहाँ के शासनकाल में यूनानी तथा हिन्दु गणित तथा फलित ज्योतिष के अध्ययन का बहुत प्रचलन था। ज्योतिष पर टोलेमी के अरबी ग्रन्थ 'अल्मगिस्त' का 'सिद्धान्त सार कौस्तुभ' नामक सस्कृत में अनुवाद जगन्नाथ ने किया था जिसको हेमा कवि की उपाधि प्राप्त हुई थी। उसने ज्योतिष पर एक दूसरे ग्रन्थ का भी सम्पादन किया तथा इसका नाम सम्राट-सिद्धान्त रखा। (गायकवाड की पूर्वीय ग्रन्थमाला)

व्यक्तियो के विपरीत उसने अपने जीवन को गलत छोर से आरम्भ किया—अर्थात् निष्प्रयास अकर्मण्य जीवन से। दारा के चरित्र का व्यावहारिक पक्ष अविकसित रह गया क्योकि अपने चरित के आरम्भ मे उसको कुछ स्पष्ट न प्रतीत हुआ, उसको कोई महत्वशाली वस्तु न प्राप्त हो सकी जिसके निमित्त वह अपने प्रारम्भिक जीवन मे अकबर, शाहजहाँ तथा औरगजेब के सदृश प्रयास कर सके।

शाहजहाँ के शासन-काल के वैभव मे दारा का भाग तुच्छ न था। औरगजेब तथा सादुल्ला द्वारा प्रेरित प्रतिक्रिया की शक्तियो का स्वस्थ सन्तुलन दारा तथा जहाँनारा के प्रयास द्वारा हो जाता था। यह विश्वास करने का प्रबल कारण है कि हिन्दुओ पर यात्रा-कर का हटाना तथा अपवित्रीकृत चिन्तामणि के मन्दिर का पुनः निर्माण प्रतिक्रियावादियो पर दारा की दो महान् सफलताये थी। यात्रा-कर[1] के उच्छेद के विषय मे हमको कवीन्द्राचार्य सरस्वती के जीवन-उल्लेख से यह पता चलता है कि शाहजहाँ तथा दाराशिकोह के दरबार-आम मे कवीन्द्र की वागविदग्ध तथा मर्मस्पर्शी प्रार्थना पर आँसू टपक पडे। इसमे मुश्किल से कोई सन्देह है कि दारा तथा कवीन्द्र की व्यक्तिगत घनिष्ठ मैत्री के कारण ही हिन्दुओ को उस कठोर पन्थी सम्राट् शाहजहाँ से ये दो महान् प्रदान हस्तगत हुए थे। दारा को योग तथा वेदान्त के गूढ रहस्यो मे कवीन्द्र ने ही दीक्षा दी थी। दारा की सहनशील भावुकता तथा उसकी हिन्दु हितो के प्रति-प्रवृत्ति के अतिरिक्त इस तथ्य द्वारा दारा को शायद प्रलोभन हुआ था कि वह उस मन्दिर का पुनः निर्माण कर दे जिस चिन्तामणि मन्दिर को औरगजेब ने भ्रष्ट कर दिया था। उस स्थान पर मूर्ति पूजा की पुनः स्थापना जहाँ पर एक समय मुअज्जिन का उच्च घोष श्रवण गत होता था, तथा जहाँ पर मुसलमान प्रार्थना के निमित्त घुटनो के बल झुक जाते थे, शायद भारत मे मुस्लिम शासन

१—यह आश्चर्य की बात है कि पादशाहनामा में शाहजहा के इन सर्वोपरि उदार कृत्यों का कोई उल्लेख नही है—अर्थात् हिन्दुओं की यात्रा-कर से मुक्ति—यद्यपि शाहजहा इसको नियमित रूप से सुनता था तथा महान् मन्त्री सादुल्लाखाँ इसका सशोधन करता था। अकबर के द्वारा इसके त्याग के बाद यह जहागीर के शासन-काल में फिर प्रचलित कर दिया गया था। यह कार्य शाहजहाँ ने एक हिन्दु शिष्ट मण्डल की प्रार्थना पर किया था। इसके नेता कवीन्द्र सरस्वती थे। कहा जाता है कि समस्त मुगल साम्राज्य से हिन्दु जाति के सौ से भी अधिक नेताओं के धन्यवाद-पत्र उसको प्राप्त हुए थे, तथा इनमें से एक पत्र बगाल के प्रसिद्ध नैयायिक विश्वनाथ न्यायपञ्चानन का था जो उस समय वाराणसी में निवास करता था तथा अन्त में वृन्दावन चला गया (गायकवाड की पूर्वीय ग्रन्थ माला—नं० १७, कवीन्द्राचार्य की सूची—अग्रलेख ५)।

के इतिहास मे एक अपूर्व घटना है। अविश्वासी प्रजा की पूजा के प्राचीन स्थानो के विषय मे इस्लामी धर्म की यह आज्ञा हो सकती है कि उनको हानि से सुरक्षित रखा जाये, परन्तु स्वच्छन्द सम्राट् की काम-वृत्ति पर इस आदेश का कोई भी प्रभाव न पड सकता था यदि पर्याप्त नैतिक बल उसके समर्थन पर प्राप्त न होता।

शाहजहाँ के दरबारी इतिहास मे जनवरी १६३३ के बाद किसी मन्दिर के विनाश का उल्लेख नही है। अपने शासन-काल के छठे (?) वर्ष मे शाहजहाँ ने गोकुल-निवासी गोवर्द्धननाथ के गोस्वामी विट्ठलराय टिकायत को एक फर्मान अनुदान मे दिया। उसमे लिखा है कि मौजा (ग्राम) जतीपुरा की भूमि गोस्वामी को अनुदान मे दी जाती है, यह भूमि "उसके अपने उपयोग निमित्त, तथा ठाकुरद्वारा के व्यय-निमित्त कर-मुक्त दी जाती है।[1] इस तथ्य से कोई इन्कार नही कर सकता है कि उसके शासन-काल के दशवें वर्ष से लेकर अन्त तक हिन्दुओ के प्रति शाहजहाँ की नीति मे साधारणतया दिन प्रतिदिन उत्तम परिवर्तन ही मिलता है। यह निश्चय ही दरबार मे दारा तथा जहाँनारा के बढते हुये प्रभाव का फल था। शाहजहाँ के शासन-काल के प्रत्येक दशक की समाप्ति पर मनसबदारो की एक सूची प्रकाशित होती थी, इन तीन सूचियो मे से दो अब्दुलहमीद की पुस्तक मे दी हुई है तथा एक वारिस मे है। ये यह बहुत उपयोगी जानकारी प्रस्तुत करती है कि मुगल सेना में हिन्दु सनसबदारो की संख्या का प्रतिशत बढ गया था। शासन-काल के अन्तिम दश वर्षों मे उच्च पदो मे द्विगुणित वृद्धि हुई थी तथा निम्न पदो मे लगभग त्रिगुणित। जिस समय उत्तराधिकार युद्ध प्रारम्भ हुआ, दो हिन्दु सामन्त ५ हजारी के पद से ऊँचे पद के थे। यह हिन्दु योग्यता की अद्भुत मान्यता थी जो अकबर की मृत्यु-पश्चात् पहले कभी न प्राप्त हुई थी। हिन्दुओ के प्रति दारा की विशेष सहानुभूति से तथा उसके द्वारा हिन्दुओ को चेष्टा तथा उदारता-पूर्वक आश्रय प्राप्त होने से हिन्दुओ की आँखो से शाहजहाँ के शासन का मलिन पक्ष छुपा ही रह गया। वह शाहजहाँ के काल के सास्कृतिक इतिहास का भी निर्माता था तथा इस

१—के० एम० झावेरी कृत 'शाही फर्मान'—न्यू प्रिंटिग प्रेस—बम्बई। फरमान न० ६। दिनाङ्क ६ इलाही वर्ष पढा गया है। पत्र न० ७ में कुछ देय धनों से मुक्ति का वर्णन है। वह अनुवादक के पाठ्य-अनुसार केवल एक मास पीछे निकाला गया था। फर्मान नं० ८ दारा का केवल एक निशान है तथा यह दारा के दीवान अब्दुलकरीम के हाथ का लिखा हुआ है। यह इस प्रकार है—"चूँकि विट्ठलराय का निवास कस्बे गोकुल में है, और चूँकि उपरिवर्णित पुरुष का यह जन्म-स्थान है, और चूकि उसकी सम्पत्ति तथा उसके पशु वहाँ पर ही है—यह आज्ञा दी जाती है कि न तो कोई उसको कष्ट पहुँचाये और न कोई उसको तंग करे।

सास्कृतिक इतिहास को छोडकर शाहजहाँ के काल की ऐसी कोई वस्तु नही है, केवल उसके भवनो को छोडकर, जिस पर गर्व किया जा सके।

विभाग ३ दाराशिकोह तथा महान् अकबर

दाराशिकोह पहली झलक पर अपने परबाबा की आत्मा का अवतार मालूम होता है। परन्तु वास्तव मे मुस्लिम जगत् के शासको तथा विचारको मे दूसरा अकबर हुआ ही नही है। भारतीय इतिहास के समस्त समय मे शायद अशोक को छोडकर उससे बडा शासक नही हुआ हे। उसके शासन-काल के विशेष गुण थे बौद्धिक तथा धार्मिक क्रान्ति, तथा साहित्य, ललित कलाओ और राजनीति मे भारतीय राष्ट्रीयता की उत्पत्ति। यदि ठीक-ठीक कहा जावे तो अकबर तथा दारा मे परस्पर कोई न्याय-सगत तुलना नही हो सकती—क्योकि अकबर की विलक्षण बुद्धि सर्वतोमुखी तथा महाविशाल थी जब कि दारा की स्वल्प सङ्कीतमय थी। अपने मानसिक गुणो मे वे एक दूसरे के प्रायः विपर्यय-रूप हैं। दारा मूलतः गूढ द्रष्टा तथा अन्तर्ज्ञानरत था जब कि अकबर प्रमुख रूप से बुद्धिवादी था—'अपने ही विवेक का शिष्य।' अकबर की तुलना मे खलीफा मामूँ भी तुच्छ अनुदार व्यक्ति जान पडता है।

अकबर मे मस्तिष्क तथा हृदय सम्बन्धी गुणो का समुचित सतुलन था। दारा का हाल यह न था। उसके मस्तिष्क गुण उसके हृदय सम्बन्धी गुणो से निर्बल थे। ईश्वर के अन्वेषियो के रूप से भी वे भिन्न वर्गों के हैं—अकबर उच्च बौद्धिक है तथा दारा उच्च भावुक। अकबर का ईश्वर कर्म-विपयक ईश्वर है, और दारा का ईश्वर अनुभव है। यह प्रतीत कर कि ईश्वर सत्य हे, जैसा कि उन्होंने प्रतिपादन किया, अकबर ने अपना प्रेरक भाव यह स्थिर किया कि ईश्वर की आज्ञा का पालन किया जाये, उसका अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये, वीरवत, जितेन्द्रियता तथा आत्मान्तर्दर्शन का अभ्यास किया जाये। दारा ने सरमद तथा मुल्लाशाह की भाँति ज्ञान, बुद्धि तथा तर्क को तिलाञ्जलि दे दी तथा उसके साथ सयोग के आनन्द-सागर मे मग्न हो गये। हिन्दू शब्दो मे कह सकते है—अकबर योगी था तथा दारा भक्त था। ईश्वर के प्रति अकबर की वृत्ति की तुलना बन्दरिया के बच्चे से कर सकते हैं जो अपने ही निश्चय तथा आत्मशक्ति द्वारा अपनी माता के पेट से मजबूत चिपटा रहता है। दारा बिल्ली के बच्चे के सदृश है जो असहाय होकर मेव-मेव करता रहता हे जब तक कि माता नही आ जाती है और उसको सशरीर उठा लेती है। वरञ्च—यह कहा जाता है कि ईश्वर के मार्ग मे ज्ञान अन्धा है तथा श्रद्धा पगु है तथा एक दूसरे की सहायता के बिना सत्य को प्राप्त करने मे दोनो असहाय है। इसमे कोई

आश्चर्य की बात नही है कि अकबर का बुद्धिवाद गूढवाद को प्राप्त हो गया— क्योकि ईश्वर बुद्धि की पहुंच के बाहर है। दारा ईश्वर-प्रमत्त व्यक्ति था जिसको उसका जितेन्द्रिय प्रपितामह अन्वेषण तथा जागरण से श्रान्त होकर यह कह सकता था—

वय तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्व खलु कृती।
अर्थात्—"तत्त्व के अन्वेषण मे हम नष्ट हो गये है,
हे मधुकर तुम निश्चय धन्य हो।"

बाह्य प्रेक्षक तथा नेत्रहीन धर्मान्ध गण दारा तथा अकबर दोनो को साथ-साथ अनीश्वरवादी, दम्भी तथा अवसरवादी, सर्व धर्म-विहीन मनुष्य कह देते है। प्रत्येक पन्थ के तथा-कथित कट्टर-पन्थी उत्साहियो को दारा तथा अकबर धार्मिक मूर्ख समझते थे। वे अपनी ओर से उनको धर्महीन दुष्टो से अधिक कुछ न समझते थे। सत्य यह है कि दारा तथा अकबर ने ईश्वर की सत्ता से कभी इन्कार न किया, परन्तु उनका ईश्वर साधारण मुसलमान, ईसाई वा यहूदी के लिये अबोध्य था क्योकि इस ईश्वर पर न तो इस्माइल के बालको का, न इज्रैल की सन्तति का कोई विशेष अधिकार था। बिना 'अपनी चाही हुई सन्तति' का ईश्वर, एकेश्वरवादियो के प्रति बिना विशेष अनुराग का ईश्वर, तथा अनेकेश्वरवादियो के प्रति बिना घृणा का ईश्वर सेमिटिक जातियो के लिये प्राय: दुर्बोध्य ही था। दारा तथा अकबर को दम्भी कहा गया है क्योकि वे एक धर्म को सत्य और दूसरे धर्मों को असत्य मानने के लिये तैयार न थे, क्योकि अन्य समस्त धर्मों के साथ घृणा तथा अत्याचार द्वारा वे एक विशेष धर्म के प्रति अपने प्रेम को प्रमाणित करने के इच्छुक न थे। वे विशाल हृदय सत्य द्रष्टा थे। इस स्थिति से वे प्राय: सन्तुष्ट थे कि 'कुफ्र काफिर के लिये तथा, मजहब कट्टर-पन्थी के लिये' छोड दे। उनकी नीति 'सुलहकुल' वा सर्वेभ्य: शान्ति: की थी। कहा जाता है कि अकबर ने केवल इस्लाम के सम्बन्ध मे इस नीति का अतिक्रम किया क्योकि उसकी सम्मति में अधिकृत इस्लाम उन्नति के मार्ग में बाधा था तथा राष्ट्र के प्रति निष्ठाहीन था। पूर्व तथा पश्चिम दोनो स्थानो के अनेक आधुनिक विचारको की भाति अकबर की यह प्रबल धारणा थी कि शेख अब्दुन्नबी तथा मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी का इस्लाम उन्नति तथा सभ्यता के प्रति असंगत था।

अकबर ने एक राष्ट्रीय साम्राज्य का निर्माण किया था। चित्रकारी, स्थापत्य, संगीत तथा साहित्य की राष्ट्रीय सस्थाये स्थापित कर उसने इस साम्राज्य को उन्नति के नवीन पथ पर अग्रसर कर दिया था। इसमे भारतीय तथा इस्लामी कला और संस्कृति के उत्तम तत्व सम्मिलित थे धर्म के विषय में

भी उसने वही प्रयास किया तथा इस्लाम के विशुद्ध एकेश्वरवाद को आर्य तथा ईरानी सस्कृतियो के प्राचीन अपक्व विश्वासो तथा उनकी प्रतिमाप्रधान प्रकृति-पूजा से सम्मिश्रित करके उसने एक नवीन सम्प्रदाय स्थापित किया। परन्तु पूर्व के निवासी अकबर के समकालीन पुरुष उसकी प्रबल विलक्षण बुद्धि के सम्मुख केवल वामन सदृश थे। अकबर के उच्च आदर्शवाद को समझने में उन्होने इतनी बडी भयकर गलती की जितनी कहानी के अन्धजनो ने हाथी के विषय मे अपना विचार स्थिर करने में की थी। यह कह कर कि वह अनेकेश्वरवादी तथा सूर्योपासक है, उन्होने अकबर की निन्दा की। अबुल्फज्ल तथा फैजी[1] सदृश थोडे से व्यक्ति ही उसके दार्शनिक अभिप्राय को यथार्थ समझ सके। फैज़ी ने एक कसीदा मे अकबर की सूर्योपासना के रहस्य को अमर कर दिया है—

"किस्मत निगार कि दर खुरे हर जौररे अतास्त।
आइना ब सिकन्दर उ ब अकबर आफ्ताब।।
उ मेकुनद मुआइने खुद दर आइना।
ब ईं मेकुनद मुशाहदाहे हक दर आफ्ताब।।"

अर्थात्—'दैव की विधि को देखो कि प्रत्येक प्राणी को उसकी प्रकृति के अनुकूल वस्तु प्राप्त हुई है—सिकन्दर को दर्पण तथा अकबर को सूर्य। सिकन्दर दर्पण मे अपने आपको देखता है, परन्तु अकबर सूर्य मे सत्य का दर्शन करता है।'

यह उल्लेखनीय है कि पश्चिम तथा पूर्व मे १६वी शताब्दी मे एक ही प्रकार की विचारधारायें मनुष्य-चित्त को आन्दोलित कर रही थी। इस शताब्दी में योरुप की विशेषतायें थी—बौद्धिक उत्तेजना, धार्मिक सुधारको का उदय, राष्ट्रीय राजतन्त्रो की वृद्धि, राष्ट्रीय स्वच्छन्द राजाओ की महत्वाकाक्षा तथा उनकी नीति कि राष्ट्र तथा राष्ट्रीय धर्म के वे सर्वोपरि शासक बन जाये तथा जनता के राजनैतिक और धार्मिक जीवन से देश-बाह्य प्रभावो को विनष्ट कर दे। अकबर ने भगीरथ प्रयत्न किया कि भारतीय इस्लाम को अरबी प्रभाव से स्वतन्त्र कर दे तथा इसको भारत की आवश्यकतानुकूल बना दे जिस प्रकार ईरानियो ने शिया सम्प्रदाय का विकास कर लिया था कि इस्लाम उनकी राष्ट्रीय विलक्षणता के अनुकूल हो जाये।

उन मुसलमानो को भी, जो इन्कार करते हैं कि अकबर मुसलमान था, इसमे सन्देह नही है कि दाराशिकोह मुसलमान था यद्यपि उसके विचार प्रायः

१—फैजीका नल-दमनः परिचय।

अनेकेश्वरवादी थे। सर्व धर्मों के प्रति शान्ति की अपनी वृत्ति मे यद्यपि दारा तथा अकबर सदृश थे, तथापि इस्लाम के प्रति अपनी वृत्ति मे वे दोनो उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव के समान सर्वथा विरुद्ध थे। अकबर उन पुरुषो मे था जो उसी की एक कहावत के अनुसार "दैवी पुस्तको मे विश्वास नही रखते है और न यह मानते है कि परब्रह्म जिसके जिह्वा नही है मानुषी वाणी मे अपने को व्यक्त कर सकता है।"[1] उसके लिये हदीस (परम्परागत धर्म-ग्रन्थ) मान्य न थे— 'बहुत से मूर्ख, अनुकरण-प्रथा के पुजारी भ्रान्तिवश प्राचीन परम्पराओ को बुद्धि की आज्ञायें मान लेते है और सर्वदा के लिये अधोगति को प्राप्त हो जाते है।"[2] परन्तु दाराशिकोह के किसी लेख से यह स्पष्ट हो जायगा कि कुरान तथा हदीसो के उद्धरणो का वह परम अन्तिम प्रमाणो के रूप मे उपयोग करता ह। दारा न केवल कुरान को, परन्तु वेद को भी "ईश्वर-वाक्य" (कलामे इलाही) मानता था। स्वीकृति या सशरीर आरोहण (मिहराजे जिस्मानी) की कहानी को कट्टर मुसलमान अपने विश्वास का एक अङ्ग मानते है। उनका विश्वास है कि रसूल ने यह यात्रा सशरीर स्वर्ग को की थी। इस कहानी को अनर्थक कहकर अकबर ने इसका तिरस्कार कर दिया क्योकि यह शरीर द्वारा अशक्य है। बुद्धि-वादी मुसलमान यह विश्वास कर एक प्रकार का समझौता कर लेते है कि आरोहण कार्य शरीर द्वारा नही, परन्तु सूक्ष्म शरीर द्वारा हुआ था। दारा की सम्मति कट्टर दल की ओर झुकी हुई है। रिसालै हकनुमा में वह कहता है कि हारा की गुफा में रसूल प्राणायाम या श्वास-निरोध का अभ्यास करता था (आवर्द बुर्द), तथा इसके परिणामस्वरूप उसका शरीर वायु से भी सूक्ष्म हो गया था तथा हीरे से भी अधिक पारदर्शी। फिर इसमें क्या बात अशक्य है कि अपने सूक्ष्मीकृत काय-शरीर सहित रसूल सातवे स्वर्ग पर चढ गया? दारा का विश्वास निस्सन्देह इतना असंस्कृत है जितना कि बङ्गाल के भक्त मुसलमान ग्रामीणो का है जो आपको ऐसी बहुत-सी कहानियाँ सुनायेंगे कि अमुक पीर रात ही रात मे मक्का पहुँच जाता है तथा काबा में, नमाज पढकर सूर्योदय के पूर्व ही अपने प्रार्थना-स्थान पर पहुँच जाता है।

यदि बदायुनी के द्वेषपूर्ण कथनो मे कोई सत्य है, तो दार्शनिक अल् किन्दी की भाँति अकबर ने रसूल के नैतिक चरित्र का बीभत्स विश्लेषण किया, उसके नाम का निषेध कर दिया, उसको अनुपयोगी कह कर रसूलो मे से अलग फेंक

१—जरैंत का आईने अकबरी III ३८० ।

२—पूर्ववत ३८२ ।

दिया और स्वय उसने उसके स्थान का अपहरण कर लिया। परन्तु अरब के रसूल की ओर दारा का कभी इस प्रकार का विचार न हुआ और न उसने इसका सहन ही किया। उसने सदैव उसके प्रति गम्भीरतम सम्मान रखा, उसको समस्त आन्तर तथा बाह्य विद्या का मूल स्रोत मानता रहा। उसका झगडा सर्वदा सकीर्ण-हृदय मुल्लाओ से तथा कुरान और हदीस की उनकी व्याख्याओ से था। अकबर ने इस धर्म-आज्ञा का उल्लघन किया कि मुहम्मद अन्तिम रसूल है तथा उसकी इच्छा थी कि उसकी अपनी उम्मत (राजनैतिक—धार्मिक जाति) बन जाये। इसके विपरीत दारा ने कभी भी ऐसा अभिमान उपस्थित न किया, उसका केवल यह प्रतिपादन था कि वह इन्सानेकामिल या पूर्ण मनुष्य है और यह ऐसा स्वत्व प्रतिपादन है जो इस्लाम से असगत नही है।

दाराशिकोह के धर्म के सम्बन्ध मे बर्नें कहता है—"जन्म से वह मुसलमान था तथा वह उस धर्म के व्यवहार मे बराबर सम्मिलित होता रहा। परन्तु यद्यपि वह इस प्रकार उस धर्म के प्रति अपना विश्वास जनसाधारण के समक्ष प्रकट करता रहा, वह व्यक्तिगत रूप से हिन्दुओ मे हिन्दू तथा ईसाइयो मे ईसाई था।"[1] इसमे कोई सन्देह नही मालूम होता है कि दारा ने कम-से-कम बाहर से इस्लाम की अनुयायिता से इन्कार न किया। यह इस आरोप का पर्याप्त उत्तर है कि वह स्वधर्मभ्रष्ट था जो उसके विरुद्ध प्रायः उपस्थित किया जाता है, क्योकि मध्यकालीन रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की भाँति मनुष्यो के विचारो तथा उनके व्यक्तिगत कर्मों के विषय मे इस्लाम धर्म मे किसी छानबीन का विधान नही है।

राजनैतिक हत्या को न्यायसगत सिद्ध करने के लिये औरगजेब ने दारा के विरुद्ध स्वधर्मभ्रष्ट होने के ऐसे आरोप उपस्थित किये जैसे कि वह एक अँगूठी पहनता था जिस पर देवनागरी अक्षरो मे 'प्रभु' शब्द खुदा हुआ था, वह हिन्दू तपस्वियो की संगति करता था तथा उसने केशवराय के मन्दिर को एक पत्थर का परकोटा भेट मे दिया था। औरगजेब का इतिहासकार इन आरोपो को स्वधर्म-भ्रष्टता का दण्ड देने के लिये पर्याप्त नही समझता और उनको अस्वीकृत कर देता है। चूँकि हमको पहले ही पता हो चुका है कि मुस्लिम धर्म के मुख्य विश्वासो पर दारा के विचार शास्त्रीय सम्प्रदाय के विचारो से मूलतः भिन्न न थे। केवल इस विषय पर उसका मत भिन्न था कि वह आरिफ (आस्तिक) जिसको सत्य के आवरण-रहित मुख की एक झलक दिखाई दे गई है, शरीयत की आज्ञाओ के अनुपालन से मुक्त होने का अधिकारी है वा नही। मध्यम मार्ग

१—कॉस्टेबल कृत—बर्नें की यात्रायें—पृ० ६।

के सूफियो के विपरीत दारा की धारणा थी कि सत्य (हक़ीकत) के उदय होने के पश्चात् आस्तिक धार्मिक अनुशासन (शरीयत) के कठोर बन्धन से मुक्त हो जाता है। परन्तु यह केवल अपनी-अपनी राय की बात थी। मालूम होता है कि बाद को अपने गुरु मुल्लाशाह बदख़शी की कठोर भर्त्सना के कारण उसके विचार अधिक सयत हो गये थे। जैसी कि बर्ने की साक्षी है दारा ने इस्लाम के बाह्य अनुपालन की कभी भी उपेक्षा न की यद्यपि वह रोजा (उपवास) और नमाज (प्रार्थना) के नियमो का इतना कठोर अनुपालन न करता था जितना कि औरगजेब। उन मौलवियो के फ़त्वा (धर्म-आज्ञा) को हमको बहुत गम्भीर न समझना चाहिये जिन्होने दारा की मृत्यु के आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। स्टुअर्ट वशीय न्यायाधीशो की भाँति वे राज छत्रछाया प्राप्त सिंह थे तथा थोडे से लाभ के लोभ से वे कुछ भी कर सकते थे। इसका अत्यन्त कुख्यात उदाहरण वह राज्यच्युति का फत्वा है जो स्वय औरगजेब के विरुद्ध उन मौलानाओ ने दे दिया था जो उसके विद्रोही पुत्र अकबर के वेतनभोगी थे। इन मौलानाओ की युक्ति यह थी कि वह सम्राट् (जो अपने जीवन-काल ही मे सन्त घोषित कर दिया गया था) अपने अनइस्लामी आचरण के कारण मुसलमानो पर शासन करने के लिये अयोग्य सिद्ध हो चुका था।

यह सत्य है कि दारा की अँगूठी पर 'प्रभु' शब्द अकित था। यह भी सत्य है कि मथुरा में केशवराय के मन्दिर को उसने एक पत्थर का परकोटा भेट किया था। परन्तु ये उसके स्वधर्म-भ्रष्ट होने के प्रमाण न थे। दारा पर कोई अपराध न लगाया जाता यदि प्रभु शब्द के स्थान पर इसका समानार्थक अरबी शब्द 'अल्रब्ब' खुदा होता। मुल्ला के कान मे 'प्रभु' का स्वर ही अभिशाप है तथा देव नागरी लिपि का दृश्य ही दूषण की भाँति उसके नेत्रो के लिये असह्य है। उस समय मे—यही स्थिति हमारे समय की भी है—अनुदार मुल्ला लोगों तथा निरक्षर मुस्लिम जन-समुदाय को अरबी भाषा तथा अरबी लिपि पर मूढ श्रद्धा थी जैसे कि अरबी ही एकमात्र भाषा तथा एकमात्र लिपि है जो ईश्वर को स्वीकार्य है। मध्य युगो मे पश्चिमी धर्म-सगठन का ईसाई ईश्वर इसी भाँति केवल लैटिन भाषा समझता था तथा जैसे इस समय भी हिन्दू ईश्वर सस्कृत छोडकर और कोई भाषा नही समझता है। इस सार्वजनिक मिथ्या विश्वास के विरुद्ध दारा की अँगूठी स्पष्ट विरोध का प्रकाशन थी। उसके निम्नाङ्कित पद मे समाविष्ट महान सत्य का यह साकार रूप थी।

बनामे आँ के उ नामे न दारद, बहर नामे के ख्वानी सर बर आरद।

अर्थात्—उसके नाम मे जिसका कोई नाम नही है, चाहे जिस नाम से उसको पुकारे वह उसका उत्तर देता है।

उस मन्दिर की गति के सम्बन्ध मे औरगजेब का इतिहासकार लिखता है—"१४ अक्तूबर, १६६६ को यह जान कर कि केशवराय के मन्दिर मे एक प्रस्तरावरण है जिसको दाराशिकोह ने मन्दिर को भेंट मे दिया था, औरगजेब ने आज्ञा दी कि उसको हटा दिया जाये क्योकि वह इस बात का निन्दनीय उदाहरण है कि एक मुसलमान भी मूर्ति-पूजा से प्रेम प्रदर्शित कर सकता है। और अन्त में १६७० की जनवरी मे रमजान के शुद्ध ध्यान से उत्तेजित अपने उत्साह के कारण उसने यह आज्ञा भेज दी कि इस मन्दिर का सर्वथा सर्वनाश कर दिया जाये तथा मथुरा के नगर का नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया जाये।"[1] परन्तु यह भेंट इसका उदाहरण नही है कि मूर्ति-पूजा से मुसल्मान प्रेम प्रदर्शित कर सकता है, परन्तु यह इसका अत्यन्त साहसी तथा विश्वासप्रद प्रमाण है कि दारा को अपने आदर्शवाद तथा दर्शन के प्रति निष्ठा है। दारा ने कई बार कहा था—'ब जेरे बुत ईमानस्त पिन्हाँ' अर्थात्—'श्रद्धा (ईमान) मूर्ति मे निहित है'—तथा इस दान का आधार मूल भावना थी जो कार्य मे परिणत हो गई थी। वास्तव मे यदि दारा की सत्यता का ऐसा ठोस उदाहरण न होता, तो समालोचक लोग उसके उच्च तथा उदार भावो को सूफियो के साधारण उद्गारो से कुछ ही अधिक आदरणीय मानने मे न्यायसगत ही प्रतीत होते।

भारत के मुसलमान विचारको मे दारा तथा अकबर का स्थान असाधारण है जहाँ तक उनके नैतिक साहस तथा उनके विश्वास की दृढता का सम्बन्ध है। अकबर ने काश्मीर मे एक मन्दिर का निर्माण किया जिसमे प्रत्येक उत्पन्न अथवा अनुत्पन्न सम्प्रदाय के अविचारशील मतावलम्बी के निमित्त उसने एक चेतावनी-सी खुदवा दी—"जो कोई भी असत्य उद्देश्यो के कारण इस मन्दिर का विनाश करता है, उसको चाहिये कि वह पहले अपने पूजा स्थान का विनाश करे, क्योकि यदि हम अपनी अन्तरात्मा की आज्ञाओ का अनुसरण करें तो हमको समस्त मनुष्यो के प्रति सहनशील होना चाहिये, परन्तु यदि हम अपनी दृष्टि को बाह्य तक सीमित रखे तो प्रत्येक वस्तु हमको विनाश-योग्य मालूम होगी।" इस भावना से शायद दारा को भी प्रेरणा हुई कि वह प्रत्येक जाति की बाह्य पूजा का सम्मान करे। यदि हम दारा की स्थिति की तुलना अकबर की स्थिति से करे और उन सकटो की भी तुलना करे जो प्रत्येक को अपने विश्वास के प्रचार मे सहन करने पडे, तो हमको मालूम होगा कि दारा का प्रस्तरप्राकार अकबर के मन्दिर से नैतिक साहस की तुला पर अधिक भारी उतरता है।

राजकुमार दाराशिकोह की आत्मा को ईश्वर शान्ति प्रदान करे। उसके

१—सर जदुनाथ सरकार कृत—औरगजेब का इतिहास III पृ० २६७।

प्रति उसका देश कृतज्ञ है। अपने देश-वासियों के प्रति उसके महान् सन्देश को एक दरवेश (भिक्षुक) की निम्न पंक्तियों में एक मुखर प्रतिध्वनि प्राप्त होगी:—

हिन्दु कहे सो हम बड़े, मुसल्मान कहे हम,
एक मूँग के दो फन्द हैं, कुँ ज्यादा कुँ कम।
कुँ ज्यादा कुँ कम, करना नहीं कजिया,
एक राम का भगत है, दूजे रहमान से रजिया।
कहे दीन दरवेश दोइ सरिताँ, मिल एक सिन्धु,
साहिब सब दा एक है, एक मुसल्मान-हिन्दु ॥[1]

सहायक-ग्रन्थ-सूची

अ. फारसी (सामान्य इतिहास तथा साहित्यिक ग्रन्थ)

१—पादशाहनामा या शाहजहाँ के शासनकाल का राजकीय इतिहास—तीन भागो मे—प्रत्येक मे एक दौर (दशक) का इतिहास है। प्रथम दो भागों का सकलनकर्ता अब्दुलहमीद लाहौरी है तथा तृतीय का उसका शिष्य मुहम्मद वारिस है। अब्दुलहमीद का ग्रन्थ मुद्रित हो चुका है (बिब्लिओथिका इण्डिका सीरीज़)। मैने वारिस की एक शुद्ध हस्तलिखित प्रति का उपयोग किया है जो सर जदुनाथ सरकार के पास है।

सम्राट शाहजहाँ की यह आकाक्षा थी कि उसके शासनकाल का एक विशाल इतिहास अबुल्फज्ल के अकबरनामा की प्रणाली पर सकलित किया जाये तथा उसकी शैली पर लिखा जाये। सादुल्ला खाँ के समर्थन के अनुसार उस समय मे केवल अब्दुलहमीद खाँ एक व्यक्ति था जो ऐसे कार्य को सम्पादन करने मे समर्थ था क्योकि अपने समकालीन पुरुषो मे उसको यह महान् ख्याति प्राप्त थी कि अबुल्फज्ल के अननुकरणीय फारसी गद्य-शैली का वह सफल अनुकरणकर्त्ता है। वृद्ध अब्दुलहमीद उस समय पटना के नगर में अप्रसिद्ध अवकाश प्राप्त वासी था।[2] शाहजहाँ के शासनकाल के द्वितीय दशक मे वह दरबार में बुलाया गया तथा यह कार्य उसको सौपा गया। अपने शेष जीवन-काल मे वह शासन के केवल प्रथम बीस वर्षों का इतिहास सम्पूर्ण कर सका।

१—दीन दरवेश—१६ वी शताब्दी का एक सन्त, 'हिन्दी के मुसल्मान कवि' ग्रंथ में उद्धृत।

फन्द = टुकड़े, दालें। कजिया = कलह। रजिया = राजी, प्रसन्न। दा=का।

२—अब्दुल हमीद द्वारा अपनी तथा अपने ग्रन्थ की कथा—पाद—I अ० पृ० १०-१३।

मासीरे आलमगीरी के लेखक के अनुसार अपने गुरु द्वारा आरब्ध कार्यको मुहम्मद वारिस ने संचालित रखा। उसका देहान्त १० रबी-उल-अव्वल १०९१ हि०[1] को हुआ। एक पागल विद्यार्थी ने, जिसको वह अपने साथ रखता था, उसकी हत्या कर दी।

पादशाहनामा शाहजहाँ के शासनकाल का अत्यन्त विस्तीर्ण तथा अनेक दृष्टियो से सर्वोपरि प्रमाणभूत इतिहास है। राजपत्रो, समाचार-पत्रो, दरबार मे दैनिक घटनाओ के वृत्तान्तो तथा अन्य अधिकृत पत्रो से इसका सकलन हुआ था। प्रामाणिकता की एक अतिरिक्त मुद्रा इस पर इस तथ्य के कारण लगी हुई है कि वजीर सादुल्ला खाँ इसको पढकर सम्राट को सुनाता था तथा सम्राट के सुझाव-अनुसार इसमे सशोधन करता था। सादुल्ला खाँ की मृत्यु से बाद गृहस्थ-कार्याधीश आला-उल-मुल्क तूनी (फाजिल खाँ) ने इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग की इसी प्रकार आवृत्ति की। अतः पादशाहनामा मे जहाँ तक कि सम्राट के चरित्र तथा कृतियो का सम्बन्ध है, आत्मकथा के गुण तथा अवगुण दोनो उपस्थित है। जैसा चित्रण उसने, अपना करना चाहा, वैसा ही चित्रण इस राजकीय इतिहास मे शाहजहाँ के चरित्र का हुआ है।

इस इतिहास का प्रधान स्वर यह है कि अपने युग के आदर्श मुस्लिम शासक के रूप से सम्राट पक्का मुसलमान है। मन्दिरो का विनाश, हिन्दुओ के विरुद्ध युद्ध, मक्का को उपहार, ईद के त्यौहारो पर रौशनी, मीलाद की सभाये जिनमे सम्राट सम्मिलित होता था—इन सब का उल्लेख विना भूल के दोनो राजकीय ऐतिहासिक घटना-लेखक करते है, परन्तु प्रत्येक ऐसी घटना को चुपचाप छोड देते है जिसका अर्थ निर्बलता या कट्टरता मे ढीलापन लगाया जा सकता हो—उदाहरणार्थ हिन्दुओ पर यात्रा-कर की छूट तथा चिन्तामणि के मन्दिर का पुनर्निर्माण। वारिस ने या उसके राजकीय आश्रय-दाता ने यह उचित न समझा कि पादशाहनामा मे यह उल्लेख हो कि सम्राट को उसके ६० वर्ष मे कुरान के विधानानुसार विद्वान् मौलवियो तथा मुफ्तियो ने फ़तवा द्वारा रमजान के रोजो (उपवासो) से मुक्त कर दिया था[2]।

ग्रथ का दूसरा विषय है शाहजहाँ का गाढ पारिवारिक प्रेम विशेष कर दारा तथा जहाँनारा के प्रति उसका प्रेम। पादशाहनामा में उन भवनो के लम्बे-लम्बे उल्लेख है जिनका निर्माण उसने आगरा तथा दिल्ली में किया था, परन्तु विचित्र बात यह है कि चित्रकारी का कोई उल्लेख नही है जो अन्य कलाओ की भाँति

१—इलियट VII. १२१।

२—इनायतखाँ का शाहजहाँनामा, इलियट में उद्धरित VIII—९७।

उसके शासन काल मे अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो गई थी ।

पादशाहनामा मे दाराशिकोह के राजनैतिक चरित्र का सूक्ष्म उल्लेख है, परन्तु यह घटना-रहित था । मुझको यह अनावश्यक तथा अशक्य भी प्रतीत हुआ है कि अपनी पुस्तक मे उन समस्त पद-वृद्धियो, उपहारो, रत्नो तथा अश्वो की भेंटो तथा राजकीय आगमनो का सविस्तार उल्लेख करूं जिनसे शाहजहॉ ने अपने पुत्र दारा को सम्मानित किया था । इसकी आशा ही नही की जा सकती थी कि दारा के विरुद्ध किसी बात को इस राजकीय इतिहास मे स्थान दिया जायेगा—जैसे सादुल्ला से उसके झगडे को । राजकुमार की साहित्यिक प्रगतियो तथा उसके धार्मिक विचारो का इसमे लेशमात्र भी उल्लेख नही है । इसमे अनेक परिशिष्टियॉ है जिनमे उन सन्तो, विद्वानो, तथा कवियो की सूचियॉ है जो इस शासन काल मे जीवित थे, परन्तु स्वयं सूची मे किसी हिन्दू का नाम सम्मिलित नही है, यद्यपि पाठ्याश मे प्रसग-वश जगन्नाथ पण्डित का तथा हिन्दी के कवियो मे हरनाथ और सुन्दर कविराय आदि का उल्लेख है । यदि अबुलफज्ल की भॉति अपनी सूचियो मे हिन्दू विद्वानो, कवियो तथा सन्तो के नाम भी पादशाहनामा के लेखक सम्मिलित कर लेते तो दारा के चरित्र पर अधिक प्रकाश पड़ सकता था क्योकि उनके साथ उसका घनिष्ठ सम्पर्क था ।

२—मुहम्मद सालेह कम्बू कृत अमले सालेह । (बिब्लिओथिका इण्डिका सीरीज मे प्रकाशन की अवस्था मे) शाहजहाँ के जन्म से लेकर १६६५ ई० में उसकी मृत्यु तथा उसके शासन काल का यह इतिहास है । शाहजहाँ के शासन काल के प्रथम ३० वर्षों के निमित्त इसका कोई अधिक स्वतन्त्र मूल्य नही है । पादशाहनामा मे अधिक पूर्णता तथा मौलिकता से इनका वर्णन है । चूँकि पुस्तक औरंगजेब के शासन काल मे लिखी गई थी, विना आत्महानि के लेखक उल्लेख कर सकता था कि खुस्रू की हत्या मे शाहजहाँ की क्या पापसहकारिता थी तथा दारा के विरोधी दल के दृष्टि-विन्दु से ही वह उत्तराधिकार युद्ध की कथा कह सकता था । शाहजहाँ के शासन काल के ३१ वे वर्ष के सम्बन्ध मे यह पादशाहनामा का परिपूरक है । इसके आगे इस पुस्तक मे शाहजहॉ की मृत्यु का सक्षिप्त वर्णन है ।

३—मुहम्मद काजिम कृत आलमगीरनामा (बिब्लिओथिका इण्डिका) १६८८ मे लिखित । इसमे औरंगजेब के शासन काल के प्रथम १० वर्षों का इतिहास है । जब लेखक ने सम्राट के शासन के ३२ वे वर्ष मे उसके सम्मुख यह पुस्तक उपस्थित की, सम्राट ने इस राजकीय इतिहास के लिखे जाने का निषेध कर दिया । बाद के समस्त इतिहासकारो ने—उदाहरणार्थ साकी मुस्तैदखॉ, शेख

मुहम्मद बक़ा, तथा खफीखाँ ने—इस पुस्तक से बहुत-सी सामग्री ली है। दारा के विध्वंस को तथा उसकी हत्या को लेखक इस प्रकार न्याय-सगत बताता है—

"दारा शिकोह ने अपने अन्तिम वर्षों मे अपने को स्वतन्त्र विचार तथा विधर्मी धारणाओ तक ही सीमित न रखा। इनको रहस्यवाद (तसव्वुफ) के नाम से उसने अगीकार कर लिया था। परन्तु हिन्दुओ के धर्म तथा उनकी सस्थाओ की ओर उसने अपनी प्रवृत्ति भी प्रकट कर दी थी। वह प्रायः ब्राह्मणो, योगियो तथा सन्यासियो की सगति मे रहता था रोजा, नमाज, तथा धर्मविहित अन्य आवश्यक कर्मों का उसने त्याग कर दिया था यह स्पष्ट था कि यदि दाराशिकोह राज-गद्दी प्राप्त कर लेता है तथा अपनी सत्ता स्थापित कर लेता है, तो धर्म की आधार-शिलाये विपत्तिग्रस्त हो जायेंगी तथा इस्लाम के उपदेशो का परिवर्तन हिन्दुओ तथा यहूदियो के अनर्गल प्रलाप मे हो जायेगा। परिणामतः धर्म की रक्षा के लिये, शरीयत के पोषण के निमित्त तथा राजनीति के परमावश्यक विचार के कारण उसको प्राणदण्ड दिया गया।"[१]

४—लतीफ्-उल्-अख़बार—कन्धार के तृतीय अवरोध का यह वृत्तान्त है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। कहा जाता है कि यह बदीउज्जमा रशीदखाँ का लिखा हुआ है। अन्तः साक्षी के अनुसार लेखक महावतखाँ कनिष्ट की सेवा में था तथा दाराशिकोह की सेना के साथ उस सेनापति की सगति मे कन्धार को गया था। उच्च क्षेत्र मे उस समय वास्तव मे लेखक अज्ञात था तथा कन्धार के तृतीय अवरोध के अधिकृत वृत्तान्त मे वारिस ने उसके नाम का (यदि वह बदीउज्जमाँ है) कोई उल्लेख नही किया है। अकबर के समय के बदायूँनी की भाँति मालूम होता है कि यह लेखक उस समय तक अपने जीवन से निराश रहा था तथा उसकी पुस्तक की प्रारम्भिक पक्तियों से हो ऐसा स्वर प्रतिध्वनित होता है कि सफल दरबारियो तथा राज्य-कर्मचारियो के प्रति उसको मनुष्यद्वेषी की घृणा है। वह लिखता है—"मैं उन विशेष कृपा-पात्रो में नही हूँ जिनको रहस्यों का परिचय रहता है और न मैं आन्तरिक क्षेत्र का सामन्त ही हूँ। न मैं सरकारी सेवा मे लेखक हूँ, न मै किसी कूटनैतिक आयोग पर नियुक्त हूँ, न मैं समाचार-लेखन विभाग मे हूँ कि मैं झूठ बोल दूँ और झूठ पर निर्वाह कर सकूँ, कि मैं जनता से किसी घटना को गुप्त रखूँ और उन घटनाओ का प्रमाण एकत्र करूँ जो कभी घटित नही हुईं और यह सब हिन्दुस्तान में मित्रो के केवल विनोदार्थ जिनके कान क़न्धार के समाचार के प्रति खडे रहते हैं। मेरा विश्वास

१—फ़ारसी पाठ्य, पृ० ३४ तथा ३५। इलियट VII, १६७। छाब्रिक दारा के लिये जो १६६३ में गुजरात में प्रकट हुआ, देखो आलमगीरनामा—पृ० ८३७।

है कि असत्य भाषण न करना चाहिये और न सत्य को मित्रो से गुप्त रखना चाहिये। जहाँ पर कोई विशेष उद्देश्य नही होता और न किसी का अनुग्रह दृष्टि मे होता है, तो मनुष्य क्यो सत्य-भ्रष्ट हो जाये और स्पष्टवक्ता क्यो न हो? यद्यपि मै इतना कम ज्ञात हूँ तथापि मै ईश्वर की शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि इस यात्रा की जितनी घटनाओ का ज्ञान मुझको है उतना और किसी को नही है। यदि किसी को है तो उसने अपने व्यक्तिगत सासारिक लाभ के लिये उनको गुप्त रखा है, और यदि उसने कह दिया है, तो उसने किसी अन्य प्रकार से कहा है। समय का वृत्तान्त उन लोगो को अधिक ज्ञात होता है, जो अलग कोने में निवास करते हैं।"

लतीफ्-उल्-अख्बार दैनिक वृत्त-पुस्तक है जिसमे कन्धार के तृतीय अवरोध की घटनाये आरम्भ से अन्तिम दिवस तक दिन-प्रतिदिन लिखी गई हैं। इसमे यथार्थ सैनिक विवरण तथा शिविर की गप्प भी दी हुई है। इस गप्प का महत्व कुछ कम नही है, क्योकि इसके आधार पर १७वी शताब्दी के भारतीयो तथा ईरानियो के सर्वप्रिय विश्वासो और उनकी मिथ्या कल्पनाओ का अध्ययन हो सकता है। मैंने दारा द्वारा कन्धार के अवरोध की कहानी का मुख्यतया इस ग्रन्थ के आधार पर पुनः निर्माण किया है। यद्यपि यह कहानी दारा के व्यक्तिगत तथा सैनिक चरित्र के प्रति अति हानिकारक है, परन्तु इस विषय में यह कहानी शाहजहाँ के राजकीय इतिहास की अपेक्षा मुझको अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। रिउकी टिप्पणी है—"यह निस्सन्देह तारीखे क़न्धार है जिसको खफीखाँ उद्धृत करता है (I पृ० ७२२) और जिसको वह मुहम्मद बर्जी के नाम से प्रसिद्ध रशीदखाँ की बताता है। इस रशीदखाँ को बदीउज्जमाँ महावत खॉनी भी कहते है जो औरंगजेब के शासन-काल के २४वे वर्ष मे दीवाने खालिसा नियुक्त हुआ था और जो उसी शासन काल के ४१वे वर्ष मे मृत्यु को प्राप्त हो गया (रिउ० I २६५)।

५—तारीखे शुजाई (या शाहे शुजाई, इथे० I ३४०)—यह राजकुमार शाह शुजा का इतिहास है। इसका लेखक है मुहम्मद मासूम (बिन हसन बिन सालेह) जो शुजा का आश्रय-भोगी तथा २५ वर्ष तक उसका वेतन-भोगी था। इथे की टिप्पणी है—"यह पुस्तक उसी लेखक की फतूहाते आलमगीरी का एक भाग हो सकती है जो १०७० हि० मे सम्पूर्ण हुई" (इथे I ३४०)। जहाँ तक आन्तरिक प्रमाण का सम्बन्ध है, लेखक ने इस पुस्तक को बगाल मे माल्दा के स्थान पर लिखा तथा वह १०७० हि० के बाद की भी घटनाओ का उल्लेख करता है—उदाहरणार्थ, श्रीनगर के राजा द्वारा सुलेमान का समर्पण (१६६१ ई०)। अतः वह किसी ऐसे ग्रन्थ का भाग नहीं हो सकता है जो

१६६० ई० में सम्पूर्ण हुआ हो। हमको प्रबल सन्देह है कि १०८० हि०, जो बहुत सम्भव है, उसके स्थान पर भूल से प्रतिलिपिकार ने १०७० हि० लिख दिया है।

यद्यपि लेखक शुजा का नौकर था, तब भी वह औरंगजेब का प्रशंसक है और दारा के प्रति उसकी पूर्ण सहानुभूति थी। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि अपने स्वामी शुजा के साधनो को छोड कर अन्य किसी मूल साधन से उसको घटनाओ का ज्ञान प्राप्त न था। मासूम का ग्रन्थ नाटकीय तथा मानुषी पुटो से पूर्ण कला-कृति है। ये पुट हमको शुष्क घटना-वृत्तो मे प्राप्त नही होते हैं जिनका सकलन राजपत्रो के आधार पर होता है।

६—मुन्तखबुल्लबाब—यह प्रसिद्ध इतिहास है। "यह १५१९ ई० मे बाबर के आक्रमण से प्रारम्भ होकर मुहम्मदशाह के शासन-काल के १४वे वर्ष पर समाप्त होता है।" इसका लेखक मुहम्मद हाशिम है जो अपनी उपाधि खफीखाँ के द्वारा अधिक प्रसिद्ध है (देखो इलियट VII पृ० २०७-२१०)। खफीखाँ निश्चय ही राजकीय इतिहासो के प्रति बहुत ऋणी है क्योकि कोई भी व्यक्ति इस ऋण से बच नही सकता था। परन्तु यह कहना शायद सर्वथा ठीक नही है कि "जहाँ तक शाहजहाँ के शासन काल का सम्बन्ध है, वह हमारे ज्ञान की कोई वास्तविक वृद्धि नही करता है" (डा० बनारसीप्रसाद कृत—शाहजहाँ का इतिहास)। खफीखाँ प्रथम लेखक है जिसने तारीखे-कन्धारी ऐसे अनधिकृत मूल ग्रन्थो का उपयोग किया, तथा उसके इतिहास का महत्व इसमें है।

७—मसीरुल् उमरा—शाहनवाजखाँ कृत मुगल साम्राज्य के सामन्तो का सुप्रसिद्ध जीवनी-कोष (बिब्लिओथिका इण्डिका)।

८—दाराशिकोह के ग्रन्थः—

(i) सकीनत्-उल्-औलिया—(नवल किशोर प्रेस)।

(ii) सकीनत् - उल् - औलिया—(ओरियण्टल पब्लिक लायब्रेरी – हस्त लिखित प्रति)।

(iii) रिसालै हकनुमा (नवल किशोर प्रेस)।

(iv) हसनत्-उल्-आरिफीन (मुज्तबाई प्रेस दिल्ली)।

(v) मज्मुअल् बहरैन (सरकार हस्तलिखित प्रति)।

(vi) सिर्रे अकबर (रिउ I १८४०४ सहित, श्री फिदा अलीखाँ ढाका विश्व विद्यालय की एक ह० लि० प्रति० भी)

९—दबिस्तान्-उल्-मज़ाहिब-ओशी तथा ट्वायर कृत इङ्गलिश अनुवाद-लिथो संस्करण-बम्बई।

१०—मीरात्-उल् खियाल—शेरखाँ लोदी कृत-(उम्दत्-उल्-अख्बार प्रेस)। औरंगजेब के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में लिखा हुआ साहित्यिक पुरुषो का

यह तजकिरा (संग्रह) इस समय के इतिहास के विद्यार्थियो के लिये अपरिहार्य ग्रन्थ है ।

अ (ii) पत्र

१—अदबे-आलमगीरी-क़ाबिलखाँ कृत । इसके तीन भाग है—अर्थात् (i) पत्र जो १६४६ से १६५६ के बीच मे लिखे गये । (ii) उत्तराधिकार-युद्ध का इतिहास, जो स्वय क़ाबिलखाँ कृत परिपूरक है। (iii) अम्बाला के शेख मुहम्मद सादिक द्वारा १६७८–१६८० मे लिखित पत्र । "उसने अपने पुत्र मुहम्मद जमाँ की प्रार्थना पर १७०३ ई० मे समस्त ग्रन्थ का सम्पादन ऊपर के तीन विशिष्ट भागो में किया। तथा उसको अदबे-आलमगीरी का नाम दिया"।[1] औरगजेब तथा शाहजहाँ के बीच मे वैमनस्य के तथा दारा के प्रति औरगजेब की कटुता के कारणो के अध्ययन करने मे इस ग्रन्थ का प्रथम भाग बहुत मूल्य का है। द्वितीय भाग अर्थात् उत्तराधिकार-युद्ध के इतिहास का कोई स्वतन्त्र मूल्य नही है ।

२—औरगजेब के पत्र—अपने ग्रन्थ 'कलमाते-तय्यीबत' तथा 'अहकामे आलमगीरी' मे इनायतुल्लाखाँ ने, और अपने ग्रन्थ 'रकायमे करीम' मे[2] सैयद अशरफखाँ ने इन पत्रो का सग्रह तथा सम्पादन किया है। दारा के, तथा उसकी सन्तान के, दारा की कन्या अमलुन्निसा को औरगजेब के उपहारो के, सुलेमान शिकोह की बधुओ के, दारा की समाधि के प्रति औरगजेब की सावधानी ऐसे अनेक फुटकर उल्लेख इस ग्रन्थ में है ।

३—जयपुर दरबार के ग्रन्थ-रक्षागार के पत्र शाहजहाँ के समय से मुहम्मदशाह के समय तक मुगल साम्राज्य के इतिहास के लिये जयपुर दरबार का ग्रन्थ-रक्षागार वास्तव मे अप्रयुक्त तथा मौलिक सामग्री की खानि है। यह सर्व प्रधानतः सर जदुनाथ सरकार की खोज है। सर्व प्रथम उन्ही को आज्ञा प्राप्त हुई थी कि इस ग्रन्थ-रक्षागार का निरीक्षण करें तथा वहाँ पर सुरक्षित कुछ पत्रो की प्रतियाँ तैयार कर लें। सर जदुनाथ के संग्रहालय में करीब १ हजार पत्रो के प्रतिलेखो का मैंने उपयोग किया है। दाराशिकोह के द्वितीय खण्ड मे मैंने कुछ अत्यन्त महत्वशाली पत्रो का सम्पादन किया है जिनको मिर्जा राजा ने सम्राट् तथा युवराज को लिखा था, तथा मैंने उन फर्मानो और निशानो का भी सम्पादन किया है जो मिर्जा राजा को सम्राट् तथा दारा

१—सरकार कृत औरगजेब के शासन-काल के अध्ययन पृ० २६२ ।

२—सम्पादकों की जीवनिओं के लिये तथा इन पत्रों के मूल्य सम्बन्धी विवेचनात्मक सम्मति के लिये: देखो पूर्ववत् पृ० २८८, २८६, २६२–२६६ ।